हिन्दी-गौरव-ग्रंथमाला—४६ वाँ ग्रंथ

268

स्त्री-कवि-कौमुदी

हिन्दी में स्त्रियों के काव्य-साहित्य का
विस्तृत विवेचन

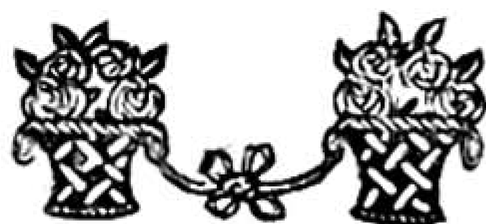
स

लेखक
ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल'
(सं० सम्पादक 'भारत' भूतपूर्व स० 'मनोरमा')

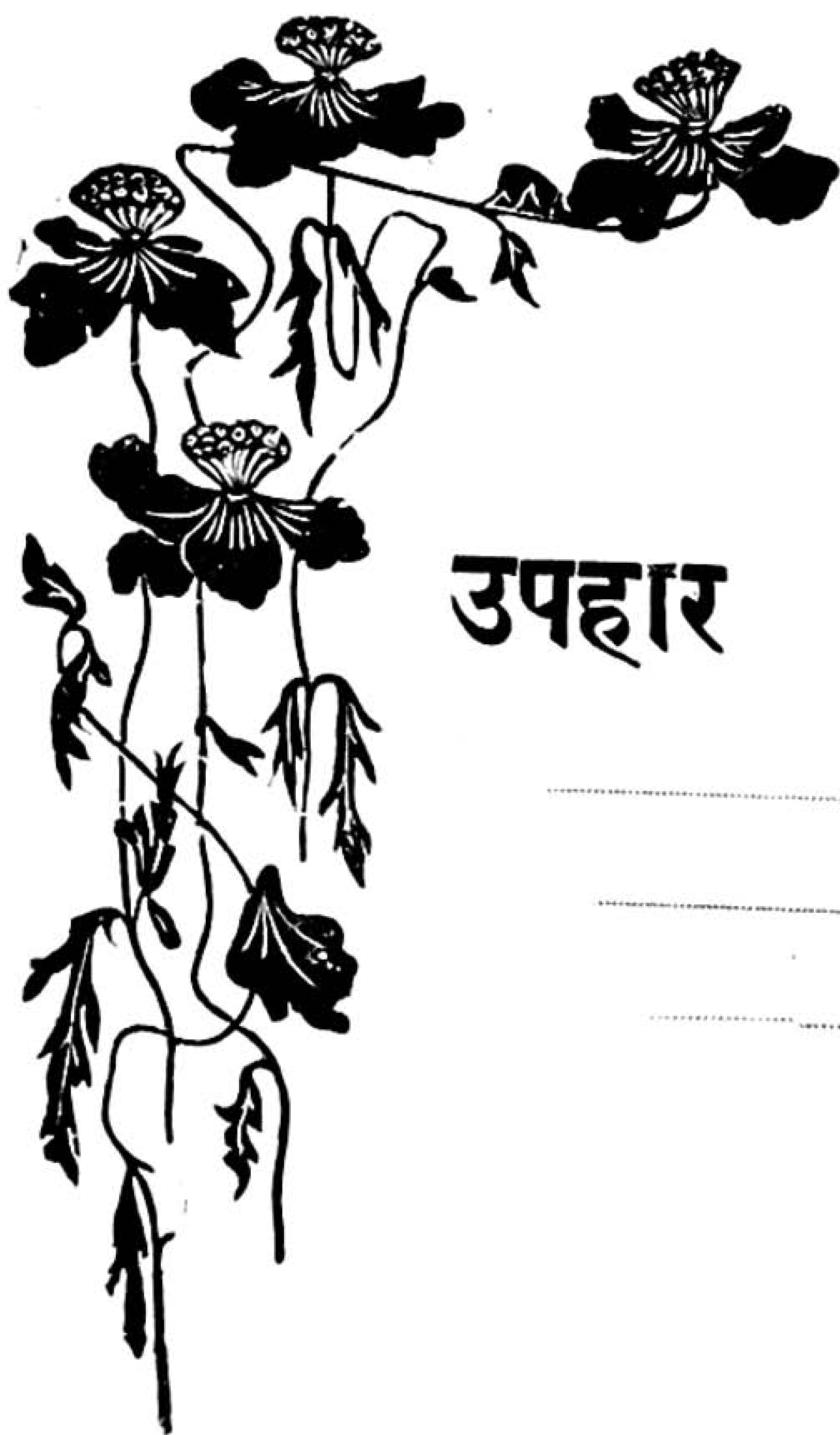
प्रकाशक
गाँधी-हिन्दी-पुस्तक-भंडार
प्रयाग

प्रथम संस्करण]   मार्च, १९३१   [मूल्य, पाँच रुपया

प्रकाशक
गाँधी-हिन्दी-पुस्तक-भण्डार,
प्रयाग।



मुद्रक
सूरजप्रसाद खन्ना
हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।



उपहार

....

....

....

विषय-सूची

चित्र-सूची

—०—



श्रीमती रानी साहबा लक्ष्मीकुमारी देवी

कालाकाँकर-राज्य (अवध)

समर्पण



श्रीमती रानी साहबा लक्ष्मीकुमारी देवी

कालाकाँकर-राज्य (अवध)

को

सादर समर्पित

—'निर्मल'

वक्तव्य

हिन्दी-साहित्य के इतिहास का जिन लोगों ने अध्ययन किया है उन्हें भली भाँति ज्ञात है कि पुरुष कवियों की भाँति स्त्री-कवियों ने भी भाषा के भांडार की पूर्ति करने में वास्तविक और बहुत कुछ प्रयत्न किया है। तुलसी, विहारी, देव और पदमाकर आदि का नाम प्राचीन साहित्य के उद्धारकों में लिया जाता है तो मीराबाई, सहजोबाई, दयाबाई और सुन्दरिकुँवरि बाई आदि ने उसके उद्धार का कम प्रयत्न नहीं किया है। यह ठीक है कि समय के प्रवाह और पुरुषों के प्रभुत्व से पुरुष लेखकों की कृतियों का प्रचार अधिक हुआ, जनता के सामने वह सांगोपांग रूप में आया अथवा उसका विज्ञापन अधिक हुआ। परन्तु परदा-प्रथा के प्रबल प्रचार और प्रभुत्व से स्त्रियों को, सामाजिक, साहित्यक और राजनैतिक आदि कई प्रकार की हानियां उठानी पड़ीं। यही कारण है कि उनकी साहित्यिक उन्नति भी चहार दीवारियों के भीतर ही सीमित रही, बाहर जनता में उसका प्रचार नहीं हो सका। वास्तव में पुरुषों को जिस प्रकार स्वच्छन्दता मिली थी, उनको अपने विचारों के प्रगट करने की जो सुविधायें प्राप्त थीं यदि स्त्रियों को भी उसी प्रकार के सुयोग प्राप्त होते तो पुरुष कवियों के साथ साथ स्त्री-कवियों का भी विकास होता जाता और आये दिन दोनों की साहित्यिक सेवाओं की महानता से हिन्दी साहित्य की विशालता और भी अधिक प्रकट होती।

प्राचीन स्त्री कवियों के साहित्य पर जब हम सूक्ष्म दृष्टि डालते हैं तो हमें स्पष्ट रूप से उनकी विशालता प्रगट होती है। उनकी योग्यता, उनकी लगन और उनके भाव-विचार का स्थायित्व का अनुमान स्पष्ट हो जाता है। हिन्दी में सब से पहली स्त्री कवि मीराबाई का नाम बड़े गौरव से लिया जाता है। सूरदास जी ने कृष्ण-भक्ति संबंधी जिस प्रकार की सरस रचनायें की हैं उसी प्रकार मीराबाई ने भी कृष्ण-प्रेम में अपना सर्वस्व निछावर कर दिया। इसमें सन्देह नहीं है कि सूरदास और मीराबाई की तुलना नहीं की जा सकती परन्तु मीरा का शुद्ध प्रेम, कृष्ण-कीर्तन में तल्लीनता और काव्य की मधुरता ने यह स्पष्ट कर दिया कि उसने गिरिधर गोपाल को ही सर्वस्व तथा इस लोक परलोक का देवता समझ लिया था। 'मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई' पद से इसकी पूर्ण रूपेण पुष्टि होती है। भक्ति-रस के काव्य द्वारा हिन्दी के भांडार को भरने वाली सहजोबाई और दयाबाई भी अपने गुरुदेव चरणदास की दासी हुईं। रसिकबिहारी, ब्रजदासी और जुगलप्रिया ने भी महलों का सुख छोड़कर कृष्ण-प्रेम में अपने को अर्पित कर दिया। उनको आश्रय देने वाली मथुरा और वृन्दावन की गलियाँ हुईं, उनका निवास स्थान ठाकुर द्वारा हुआ, उनका भोजन भगवान का प्रसाद और पान-चरणामृत हुआ। जिस प्रकार महात्मा तुलसीदास ने राम-काव्य की सृष्टि की और राम-प्रेम की धारा को प्रवाहित किया उसी प्रकार सुन्दरिकुँवरि बाई ने, जो एक बड़े राज-घराने की महिला थीं, राम-भक्ति से प्रभावित होकर अपने काव्य रचे।

रानी रामप्रिया ने भी राम-भक्ति की रचनायें कीं। इस से यह प्रगट होता है कि पुरुषों के साथ साथ स्त्रियाँ भी साहित्यिक दृष्टि से अपना विकास करती गईं यह बात दूसरी है कि कारण वश और समय के प्रभाव से उनकी रचनाओं का प्रचार नहीं हुआ और उनकी कृतियों की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया गया।

अब शृंगार रस में ही लीजिए। कहा जाता है कि स्त्रियाँ स्वभावतः लज्जाशील होती हैं, ठीक भी है परन्तु हिन्दी में जब विहारी देव, मतिराम, पदमाकर और ग्वाल आदि कवियों ने शृंगारिक रचनायें कीं तब उनकी कृतियों का प्रभाव स्त्रियों पर पड़ना अनिवार्य्य था। फलतः सेख, प्रवीणराय, चंपादे आदि स्त्रियों ने भी उत्कृष्ट शृंगार-रस की रचनायें रचीं। शेख के छंद हिन्दी के अच्छे से अच्छे शृंगारी-कवियों की रचनाओं से टक्कर ले सकते हैं; हाँ यह बात अवश्य है कि पुरुष कवियों से स्त्री-कवियों की संख्या कम है। इसका कारण स्त्रियों की स्वभाविक लज्जा और मर्यादा की सीमा का संरक्षण भी हो सकता है।

नीति से काव्यों के लिखने में जिस प्रकार गिरिधर कविराय, बृन्द आदि कवियों ने रचना-चातुर्य्य-चमत्कार दिखलाया है उसी प्रकार साईं, छत्रकुंवरि बाई आदि ने नीति-काव्य की सुन्दर रचनाओं से हिन्दी का भांडार भरा है। वीर-काव्य लिखने में जिस प्रकार भूषण ने अपना नाम अमर किया है यद्यपि उस प्रकार की कोई उत्कृष्ट कवि स्त्रियों में दृष्टिगोचन नहीं होती परन्तु तो भी झीमा चारणी आदि स्त्रियों ने ओजस्विनी कवितायें लिखकर पुरुषों में वीरत्व का संचार किया है।

लगभग सौ वर्षों के हिन्दी में समस्या-पूर्तियों का बाहुल्य हुआ, अनेक काव्य-सम्बन्धी पत्र भी निकले। हिन्दी के अनेक कवियों ने समस्या पूर्तियों की ओर पैर बढ़ाया। द्विजबलदेव, पं० नाथूराम शंकर शर्मा, आंबिका दत्त व्यास, राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' आदि ने इस क्षेत्र में अपना एक स्थान बना लिया। इसलिए उस समय स्त्रियों पर भी समस्या-पूर्तियों का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा। बूंदी की श्री चन्द्रकला बाई ने इस क्षेत्र में खूब नाम कमाया और पुरुषों के मुकाबले में सुन्दर से सुन्दर समस्या पूर्तियाँ करके कवि समाजों, कवि मंडलों से उपाधि, पदक और प्रशंसा-पत्र प्राप्त किये। उन्हीं दिनों में श्रीमती तोरन देवी शुक्ल 'लली', श्रीमती रमा देवी, बुंदेला बाला आदि भी समस्या पूर्तियों और स्फुट रचनाओं के द्वारा यशस्विनी हुईं।

समय का प्रवाह आगे बढ़ा, ब्रजभाषा का स्थान खड़ीबोली ने ले लिया। अनेक पत्र-पत्रिकायें निकलीं। कितने ही ब्रजभाषा में कविता करने वालों का झुकाव खड़ीबोली की ओर हो गया। पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्मा, सनेही, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय, राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' खड़ीबोली में काव्य-रचना करने लगे। ऐसे वातावरण का प्रभाव स्त्रियों पर भी पड़ा। श्रीमती तोरन देवी शुक्ल 'लली' श्री रमादेवी, बुंदेलाबाला आदि खड़ीबोली में कविता करने लगीं। परिवर्तन किसे रुचिकर नहीं। समय और आगे बढ़ा। शिक्षा का विस्तार हुआ। नवीन युग के लोगों ने देश-विदेश के साहित्य का अध्ययन किया। जो लोग खड़ीबोली में रचना करने वाले और प्रेमी थे उन

पर पाश्चात्य और बङ्गाली कवियों की रचनाओं का प्रभाव पड़ा। फलतः छायावाद और रहस्यवाद की रचनाओं का प्रादुर्भाव हुआ। श्री सुमित्रानन्दन पन्त, श्रीजयशंकर 'प्रसाद' और श्री निराला आदि कवियों ने इस पथ का संचालन किया। इसका प्रभाव शिक्षित स्त्रियों पर भी पड़ा। इस प्रकार की काव्य-रचना करने वालियों में श्रीमती महादेवी वर्मा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कितनी ही अन्य नवयुवतियाँ इस पथ पर अग्रसर हो रही हैं और भविष्य में उनसे विशेष आशा भी है।

देश इस समय स्वतंत्रता के लिए आगे बढ़ रहा है। कितने ही कवियों ने देश-भक्तिपूर्ण रचनाएँ लिखकर समाज को जागृत करने में सहायता प्रदान की और राष्ट्रीय साहित्य का प्रादुर्भाव किया है। श्री 'सनेही' पं० माधव शुक्ल, शंकर जी, हरिऔधजी आदि ने सफल और देश-प्रेम से पूर्ण कवितायें लिखीं। स्त्रियों पर भी ऐसे वातावरण का प्रभाव पूर्ण रूप से पड़ा। श्री बुंदेलाबाला, श्रीराज देवी, श्रीमती तोरन देवी शुक्ल 'लली' और श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने देश-भक्ति पूर्ण बड़ी सुन्दर और उत्कृष्ट रचनायें रची हैं और पुरुष कवियों के साथ साथ इन स्त्री-कवियों का भी नाम आदर के साथ लिया जाता है।

उक्त विचारों से यह साफ प्रगट है कि पुरुष-कवियों के साथ स्त्री कवियों ने भी हिन्दी-साहित्य की उन्नति में अच्छा सहयोग दिया है और इनकी रचनायें आदर की पात्र हैं। प्राचीन स्त्री-कवियों पर

दृष्टिपात करने से एक खास बात यह भी दिखाई पड़ती है कि प्रायः जिन स्त्रियों ने कवितायें लिखी हैं वे बड़े घराने की थीं, खासकर रानियाँ। उस समय माधुर्य्य-भक्ति का प्रभाव रानियों और बड़े घराने की स्त्रियों पर अधिक पड़ा। मीराबाई से लेकर कीरति कुमारी तक, जो इस पुस्तक की कवियों में अंतिम कृष्ण-काव्य लिखने वाली देवी हैं, प्रायः सभी रानियाँ हैं और कृष्ण-प्रेम के रंग में रंगकर रचनायें की हैं। रानियों पर इसका क्यों प्रभाव पड़ा, इसके अनेक कारण हो सकते हैं परन्तु उनमें एक उनका पारस्परिक संबन्ध भी है। विशेषतः माधुर्य्य-भक्ति की ओर प्रायः सुखी और सम्पन्न ही विशेष रूप से आकृष्ठ हो भी सकते हैं।

यह ठीक है कि पुरुष कवियों की अपेक्षा स्त्री-कवियों की संख्या बहुत न्यून है। परन्तु इस सम्बन्ध में खोज भी नहीं हुआ और न साहित्य के इस एक विशेष अङ्ग की रक्षा करने और संचय करने की ओर प्रयत्न ही किया गया है। हिन्दी में अनेक संग्रह-ग्रंथ प्राचीन और अर्वाचीन हैं परन्तु किसी ने स्त्रियों की रचनाओं को विशेष महत्व नहीं दिया। शिवसिंह सरोज प्राचीन संग्रह है उसमें भी सूक्ष्म परिचय और कवियों की नामावली दी है। मिश्रबन्धुओं ने भी बड़े परिश्रम से मिश्रबन्धु विनोद में जिन जिन कवियों की खोज की है वह वास्तव में बड़ा उत्कृष्ट काम है और जो किया गया है वही बहुत है परन्तु स्त्रियों की रचनाओं के सम्बन्ध में विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। हाँ राजपूताने के सुप्रसिद्ध मुन्शी देवीप्रसाद जी ने वास्तव में इतिहास संबंधी कुछ

गवेषणा की हैं जो उनके इतिहास सम्बन्धी विद्वता को प्रगट करती हैं। इसलिये हिन्दी में एक ऐसे संग्रह की विशेष आवश्यकता प्रतीत हो रही थी जिसमें केवल स्त्री-कवियों की ही रचना संग्रहीत होतीं और उनके संबन्ध में अध्ययन की सामग्री एक ही पुस्तक में एकत्रित की जाती। अस्तु।

इस प्रकार की पुस्तक की आवश्यकता का अनुभव करके ही हमने इस पुस्तक के लिखने का प्रयत्न किया है। इस पुस्तक में स्त्री-कवियों की जीवनी और उनकी चुनी हुई कवितायें एकत्रित की गई हैं। पुस्तक के अंत में कुछ नवोदित स्त्री कवियों की रचनाओं का एक एक नमूना भी दिया गया है। परिशिष्ट में संग्रहीत कविताओं में आये हुए कठिन शब्दों का अर्थ तथा अंतर्गत कथायें भी लिख दी गई हैं।

यहाँ हम अपने उन मित्रों, सहयोगियों तथा उन महिलाओं को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते जिनकी कृपा से यह पुस्तक तैयार हुई है। पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय, पं० कृष्ण बिहारी मिश्र, स्वर्गीय गोविन्द गिल्ला भाई, राव रामनाथ सिंह (बूँदी) तथा काशी, रींवा के मित्रों के हम हृदय से कृतज्ञ हैं। स्वर्गीय मुंशी देवी प्रसाद मुंसिफ़ के हम बहुत कृतज्ञ हैं जिनकी 'महिलामृदुवाणी' आदि पुस्तकों से हमें विशेष सहायता मिली है। खासकर हम अपने आदरणीय मित्र पं० रामशङ्कर शुक्ल 'रसाल' एम० ए० के विशेष ऋणी हैं जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर हिन्दी में स्त्री कवियों के काव्यों पर समालोचनात्मक और ऐतिहासिक विवेचन द्वारा इस पुस्तक का स्थायित्व बढ़ा दिया।

इस पुस्तक को लिखने में हमने इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा है कि सभी स्त्री-कवि चाहे वे प्राचीन हों अथवा अर्वाचीन, छोटी हों या बड़ी सभी की कोई न कोई रचना नमूने के रूप में अवश्य दी जाय। परन्तु जिन महिलाओं और स्त्री-कवियों की रचना का उल्लेख पुस्तक में हमारी अनभिज्ञता वश न हुआ हो तो वे कृपया हमें क्षमा करके सूचित कर दें जिस से भविष्य में सुधार कर दिया जाय।

पुस्तक में त्रुटियां अनेक होंगी। क्योंकि हम सर्वज्ञ होने का दावा नहीं करते। इसलिए जो सज्जन इसकी त्रुटियों के सम्बन्ध में सूचित करेंगे उनके हम कृतज्ञ होंगे। हमने यथा साध्य स्त्री कवियों के चित्रों के देने का भी प्रयत्न किया है, बहुत से चित्र अभी तक हमें मिले भी नहीं। इसलिये हमारा विचार है कि इस पुस्तक का दूसरा संस्करण मैटर की दृष्टि से और भी विशिष्ट रूप में निकाला जाय। हिन्दी प्रेमियों ने यदि इस पुस्तक को अपनाया और हमें प्रोत्साहित किया तो हम और भी अनेक नई और उपयोगी चीज़ें भेट करने का प्रयत्न करेंगे।

'भारत' कार्य्यालय,
लीडर प्रेस, प्रयाग
२०-३-३१

विनीत
ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल'

परिचय

हिन्दी संसार में अब तक न मालूम कितने गद्य और पद्य के सम्पादित संग्रह-ग्रंथ निकल चुके हैं, पर अभी तक कोई ग्रंथ ऐसा नहीं प्रकाशित हुआ जिसमें केवल स्त्री-कवियों के काव्य को ही एकत्रित किया गया होता। इस उपेक्षा का कारण या तो यह हो सकता है कि यह कार्य स्त्रियों से सम्बन्ध रखता था, अथवा स्त्री-रचित काव्य इतना अधिक और उच्च श्रेणी का नहीं समझा गया जिससे उसको स्वतन्त्र स्थान दिया जाता। जो कुछ भी हो, तात्पर्य केवल इतना ही है कि जैसा कुछ भी काव्य था—अच्छा या बुरा, थोड़ा या बहुत—उसका एक स्वतन्त्र संग्रह निकलना नितान्त आवश्यक था। परन्तु प्रत्येक कार्य का होना अनुकूल अवसर पर ही अवलंबित रहता है। अतः कदाचित इस प्रकार का ग्रंथ अनुकूल समय की ही प्रतीक्षा में अब अक रुका हुआ था।

आज मुझे यह देख कर अत्यन्त हर्ष है कि वह समय आ गया जब "स्त्री-कवि-कौमुदी" को हिन्दी-संसार के सामने आने का सौभाग्य मिला है। स्त्री-कवियों के काव्य का यह ग्रंथ अपने ढंग का अकेला है। यह बिल्कुल ही नवीन ग्रंथ है, जिसने हिन्दी साहित्य की भारी कमी की पूर्ति की है। प्राचीनकाल से लेकर अब तक हिन्दी काव्य-गगन में न मालूम कितनी स्त्री-कवियों ने विचरण करके अपनी प्रतिभा से इसे आलो-

क्षित किया, इसका क्रम-बद्ध और विस्तृत इतिहास हमारे पास अब तक कोई नहीं था। हिन्दी-साहित्य के भिन्न भिन्न कालों में कितनी स्त्री कवि हुईं, और किस श्रेणी की उनकी रचनायें हुईं, इसका भी पूर्ण परिचय बहुत कम लोगों को था, क्योंकि उनके काव्य की तुलनात्मक समालोचना एक स्थान पर कहीं भी देखने को नहीं मिलती थी। यद्यपि 'कविता-कौमुदी' में कुछ प्राचीन और वर्तमान स्त्री-कवियों का परिचय दिया गया है पर वह इतने गौण रूप में है कि स्त्री-रचित काव्य का वास्तविक मूल्य उससे कुछ मालूम नहीं होता। उसमें न हम विस्तृत जीवनी ही पाते हैं और न कवियों के काव्य की सम्यक समालोचना ही। अतः "स्त्री-कवि-कौमुदी" इस दृष्टि से बहुत ही अमूल्य ग्रंथ है; क्योंकि जिन प्रश्नों के समझने में हमें पग पग पर आपत्तियों का सामना करना पड़ता था, इसकी स्थायी 'कौमुदी' में वह सब सरल हो जायेंगे। प्रस्तुत ग्रंथ का श्रेय पं० ज्योतिप्रसाद जी मिश्र 'निर्मल' को है; वास्तव में आपका यह प्रयास सराहनीय है। निर्मल जी ने परिश्रम और योग्यतापूर्वक इस ग्रंथ को तैयार किया है तथा अधिकांश रूप में इसको उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया है। प्राचीन और आधुनिक काल की जिन जिन स्त्री-कवियों के विषय में आप पता लगा सके हैं, उन सभी के काव्य को आपने बड़ी खोज और परिश्रम के साथ एकत्रित किया है। इस प्रकार जिन स्त्री-कवियों के नाम तथा रचनायें हमें अन्य कहीं नहीं मिलती थीं, इसमें संग्रहीत की हुई पाई जाती हैं। इससे ग्रंथ का महत्व और भी बढ़ गया है। प्रत्येक स्त्री-कवि की जीवनी उसके काव्य की

सम्यक समालोचना और साथ ही कुछ चुनी हुई कविताओं को भी उद्धृत किया गया है जिससे ग्रंथ बड़ा रोचक बन गया है। साथ ही यह भी दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि हिन्दी-साहित्य के जिस युग में जो भाव, जो भाषा और जो शैली प्रधान रही, प्रायः उसी भाव से प्रभावित होकर उसी युग की प्रचलित काव्य, भाषा और शैली में स्त्रियों ने भी अपना काव्य रचा। इसलिए चिरकाल तक उनके काव्य का विषय भी धार्मिक ही रहा और उसमें भी राम और कृष्ण की भक्ति ही प्रधान रही। वर्तमान काल में जैसे जैसे काव्य के विषय, उसकी भाषा और शैली में परिवर्तन हुआ स्त्रियों के काव्य की गति भी उसी ओर मुड़ गई जो आज कल की स्त्री-कवियों की रचनाओं में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। यह प्रभाव यहाँ तक पड़ा है कि वर्तमान स्त्री-कवियों में से कुछ कवियों ने तो अपने काव्य को 'छायावाद' में ही डुबा रक्खा है। सारांश यह कि प्रायः साहित्य के प्रत्येक युग में स्त्रियों ने साहित्य-क्षेत्र में अपना कौशल और प्रतिभा दिखलाने का प्रयत्न किया है और इसी से प्रत्येक युग की छाप उनके काव्य पर लगी दिखाई देती है। पुस्तक-प्रणेता ने उन कवियों की रचनाओं का भी रसास्वादन कराया है जो अभी काव्य के शैशवकाल में ही विचरण कर रही हैं और इसलिये जिनकी प्रतिभा और कवित्व-शक्ति का पूर्ण विकास नहीं हो पाया है। उनके काव्य को देख कर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उनमें से कई कवि ऐसी हैं जिनमें प्रतिभा, कल्पना-शक्ति और कवित्व-शक्ति पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है, और वह उत्तम

श्रेणी की कवि हो सकती हैं यदि उनको प्रोत्साहन दिया जाय। यद्यपि उनकी कुछ कवितायें साधारण श्रेणी की भी हैं, परन्तु ऐसी कविताओं की भी कमी नहीं है जो काव्य के गुणों से सब प्रकार से विभूषित हैं और काव्य की कसौटी पर कसने से उत्तम श्रेणी में आ सकती हैं। पुस्तक के प्रारंभ में "हिन्दी में स्त्रियों का काव्य-साहित्य" शीर्शक विवेचनात्मक लेख से ग्रन्थ की उपयोगिता दूनी बढ़ गई है।

मुझे आशा है कि 'स्त्री-कवि-कौमुदी' को हिन्दी-प्रेमी सप्रेम अपनायेंगे और इसको समुचित आदर देंगे। साहित्यिक दृष्टि से यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है, क्योंकि इसके द्वारा लेखक ने केवल स्त्री-कवियों के प्रति ही सहानुभूति नहीं दिखाई है, बल्कि हिन्दी-साहित्य के बिखरे हुए रत्नों को भी एकत्रित कर सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया है।

हिन्दी-विभाग
प्रयाग विश्व-विद्यालय
१५-३-२१

चन्द्रावती त्रिपाठी एम० ए०
(हिन्दी-प्रोफ़ेसर)

हिन्दी में

स्त्रियों का काव्य-साहित्य

हिन्दी में

स्त्रियों का काव्य-साहित्य

ऐतिहासिक विकास

हिन्दी साहित्य के इतिहास का जिसने अवलोकन किया है उससे यह छिपा नहीं कि हिन्दी-साहित्य के इतिहास का प्रथम पृष्ठ 'जय-काव्य' (वीर-काव्य) से ही प्रारंभ होता है। वह समय तथा तत्कालीन परिस्थिति आदि अपने इसी रूप में थी कि उसमें इसी प्रकार के काव्य की रचना की जाय और वस्तुतः हुआ भी ऐसा ही। लगभग बारहवीं, तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दियों में इसी काव्य का हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में प्रचुर प्रचार एवं प्राबल्य रहा। पन्द्रहवीं शताब्दी से देश, समाज आदि में धार्मिक आन्दोलन और भक्ति-प्रचार प्रारंभ हुआ। जिसके कारण हिन्दी-साहित्य भक्ति-काव्य में रूपान्तरित हो चला और लगभग तीन शताब्दियों में उसका भव्य-भंडार भक्ति-काव्य के रुचिर रत्नों से ऐसा भरा-पूरा हो गया कि उसकी समता संस्कृत-साहित्य को छोड़कर और कोई दूसरा साहित्य नहीं कर सकता। इसके उपरांत 'कला-काल' एवं 'कला-काव्य' का उदय और विकास हुआ जो लगभग दो शताब्दियों में अच्छी पूर्णता प्राप्त कर सका। वर्तमान

काल या आधुनिक काल, इस कला-काल का अनुगामी होकर गद्य-साहित्य की प्रचुर उन्नति करता हुआ आज तक चल रहा है।

उक्त तीन कालों में हिन्दी साहित्य की जो रचना हुई है और उसमें काव्य को जो विशाल अट्टालिका निर्मित हुई है उसे यदि हम तनिक सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो उसके दो खंड दिखलाई पड़ते हैं। एक खंड को तो हम पुरुष-काव्य (पुरुष कवियों के द्वारा रचा गया काव्य) कह सकते हैं और दूसरे को स्त्री-काव्य। प्रथम की ओर तो हमारे कतिपय विद्वानों ने अपनी विचार-पूर्ण दृष्टि डाली है किन्तु द्वितीय खंड की ओर किसी ने भी विशेष ध्यान नहीं दिया। इसीलिये इस खंड की आलोचना-पर्यालोचना आदि अब तक सुचारु रूप से नहीं हो सकी। इस कहने में कोई अत्युक्ति न होगी कि स्त्री-साहित्य को सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित रूप से, उस पर विवेचनात्मक प्रकाश डालते हुए किसी ने हिन्दी-संसार के सम्मुख उपस्थित नहीं किया कि जिससे स्त्री-समाज और पुरुष-समाज दोनों इस एक विशेष अंग का ही समावलोकन और पूर्ण अध्ययन कर सकते। प्रस्तुत ग्रंथ ही इस उद्देश से रचा जाकर उक्त न्यूनता की पूर्ति करने का प्रयत्न करता है।

संस्कृत साहित्य का इतिहास यह प्रगट करता है कि संस्कृत में कई ऐसी देवियाँ हुई हैं जिन्होंने विविध विषयों पर ग्रंथों की रचना करके संस्कृत-साहित्य को गौरवान्वित किया है। साहित्य-सेवी श्रीमती लीलावती (लीलावती नामक बीजगणित ग्रन्थ की रचने वाली) विकट नितम्बा देवी (उत्कृष्ट काव्य रचने वाली) कवयित्री आदि के

नामों से अवश्य ही परिचित होंगे। अतः इस संबंध में विशेष न कह कर हम केवल यह ही दिखलाना चाहते हैं कि हमारे देश में बहुत प्राचीन काल से ही स्त्रियों ने साहित्य के क्षेत्र में कार्य्य करना प्रारंभ किया है और अब तक करती आई हैं। संस्कृत-साहित्य के पश्चात प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के साहित्यों में भी स्त्रियों ने न्यूनाधिक रूप में सहयोग दिया है। इसके पश्चात जब से हिन्दी-साहित्य का विकास प्रारम्भ हुआ उन्होंने इसके क्षेत्र में भी परियाप्त सफलता और सराहनीय सुयोग्यता से रचना-कार्य्य किया है। हम यहाँ उनके इसी कार्य्य (साहित्य-रचना-काल) के एतिहासिक विकास का सूक्ष्म वर्णन करते हैं।

हिन्दी के 'जय-काव्य' की रचना में जहाँ तक हिन्दी-साहित्य का इतिहास और विद्वानों का अन्वेषण बतलाता है, स्त्रियों ने कोई भी भाग नहीं लिया। 'जय-काव्य' के काल में देश और समाज जटिल राज-नीतिक परिस्थितियों के कारण अशांत और उद्विग्न था। उस समय में केवल वैसे ही काव्य की रचना हो सकती थी जिसमें वीर रस की वह धारा उमड़ती हो जो प्रत्येक व्यक्ति की रग-रग में शौर्य्य-रक्त का प्रखर प्रवाह कर दे और वह देश की सत्ता-स्वातन्त्र्य तथा गौरव की रक्षा में अपना बलिदान करके देश और समाज का भाल ऊँचा करे। ऐसे समय में और इस प्रकार के साहित्य की रचना के क्षेत्र में स्त्रियाँ कितना कार्य्य कर सकती हैं यह स्पष्ट ही है। युद्ध के समय में स्त्रियों का कर्तव्य बड़ा संकटाकीर्ण हो जाता है। उन्हें अपनी लज्जा बचाते हुए अपने देश और समाज को भी विगर्हित एवं कलंक-पंक-पंकित होने से

बचाना पड़ता है और उनका मस्तिष्क इस दशा में ऐसा नहीं रहता कि वे साहित्य-रचना करें। यदि पुरुष अपने पुरुषत्व को त्याग कर कायरता के कोने में बैठ विश्राम करें और देश तथा समाज की स्वातन्त्र्य-सौख्य की अवहेलना करके युद्ध से उन्मन हों और कवि लोग अपने वीर कड़खों से उन मृत-प्राय शरीरों में शौर्य्य-जीवन से द्रुतगामी रक्त का प्रवाहन न करें तो अवश्यमेव स्त्रियों का यह कर्तव्य होगा कि वे वीरता के साथ निकल कर वीरों के कापुरुषत्व की तीव्र शब्दों में विगर्हणा करते हुए वीरता के कड़खे गायें और समरांगण में चंडी-नृत्य करें। जिस समय का हम उल्लेख कर रहे हैं उस समय में यह दशा न थी। वीर राजपूत स्वयमेव देश-जाति की रक्षा के लिए अपना रक्त बहा रहे थे। वीर कवि अपने ओज-पूर्ण काव्य से उन्हें प्रोत्साहित और उत्तेजित करते हुए रणांगण में वीर-जीवन के आदर्श का उपदेश दे रहे थे। अतः स्त्रियों के लिये यह आवश्यक न था कि वे वीर-काव्य गाते हुए रणाँगण में आवें। उनका एक अनिवार्य्य कर्तव्य यही रह गया था कि वे विजयश्री को देखकर प्रमोदामोद से वीर पुरुषों की आरती उतारें या पराजय-कालिमा को देखकर शत्रुओं के अनाचार-प्रारंभ के पूर्व ही जुहार आदि के द्वारा देश और समाज की लज्जा की रक्षा करते हुए अपने पंच-भौतिक-पिंजर से प्राण-पखेरुओं को निकाल कर स्वर्गारोहण करें और वहाँ अपने वीर-गति-प्राप्त प्रियजनों से पुनर्मिलन प्राप्त करें। यही मुख्य बात है कि जय-काव्य-काल में स्त्रियों ने साहित्य-रचना के क्षेत्र में कार्य्य नहीं किया।

भक्ति-काव्य-काल में देश और समाज शांत-सुख का अनुभव करने लगा था और धार्मिक आन्दोलन तथा भक्ति का प्रचार-प्रसार प्राचुर्य्य के साथ होने लगा था। यह एक स्पष्ट बात है कि धर्म की आस्था उसकी सत्ता और महत्ता का जितना भाव स्त्रियों के हृदयों में रहता है है उतना कदाचित पुरुषों के नहीं। स्त्रियों का हृदय अत्यन्त कोमल, सरस और सरल होता है, उससे रागात्मिका-वृत्तियों (feelings) का ही प्रावल्य और प्राधान्य रहता है। बोध-वृत्ति साधारणतया स्त्रियों में उतने अच्छे रूप में नहीं मिलती जितनी वह पुरुषों में मिलती है। इसीलिये स्त्रियाँ भक्ति और प्रेम की ओर विशेष रूप से समाकृष्ट और प्रवर्तित हो जाती हैं। इन दोनों का प्रभाव उनके जीवन पर मनुष्यों की अपेक्षा अधिक पड़ता है। भक्ति-काल में भक्ति-काव्य की रचना का जो प्रसार सूर और तुलसी जैसे महाकविराजों की कला-कौशल से तय्यार हुआ उसकी छटा भारत-क्षिति पर ऐसी छहरी कि स्त्री-पुरुष सभी उससे प्रभावित हो गए। भक्ति-काव्य की सरिता दो मुख्य धाराओं में प्रवाहित हुई है। प्रथम है कृष्ण-भक्ति-धारा और दूसरी राम-भक्ति-धारा। प्रथम-धारा की काव्य-लहरी में संगीतात्मक-कलरव, भक्ति-भाव गाम्भीर्य्य, प्रेम-पीयूष-रस और काव्य-कंजावली का सुखद-सौरभ पूर्ण विनोदकारी विलास का पावन प्रकाश था। द्वितीय धारा में जीवन-घटनाओं की जटिल भँवरें तो विशेष थीं किन्तु प्रथम धारा की सम्मोहक सामग्री उतने अच्छे रूप में उपस्थित न थी। इसीलिए भावुक कवियों, सरस हृदयों तथा मृदुल-मानस-शीला महिलाओं ने

प्रथम धारा को ही विशेष अपनाया है। निश्कर्ष यह है कि हमारी देवियों ने विशेष रूप से कृष्ण-काल की ही रुचिर रचना की है। कृष्ण-काव्य की रचना-परम्परा उस व्रजभाषा में चली है जो मधुर, रस-पूर्ण, भाव-गम्य तथा कोमल कान्तिवती है और जो स्त्रियों की प्रकृति के सर्वथा अनुकूल है। कृष्ण-काल का संगीत-तत्व भी स्त्रियों के लिए विशेष आकर्षण का कारण ठहरता है। कृष्ण-काव्य में कृष्ण की बाललीलाओं (जिन में वात्सल्य-भाव की ही प्रधानता रहती है) तथा उनके योवन-काल की प्रेम-लीलाओं का (जिन में श्रृङ्गारात्मक रीति-भाव के माधुर्य्य सरसस्नेह के सौरभ और मंजुल भावों के मार्दव का प्राचुर्य्य रहता है) का ही वर्णन किया जाता है और इसके यह दोनों अंश स्त्री-हृदय के मुख्य तत्व हैं। यह बात राम-काव्य में नहीं। इसी-लिए स्त्रियों ने राम-काव्य की अपेक्षा कृष्ण-काव्य को ही अपने लिए उपयुक्त मान कर ग्रहण किया है। हाँ, कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी हैं कि जिन्होंने राम-काव्य के पवित्र आदर्श को देखते हुए अपने लिए उसे अच्छा समझा और अपनाया है किन्तु इसकी संख्या उँगलियों पर ही गिनी जा सकती हैं। राम-काव्यकार पुरुषों की भी संख्या कृष्ण-काव्य-कारों की अपेक्षा बहुत ही अधिक संकीर्ण है। क्योंकि राम-काव्य कवियों के सरस हृदयों के प्रायः अनुपयुक्त ही ठहरता है।

अब यह स्पष्ट ही हो गया होगा कि भक्ति-काल से स्त्रियों ने पुरुषों के साथ भक्ति-काव्य की रचना के क्षेत्र में कार्य करना प्रारंभ किया और परियाप्त सफलता के साथ वे आगे बढ़ती गईं। भक्ति-काव्य के केन्द्र

उन्हीं स्थानों में विशेष रूप से बने थे जो भगवान के लीला-धाम तथा पवित्र तीर्थ-स्थान थे। इन स्थानों में सभी हिन्दू मात्र भक्ति-भाव से प्रेरित होकर सदैव आया-जाया करते थे। स्त्रियाँ भी इन स्थानों में आतीं और भक्त कवियों के भक्ति-काव्यामृत से परिष्णात होकर भक्ति-काव्य की रचना करने के लिए उत्कंठित और उत्साहित होती थीं। महात्मा सूरदास आदि के ललित-पदों को सुनकर उन्हें हृदयंगम करते हुए अपने साथ ले जातीं और गाया करती थीं। कृष्ण-काव्य सच पूछिए तो देश के प्रत्येक घर को स्त्रियों के कलकंठों में रम-जम कर तथा उनकी रसनाओं से सस्वरित होकर गुंजायमान करता था और अब भी करता है। इसलिये इस काव्य से प्रभावित होना न केवल पुरुष-समाज के ही लिए अनिवार्य हुआ वरन् स्त्री-समाज के लिए भी वह स्वाभाविक सा हो गया।

भारत का इतिहास इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश नहीं डालता कि मध्य-काल (१५ वीं, १६ वीं, १७ वीं, १८ वीं शताब्दियों) में स्त्री-शिक्षा का व्यवस्था-विधान देश में सुचारु रूप से प्रवर्तित न था। जहाँ तक जान पड़ता है कदाचित स्त्री-शिक्षा की व्यवस्था उस समय यहाँ यथोचित रूप में न थी। यह दूसरी बात है कि राव-राजाओं तथा कुछ धनी-मानी शिष्ट जनों के यहाँ स्त्री-शिक्षा का कुछ संचार या प्रचार रहा हो। साधारण रूप से स्त्री-समाज में शिक्षा का प्रचार न था। ऐसी दशा में यह आशा कदापि नहीं की जा सकती कि स्त्रियाँ काव्य-शास्त्र तथा छंद-शास्त्र का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करके साहि-

त्यिक परम्परा से पूर्ण परिचित होते हुए काव्य की रचना करने में समता और सफलता प्राप्त कर सकतीं। हाँ वे स्त्रियाँ अवश्य अपवाद रूप में आ सकती हैं जिन्हें या तो यथोचित साहित्य की शिक्षा दी गई थी या जो साहित्यज्ञों अथवा सुयोग्य कवियों के संपर्क का सौभाग्य प्राप्त कर सकती थीं। वस्तुतः प्रायः जितनी स्त्रियों ने इस काल में काव्य-रचना की है वे बड़े घरों की ऐसी ही स्त्रियाँ थीं जिन्हें शिक्षा और सत्संग दोनों या दोनों में से किसी एक की प्राप्ति का सौभाग्य मिला था। उनमें भी बहुत ही कम ऐसी स्त्रियाँ हैं जिन्होंने छंद-शास्त्र की नियम-नियंत्रित छंदों में रचनायें की हों। प्रायः स्त्रियों ने पद-शैली में ही अपना काव्य लिखा है। क्योंकि प्रथम तो कृष्ण-काव्य की यही शैली मुख्य और विशेष प्रचलित ठहरती है और दूसरे इसकी रचना छन्द-रचना के समान श्रम-साध्य तथा कठिन नहीं है। जिन थोड़ी भी स्त्रियों ने छंदात्मक काव्य लिखा है उनमें भी यह बात देखी जाती है कि उन्होंने भी केवल वे ही छंद लिए हैं जिनकी रचना सरल, साधारण और स्पष्ट है। इतना होते हुए भी स्त्रियों ने इस बात का सफल प्रयत्न किया है कि वे उन सब प्रधान शैलियों में रचनायें करें जो उस समय के साहित्य-क्षेत्र में महाकवियों के द्वारा प्रचलित की जाकर उपस्थित थीं।

भक्ति-काल के पश्चात् जब हिन्दी-क्षेत्र में कला-काल का उदय और विकास हुआ और लक्षण-ग्रंथों की रचना-परम्परा अबाध रूप से चलने लगी तब स्त्रियाँ पुरुषों के साथ न चल सकीं और अपने रचना-कार्य्य को स्थगित करने के लिए बाध्य हुईं। शिक्षा के अभाव से वे

लक्षण-ग्रंथों की रचना करने में असमर्थ रहीं। हाँ, यत्र-तत्र पुरानी कृष्ण-काव्य-परम्परा के अनुसार थोड़ी-बहुत भक्ति-काव्य की रचना अवश्य करती रहीं। कला-काल के अवसान में कुछ स्त्रियों का ध्यान स्त्रियोचित स्वतंत्र साहित्य-विशेष की ओर गया और उन्होंने कला-काव्य के स्थान पर इस साहित्य की रचना का श्रीगणेश करते हुए इसके प्रचार का प्रयत्न किया। दो-एक स्त्रियों ने स्त्री-समाजोपयोगी विषयों (जैसे सती-धर्म, पातिव्रत-धर्म, गृहिणी-धर्म आदि) पर सुन्दर रचनायें करके स्वतंत्र स्त्री-साहित्य की रचना का मार्ग खोला। किन्तु आधुनिक काल की परिवर्तित रचना-परम्परा के प्रबल बल-वेग ने इसे पूर्ण रूप से अग्रसर न होने दिया।

हिन्दी-साहित्य का आधुनिक काल गद्य प्रधान काल है। इसमें गद्य-साहित्य का ही प्राचुर्य्य और प्रावल्य हुआ और हो रहा है। पद्य-साहित्य यद्यपि परिस्थिति-प्रभाव से परिवर्तित और रूपांतरित होता हुआ चल अवश्य रहा है किन्तु उसकी प्रगति में वह बल-वेग नहीं, उसका प्रचार भी उतना नहीं, और उसकी ओर जनता की अभिरुचि भी उतनी विशेष नहीं है। इस काल के प्रारम्भ में जब उन राज-दरबारों में भी, जहाँ राजाओं से सम्मानित कवियों का अच्छा जमघट रहता था, पाश्चात्य प्रभाव से कवियों का आदर-सम्मान कम हो चला तब कवियों ने भिन्न भिन्न स्थानों में कवि-मण्डलों या कवि-समाजों की सृष्टि की। इनमें कवियों का सम्मेलन और काव्य-चर्चा के साथ ही साथ समस्या-पूर्ति का, जो एक कला के रूप में मानी गई है, अच्छा

कार्य्य होता था। मुद्रणयन्त्र के प्रचार से देश में जिस प्रकार भाषा और साहित्य का प्रचार और विस्तार हुआ है उसी प्रकार पत्र-पत्रिकाओं का भी हुआ है। कुछ पत्र तो समाचार पत्रों के रूप में निकले और कुछ साहित्यिक पत्रिकाओं के रूप में। प्रथम जो साहित्यिक पत्रिकाओं के रूप में निकले उनमें काव्य (विशेषतया समस्या-पूर्ति संबंधी) का, गद्य की अपेक्षा, विशेष तथा प्रधान स्थान रहता था। कुछ पत्रिकायें तो केवल समस्या-पूर्ति संबंधिनी ही थीं। इन पत्रिकाओं में भिन्न-भिन्न कवि-मण्डलों के कवियों की प्रतिमास सुन्दर पूर्तियां प्रकाशित होती थीं। इन पत्रिकाओं के द्वारा समस्या-पूर्ति की काव्य-कला का प्रचार साधारण और विशेष दोनों प्रकार मनुष्यों के घरों में भी हुआ और स्त्रियाँ भक्ति-काव्य से कुछ हट कर समस्या-पूर्ति की कला के पथ पर चलने लगीं, यद्यपि समस्याओं की पूर्ति स्त्रियाँ प्रायः भक्ति-भावात्मक कविता में ही किया करती थीं। खेद की बात है कि स्त्रियों की इस रचना का अच्छा संग्रह अब तक अलभ्य ही है।

मुसलिम शासन-काल में परदा-प्रथा का जो प्रचुर प्रचार हुआ उसके प्रभाव से स्त्री-शिक्षा को धक्का तो पहुँचा ही, साथ ही स्त्रियों की काव्य-रचना को भी गहरी क्षति पहुँची। इसके साथ ही कुछ ऐसे भी उदाहरण आ गए जिनसे लोगों को यह आशंका होने लगी कि स्त्रियों के काव्य-क्षेत्र में कार्य्य करने से सदाचार को भी गहरी हानि पहुँचेगी। आलम और शेख तथा कुछ ऐसे ही दूसरे उदाहरणों को देखकर साधारण जनता में यह बात सुदृढ़ रूप से जम गई कि कविता करने वाली स्त्रियाँ

तथा कवि भी समाज के नियमों की अवहेलना करते हुए अपनी आशिक-मिजाज़ी के कारण औचित्य की सीमा का उल्लंघन करने में रंच भी नहीं हिचकिचाते। जिसका परिणाम यह हो सकता है कि दूसरी स्त्रियाँ और दूसरे मनुष्य भी उनका अनुकरण करने के लिए तत्पर से हो जाते हैं। वस्तुतः यह कुछ स्वाभाविक सा जान पड़ता है कि एक विचार वाले स्त्री या पुरुष मिल जाते हैं। लोकोक्ति भी है--'प्रकृति मिले मन मिलत है' या 'खूब निभती है जो मिल जाते हैं दीवाने दो' (Birds of the Same father flock together) इन बातों पर विचार करके अथवा ऐसी आशंकाएं रखते हुए समाज ने स्त्रियों के लिए यह एक अनिवार्य्य नियम सा बना दिया कि वे काव्य-क्षेत्र से परे ही रहें। राज-घराने की स्त्रियों पर यह नियम चरितार्थ न हो सका। बड़े आदमियों में नियमों का पूर्ण परिपालन पाया भी नहीं जाता। अस्तु।

आधुनिक काल में अंग्रेज़ी भाषा तथा पाश्चात्य सभ्यता के प्रचार-प्रभाव से सामाजिक सुधार, संबंध-औदार्य्य एवं विचार-स्वातंत्र्य की सीमा ज्यों ज्यों विकृत होती गई त्यों ही त्यों स्त्री-समाज में पुरुषों के साथ उन्हीं के समान कर्मक्षेत्र के भिन्न भिन्न प्रदेशों में कार्य करने की समता और परिपाटी बढ़ती गई। आज वह समय आ गया है जब हमारे साधारण स्थिति के घरों की स्त्रियाँ भी साहित्य, सामाजिक सुधार एवं राजनीतिक आन्दोलनादि में सराहनीय सफलता के साथ बड़े उत्साह और हर्ष से कार्य्य कर रही हैं।

आधुनिक कालीन हिन्दी-साहित्य के इतिहास का अवलोकन यह स्पष्ट करा देता है कि उस काल के प्रारंभ से ही साहित्य-रचना के क्षेत्र में देश एवं समाज की परिस्थिति के प्रभाव तथा पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क से एक बड़ा महत्त्व पूर्ण परिवर्तन हुआ है। इस काल में गद्य का प्राधान्य ऐसा स्थापित हो गया कि उसके प्रावल्य एवं प्राचुर्य्य के सामने पद्य-रचना का प्रवेग नितांत ही शिथिल सा पड़ गया। विविध विषयों में रचना करने के उत्साह ने लेखकों और कवियों को साहित्य के भिन्न-भिन्न अंगों की ओर झुका दिया। व्रजभाषा जो बहुत दिनों से न केवल काव्य की ही भाषा होकर प्रचलित चली आई थी वरन् साहित्योचित गद्य-रचना की भी भाषा हो कर हिन्दी-प्रदेश में सर्वमान्य और व्यापक हो रही थी, अब केवल अत्यन्त संकीर्ण रूप में प्राचीन शैली की ही काव्य-रचना के लिए उपयुक्त ठहराई जाकर एक बहुत संकीर्ण सीमा से सीमित हो गई और खड़ीबोली ने अपना आतंक सारे हिन्दी-प्रदेश में प्रचुर प्रभाव के साथ जमाते हुए अपना अछत्र साम्राज्य स्थापित कर लिया। यद्यपि उसमें साहित्योचित आवश्यक समता और एकरूपता अद्यावधि अनुपस्थित है तो भी उसका उपयोग न केवल गद्य में अनिवार्य्य माना जाता है वरन् पद्य में भी उसके प्रयोग की महत्ता और सत्ता मानी जाती है, अर्थात् खड़ीबोली का उपयोग अब व्रजभाषा के समान साहित्य के गद्य और पद्य दोनों अंगों की रचनाओं में प्रायः सभी लेखकों और कवियों के द्वारा किया जाता है। ऐसी दशा में न केवल पुरुष-समाज को ही अपनी

रचना-शैली बदलनी पड़ी है वरन् उसके साथ साथ स्त्री-समाज भी उन विचारों से प्रभावित हो कर अब उसी शैली को अपना रहा है। अर्थात् अब स्त्रियाँ भी विविध विषयों पर गद्यात्मक और पद्यात्मक दोनों प्रकार की रचनाएं खड़ीबोली में करने लगी हैं।

यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो ज्ञात होता है कि इस काल में पुरुष-समाज की भाँति स्त्री-समाज में भी तीन प्रकार की लेखिकायें मिलती हैं। प्रथम तो वे हैं जो प्राचीन परम्परा के अनुसार भक्ति एवं नीति आदि के विषयों पर ब्रजभाषा में काव्य-रचना करती हैं, दूसरी वे हैं जो देशानुराग, समाज-सुधार और कल्पित प्रेमात्मक प्रबंधों में नवीन शैली से विविध विषयों पर खड़ीबोली में रचनाएं करती हैं। तीसरी वे हैं जो लेख या निबंध आदि लिखती हुई कुछ गम्भीर विषयों की रचनायें खड़ीबोली-गद्य में ही करती हैं।

स्त्री-साहित्य जो भी हमारे सामने इस समय उपस्थित है उसी शैली से हमें रचा हुआ मिलता है जिस शैली से हमारा पुरुष-साहित्य रचा हुआ प्राप्त होता है। स्त्रियों ने प्रायः पुरुष कवियों की ही सभी प्रधान शैलियों और विषयों का अनुकरण किया है और उन्हीं के समान साधारण तथा व्यापक साहित्य की रचना की है। यदि पुरुषों ने कृष्ण और राम-काव्य लिखा है तो स्त्रियों के भी एक विशाल दल ने साधारण रूप से ऐसा ही काव्य लिखा है। कला-काल में स्त्रियाँ अवश्यमेव शिक्षा के अभाव से पुरुषों के साथ साहित्य-रचना की दौड़ में नहीं दौड़ सकीं और रीति-ग्रंथों की रचनाएं नहीं कर सकीं किन्तु

आधुनिक काल में आकर फिर वे पुरुषों के साथ पूर्ववत चलने लगी हैं। केवल कुछ ही ऐसी स्त्रियाँ हुई हैं जिन्होंने अपने समाज को सम्मुख रख कर स्त्रियोचित साहित्य की रचना करने का विचार करते हुए अपनी समाज के उपयुक्त विषयों पर लिखा है। खेद है इन देवियों का अनुकरण करके हमारी दूसरी बहनों ने स्त्री-साहित्य के स्वतंत्र रूप का निर्माण करना न जाने क्यों अच्छा नहीं समझा और उसे दूर ही रख दिया है। हमारी समझ से यदि हमारी बहनें इस ओर ध्यान दें और अपनी समाज के लिए स्वतंत्र तथा पृथक साहित्य के निर्माण करने का प्रयत्न करें तो बहुत अच्छा हो और थोड़े ही दिनों में स्त्री-साहित्य का सुन्दर प्रासाद बन कर तैयार हो जाय। इस काल में कतिपय सुयोग्य लेखकों ने बाल-साहित्य के निर्माण का कार्य्य सुचारु रूप से सफलता के साथ आरंभ कर दिया है। इसी प्रकार हमारी देवियों को बालिका और ललना-साहित्य के निर्माण का कार्य्य करना चाहिये।

आधुनिक काल में पुरुषों ने साहित्य के प्रायः सभी अंगों को उठा कर उसके भंडार का भरना बड़ी सफलता से प्रारंभ किया है। किन्तु अभी तक हमारी सुयोग्य महिलायें इस ओर उदासीनता ही दिखलाती हैं। स्त्रियों ने अब तक जो साहित्य बनाया है वह बहुत ही संकीर्ण रूप में है। उससे साहित्य के केवल कुछ ही अंगों की पूर्ति होती हुई दिखलाई पड़ती है। नाटक, काव्य-शास्त्र, आदि अन्य अंग अब तक स्त्रियों ने उठाये ही नहीं। थोड़े दिनों से यह अवश्य देखा जाता है कि स्त्रियों ने गद्य-काव्य (उपन्यास, कहानी आदि) तथा आलोचना-

त्मक ढंग से कुछ गम्भीर ।विषयों पर निबंध आदि का लिखना प्रारंभ किया है किन्तु यह कार्य्य भी अभी बहुत अच्छे रूप में नहीं किया जा सका है। जो कुछ भी हो रहा है वह आशाप्रद और सराहनीय अवश्य है जिससे यह ज्ञात होता है कि यदि हमारी वहनें ऐसे ही उत्साह, अध्यवसाय तथा ऐसे सी उमंग से विचार पूर्वक साहित्य-निर्माण का कार्य्य करती चलेंगी तो थोड़े ही दिनों में गौरव-पूर्ण स्त्री-साहित्य तैयार हो जायगा।

रचना-विवेचन

किसी कवि के काव्य का पूर्ण विवेचन करना हँसी-खेल नहीं। इसके लिए यह नितांत आवश्यक है कि उसके समस्त ग्रंथों का पूर्ण अध्ययन दिया जाय। इस ग्रंथ में जिन देवियों का विवरण दिया गया है उनकी केवल अत्यन्त मनोरम रचनायें ही चुन चुन कर रक्खी गई हैं और इस बात का पूरा ध्यान रक्खा गया है कि उन सभी विषयों की सभी उत्तम रचनाओं के उदाहरण दे दिए जाँय जिन पर उन्होंने अपनी लेखनी उठाई है। अस्तु, इन्हीं रचनाओं को देख कर विवेचना के रूप में वहुत कुछ कहा जा सकता है।

स्वभावतः ही कवि के ऊपर उस के समाज, उस के पूर्व साहित्य, उसकी लोक-संस्कृति एवं अन्य देश और काल-संबंधी परिस्थितियों का प्रभाव अनिवार्य्य रूप से पड़ता है और वह उनके ही अनुसार रचना करने के लिए एक प्रकार से वाध्य हो जाता है। कोई कोई महा-

कवि ऐसे भी होते हैं जो इन प्रभावों से प्रभावित होते हुए भी अपना एक स्वतंत्र मार्ग निर्धारित करके स्व ' उस पर चलते हुये जनता को भी उसी पर ले चलने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे ही महाकवियों के द्वारा साहित्य की परम्परा में नवीन विशेषतायें समुद्भूत हो जाती हैं और वे शैलियाँ-विशेष बन कर दूसरों के लिए अनुकरणीय ठहरती हैं। हमारे देश में स्त्रियाँ सदा ही से पुरुष-समाज के ही प्रभावार्तक में रही हैं और उन्हीं के निर्दिष्ट किये हुए मार्गों पर बड़ी दृढ़ता के साथ चलती रही हैं। साहित्य-क्षेत्र में भी स्त्रियों ने ऐसा ही किया है। केवल कुछ ही ऐसी देवियाँ मिलती हैं जिन्होंने कुछ नवीन विशेषतायें अपने समाज को लक्ष करते हुए उपस्थित की हैं।

मीराबाई से ले कर भक्ति-काल में प्रायः जितनी भी महिलाओं ने रचना की हैं वे सब प्रायः एक ही साँचे में ढली हुई सी हैं। सूर आदि अष्टछाप के महाकवियों ने भक्ति के प्रचार-प्रसार के लिए जिस मधुर व्रजभाषा में संगीत-सुधा के साथ पद-रचना-शैली का प्रचार किया है उसी शैली को सर्वथोपयुक्त जान कर मीराबाई जैसी भगवद्-भक्ति-परायणा देवियों ने भी अपनाया है और पद-शैली में ही भक्ति-काव्य की रचना की है।

जैसा हमें पुरुष कवियों की भाषा में प्रान्तीय प्रभाव परिलक्षित होते हैं वैसे ही इन देवियों की भी भाषा में प्रान्तीयता की पुट पाई जाती है। जो महिलायें राजस्थान-निवासिनी हैं उनमें राजस्थानी भाषा के रूप पाये जाते हैं। साहित्य-प्रेमियों से यह छिपा नहीं है

कि राजस्थान में मुख्यतया दो भाषायें प्रचलित थीं। एक तो वह जिसका उपयोग साहित्य-रचना में किया जाता था और जो व्रजभाषा का एक विशेष रूप था और जिसे पिंगल की संज्ञा दी गई थी। दूसरी वह जो साधारण, सामान्य कोटि की व्यावहारिक भाषा थी और जिसे पिंगल कहते थे। साधारण बोलचाल की भाषायें प्रान्तीय वैभिन्य से अपना अपना विशेष वैलक्षण्य रखती हुई स्वभावतः ही प्रचलित थीं। अब भी हम यदि राजस्थानी महिलाओं का काव्य देखें और उसकी भाषा पर ध्यान दें तो यह प्रगट होता है कि उन्होंने साहित्यिक भाषा को अपनी रचना में प्रधानता दी है। उनकी भाषा में जो राजस्थानी पुट है वह उनके लिए क्षम्य है क्योंकि स्त्रियाँ स्वभावतः ही उच्चकोटि की साहित्यिक भाषा से इतनी परिचित नहीं होतीं (जब तक वे यथेष्ट रूप से सुशिक्षित और सुयोग्य न हों) कि उसका सर्वांश शुद्ध प्रयोग कर सकें। साधारण व्यावहारिक भाषा में परिचय-प्राचुर्य्य तथा प्रयोग-बाहुल्य से जो माधुर्य्य मिलता है वह भी उस बोली-का उपयोग करने में अच्छे समाकर्षण का काम देता है। कृष्ण-भक्ति विशेषतः वल्लभ-संप्रदाय-प्रचारित में चूंकि वात्सल्य भाव का प्राधान्य है इसीलिए उस भाव से पूर्ण रचनाओं में व्यावहारिक बोली का उपयोग और भी अधिक स्वाभाविक जँचता है। यही कारण है कि कृष्ण-भक्त कवियों ने भी अपनी साहित्यिक रचनाओं में व्यावहारिक भाषा की पुट ऐसी ही उपयुक्त स्थानों में अवश्य लगाई है।

मीरा के बहुत से पद ऐसे हैं जिनसे यही प्रगट होता है कि वह वात्सल्य-भाव की अपेक्षा माधुर्य्य-भाव को विशेष प्रधानता देती थी।❀ मीरा की रचनाओं को हम दो कथाओं में विभक्त कर सकते हैं। एक तो पहले वे रचनायें आती हैं जिनमें व्रजभाषा का सुन्दर रूप मिलता है†। दूसरे वे रचनायें हैं जिनमें राजस्थानी भाषा से मिश्रित व्रजभाषा मिलती है।‡ साथ ही हम यदि भक्ति के विचार से देखें तो न केवल कृष्ण-भक्ति ही इसकी रचनाओं में लहराती है वरन राम-भक्ति की भी छोटी धारा कहीं कहीं मिलती है। संभव हो सकता है, राम-भक्ति का प्रभाव मीरा पर तुलसीदास के कारण (जिनसे इनका परिचय था) पड़ा हो।+ अब यदि विषय की ओर हम देखें तो ऐसी कोई मौलिक विशेषता नहीं मिलती जो विशेष उल्लेखनीय ठहरे। वियोग-श्रृंगार को ही लेकर मीरा ने बहुत से पद रचे हैं। उन पदों में हृदय की मर्मस्पर्शिनी वेदना, वियोगिनी की अनुभूति और दिल की बेकली की कली ऐसी खिली हुई मिलती है कि वह हृदयंगम हुए बिना नहीं रहती। मीरा जगह जगह पर दीवानी हो कर अपने हृदयोद्गारों का भाषा में अनुवाद करती है।

❀ (मीराबाई) छंद नं० २२, २३, १९, २०, ११।

† ,, छंद नं० ६, ११, १४, १७, २६, २८, ३०।

‡ ,, छंद नं० ५, ७, ९, आदि।

+ ,, छंद नं० १।

"हे री मैं तो भई दीवानी मेरा मरम न जाणै कोय"

(छंद नं० ८)

वस्तुतः मीरा की जीवनी से भी यही अनुमान किया जा सकता है, क्योंकि मीरा पति-वियोग से परम व्यथित होकर अपने संतप्त हृदय को भगवद्भक्ति से ही शांति करने का प्रयत्न करती थी।

जिस प्रकार कृष्ण-भक्ति और उसके काव्य का प्रभाव मुसलमान कवियों पर पड़ा है और उन्होंने कृष्ण-काव्य लिखा है, उसी प्रकार कुछ मुसलमान महिलायें भी कृष्ण-काव्य से प्रभावित हुई हैं। उनमें ताज का स्थान ऊँचा है। ताज की रचना भक्ति-पूर्ण और सरस है। भाषा में उसके मुसलमानों की घरेलू भाषा का भी आभास पाया जाता है और यह स्वभाविक भी है। हम कह सकते हैं कि ताज ने प्रथम ब्रजभाषा से पूर्ण परिचित न होने के कारण अपनी पंजाबी और फ़ारसी-प्रभावित हिन्दी (जो आगे चल कर उर्दू का रूप धारण करती है) का ही उपयोग किया है। उदाहरणार्थ—'सुनो दिल जानी ....' छंद देखा जा सकता है। कृष्ण-काव्य की परम्परा तथा ब्रजभाषा से परिचय-प्राप्त हो जाने पर ताज ने बड़ी ही सुन्दर रचना की है। इसने पद-शैली का अनुसरण न कर के दरबारी कवियों की (जिनसे इसका सम्पर्क होना अधिक संभावित है) कवित्त-सवैया वाली शैली का प्रयोग किया है। कवित्त इसके शुद्ध और ज़ोरदार हैं।* भाषा

---

* छंद नं० २, ३ (ताज)।

भी अलंकृत और सानुप्रासिक है। खड़ीबोली का भी रूप इसके किसी किसी छंद में मिलता है।❀

साहित्य-सेवी यह जानते ही हैं कि जब मुसलमानों का राज्य भारत में स्थापित हो चुका तब उनका जीवन आमोद-प्रमोद और विलासपूर्ण हो चला। उनके दरबारों में शृङ्गार-रस के काव्य का विशेष प्रचार हुआ। इसलिए शृंगार-रस के काव्य का प्रचार दरबारी कवियों और बड़े नगरों की शिष्ट जनता में भी हो चला। एक ओर तो भक्ति-भाव-पूर्ण साहित्य तैयार हो रहा था और दूसरी ओर दरबारी कवियों के द्वारा शृङ्गार-रस से परिप्लावित काव्य की सरस धारा से प्रेमात्मक साहित्य बन रहा था। नगर और दरबार से संबंध रखने वाली या उनकी संपर्क-सीमा में आने वाली स्त्रियों पर भी इस शृङ्गार-काव्य की मोहिनी आ गई। शेख जैसी स्त्रियों ने इसीलिए प्रेम-पूर्ण मधुर शृंगार की अच्छी समा-सुषमा निखराई और बिखराई है। शेख बड़ी ही सहृदया और रसिका थी। काव्य-कला-कौशल और वाक्चातुर्य्य भी उसमें ऐसा मनोमोहक था कि आलम जैसे प्रेमी कवि भी उस पर मुग्ध हो कर बिक गए। शेख की भाषा प्रसाद-पूर्ण, सरल, सुव्यवस्थित और मधुर है। कह नहीं सकते कि व्रजभाषा से इतना परिचय इसको कैसे हो गया। संभव है कि आलम के सहयोग या संबंध का यह प्रभाव हो अथवा रँगरेज़िन होने के

❀ छंद नं० १ (ताज)।

कारण उसका सम्बन्ध व्रज-भाषा-परिचित अन्य रसिक कवियों से रहा हो।

कहीं कहीं शेख ने प्रेम के उस रूप का भी चित्रण किया है जो फ़ारसी-साहित्य में प्रधानता से मिलता है। मजनूँ और लैला स्वभावतः ही उसके मन में आदर्श प्रेमी और प्रेमिका के रूप में अंकित थीं।* बारीक ख्याली और नाज़ुक मिज़ाजी भी कहीं कहीं अच्छी मिलती है। उर्दू और फ़ारसी में इसकी प्रधानता ही है। प्रेम की पीर भी इसके अन्दर बड़ी ही मर्मस्पर्शिनी व्यंजना के साथ पाई जाती है। कहीं कहीं तो ऐसा मालूम होता है कि मानों भुक्त-भोगी अपनी अनुभूति लिख रहा हो। वस्तुतः प्रेमात्मक काव्य का जैसा स्वभाविक वर्णन घनानंद, बोधा और ठाकुर आदि में पाया जाता है वैसा ही यदि नहीं तो उस से कम भी नहीं शेख में पाया जाता। पाठक 'आलम-केलि' यदि देख सके हैं तो हमें यहाँ विशेष कहने की आवश्यकता नहीं है। अनुप्रास, यमक और दूसरे भावोत्कर्षक अलंकार भी इसकी रचना में अच्छे मिलते हैं। शेख ने कुछ छंद भक्ति अथवा शांति रस के भी लिखे हैं। उससे यह प्रगट है कि शेख शांत रस भी अच्छा लिखती थी।† यदि हम शेख को बोधा और तोष की श्रेणी में रक्खें तो शायद अनुचित न होगा।

---

* छंद नं० २३, (शेख)।

† छंद नं० २०, २१ (शेख)।

दरबारों के प्रभाव से वेश्यायें भी हिन्दी-काव्य की ओर झुकने लगीं थीं। वे न केवल संगीत-कला की ही शिक्षा प्राप्त करती थीं वरन हिन्दी-काव्य-शास्त्र का भी यथोचित अध्ययन करते हुए काव्य-रचना करने लगी थीं। प्रवीणराय इसके लिए ज्वलंत उदाहरण है। प्रवीण-राय वस्तुतः काव्य-कला-कुशला और काव्य-रसिका थी। आचार्य्य केशवदास ने भी मुक्त कंठ से इसकी प्रशंसा की है। प्रवीण ने केशव का ही अनुकरण करते हुए साहित्य की विविध छंदात्मक शैली में रचना की है और इसके प्रायः सभी छंद काव्य-कौशल से चमत्कृत हैं। आचार्य केशव के सत्संग से इसकी रचना-शैली, भाषा तथा विचारावली सभी उन्हीं के ही समान हैं। कवित्त, सवैया, दोहा, गारी इत्यादि छंद इसकी रचना में पाई जाती हैं। इसका रचा हुआ कोई ग्रंथ प्राप्त नहीं है। संभवतः इसने किसी ग्रंथ की रचना भी नहीं की। शृंगारात्मक काव्य की इसमें विशेषता है, और ठीक भी है। आचार्य्य केशव तो इसकी कविता की इतनी सराहना करते थे कि उन्होंने अपनी रामचंद्रिका के लिए इससे रामकलेवा के प्रसंग में गारी लिखाई है। यह गारी वास्तव में कलेवा के समय शिष्ट घरों में गाने योग्य है। उच्च कोटि के साहित्यिक गुण भी इसकी रचना में पाये जाते हैं।

सरल भाषा में दोहा जैसे छोटे छोटे छंदों से सुन्दर भक्ति-काव्य लिखने वाली स्त्रियों में दयाबाई और सहजोबाई के नाम विशेष उल्लेख-नीय हैं। भक्ति-काल में जिस प्रकार संतों ने जो कि भगवद्भक्त और सत्संगी आदमी थे तथा काव्य-शास्त्र से पूर्ण परिचित न थे, अपनी

अपनी बानियाँ, दोहा, साखी आदि छंदों में लिखी हैं, उसी प्रकार दयाबाई और सहजोबाई ने भी किया है। इन्हें हम संत-श्रेणी में रख सकते हैं। दोनों देवियाँ संत चरनदास की शिष्या हैं। इसीलिए इन पर संत-काव्य का ऐसा प्रभाव पड़ा है। इनके काव्य में उच्च कोटि की साहित्यिक क्षमता तो नहीं है किन्तु संतों के समान विरक्ति, गुरुपूजा, निगुर्ण-उपासना आदि की विचारावली साधारण भाषा में सुचारुता से मिलती है। कहीं कहीं उक्ति-वैचित्र्य का भी आनंद मिलता है। संतों ने प्रायः आत्मा को ब्रह्म की प्रेमिका के रूप में मान कर संसार में आने पर उससे पृथक हुआ कहा है और सांसारिक जीवन को वियोग-जीवन मानते हुए प्रेम की पीर से भरी हुई मर्मस्पर्शिनी व्यंजना के साथ आत्मानुभूति का अच्छा चित्रण किया है। यही बात इन दोनों देवियों की रचनाओं में भी न्यूनाधिक रूप से पाई जाती है।

साहित्य-भ्रमरों से महाराज नागरीदास का नाम छिपा नहीं है। यह बड़े सिद्ध और प्रसिद्ध महात्मा और कवि हुए हैं। रसिकविहारी जी ने, इनकी धर्मपत्नी होना सब प्रकार से चरितार्थ किया है। यह महारानी भी भक्ति-रसस्नाता और सहृदया कवि थीं। नागरीदास की रचनाओं के साथ जो रचनायें इनकी प्राप्त होती हैं वे वास्तव में बड़ी ही सुंदर हैं। इन्होंने व्रजभाषा और मारवाड़ी दोनों में रचनायें की हैं और दोनों अपने अच्छे रूप में व्यवहृत हुई हैं। दोहा और पद-शैली की ही इनमें विशेषता है। इसी नाम के एक सुकवि और हुए हैं जिन्होंने शृंगारात्मक रचना कवित्त-सवैया शैली में की है। रसिक-

बिहारी ने अपनी भावुकता का परिचय अपनी भक्ति-पूर्ण रचनाओं में दी है।

हिन्दी-साहित्य के पुरुष कवियों में जिस प्रकार कुंडलिया छंद लिखने वाले श्री गिरिधरदास और श्री दीनदयाल गिरि की कुंडलियाँ विशेष प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार स्त्री-समाज में साईं और छत्रकुंवरि बाई ने कुंडलिया छंद की रचना में विशेष स्थान प्राप्त किया है। छत्रकुँवरि बाई ने तो कुंडलिया को एक विशेष रूप में रखा है। दोहे के चतुर्थ चरण की आवृत्ति करते हुए इन्होंने न तो पंचम चरण में अपना नाम या उपनाम ही रखा है और न कुंडलिया के प्रारम्भिक शब्द की आवृत्ति उसके अंतिम चरण में ही की है। इस प्रकार की कुँडलिया बहुत कम मिलती हैं और इसीलिए बाई जी उल्लेखनीय हैं। बाई जी ने भक्ति-पूर्ण रचना में इसी छंद का उपयोग किया है। यह भी एक विशेषता है क्योंकि प्रायः रीति-काव्य ही कुँडलिया-शैली से लिखा गया है। साईं का नाम यहाँ विशेष उल्लेखनीय इसलिए है कि ये कविवर गिरिधर जी की स्त्री हैं और इन्होंने उनके उस संकल्प को पूर्ण किया है जिसे वे कुंडलिया-ग्रंथ रचना के संबंध में कर चुके थे। जिस निश्चित संख्या में गिरिधर जी ने कुंडलियों के बनाने का विचार किया था उतनी के पूर्ण करने के पूर्व ही उनकी मृत्यु हो गई। अस्तु, उस संख्या की पूर्ति साईं ने की। गिरिधर और इनकी रची हुई कुंडलियों में यही अंतर है कि इनकी रची हुई कुंडलियों में पहले साईं शब्द का प्रयोग अवश्य मिलता है। उन्होंने अपने पति के

संकल्प-रक्षार्थ उनका नाम भी अपनी कुंडलियों के उसी प्रकार रक्खा है जैसे गिरिधर दास स्वयं रखते थे। सबसे विशेष और ध्यान देने योग्य बात यह है कि इनकी कुंडलियाँ भाषा, शैली आदि किसी भी दृष्टि से देखिये वैसी ही मिलती हैं जैसी गिरिधर दास की हैं। इन्होंने अपनी रचना उनकी रचना से सर्वथा मिला दी है और यह मामूली योग्यता का काम नहीं।

यह हम पहले लिख चुके हैं कि हिन्दी-साहित्य-रचना का कार्य्य विशेष रूप से उन्हीं देवियों ने किया है जो राजघरानों या धनी-मानी शिष्ट घरानों की सुगृहिणियाँ थीं। इसकी पुष्टि के लिए बहुत सी रानियों की रचनायें उपस्थित की जा सकती हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में भी बहुत सी प्रधान रानियों की सुरचनायें भी रखी गई हैं। हम इन सब का एक विशेष वर्ग बना लेते हैं और साधारण घरों की स्त्री-कवियों से इन्हें प्रथक करके 'रानी-कवि-वर्ग' में रखते हैं। इनके देखने से यह प्रगट होता है जितना अधिक कार्य्य रानियों ने अधिक संख्या में किया है उतना अधिक कार्य्य उतनी अधिक संख्या में उस समय हमारे राजाओं ने नहीं किया। यह अवश्य है कि राजाओं में से बहुतों ने काव्य-शास्त्र जैसे गंभीर विषयों पर भी सुन्दर रचनायें की हैं और रानियों ने नहीं की। किन्तु यह बात विचारणीय नहीं क्योंकि रानियों को काव्य-शास्त्रादि विषयों पर सुशिक्षा यदि साधारण स्त्रियों के समान अप्राप्य न थी तो दुष्प्राप्य अवश्य थी। प्रायः सभी रानियों ने भक्ति विषयक काव्य ही रचा है। कारण वश किसी किसी ने विप्रलंभ शृंगार-

संबंधी कुछ रचनायें अवश्य कर दी हैं किन्तु समुदाय में व्यापकता विशेषतया भक्ति-काव्य की ही रही है। हिन्दी-कवियों में वंश-परम्परा से न तो कवि श्रेणी ही चलती है और न काव्य-रचना ही प्रगतिशील होती है। उर्दू के समान उनमें कवियों के गुरु-शिष्य परम्परा के साथ भी कवि-श्रेणी और काव्य-रचना की गति नहीं पाई जाती। रानी कवियों में कुछ ऐसे वंश हैं जिनमें वंश-परम्परा के साथ कविता करने वाली रानियों की भी परम्परा चली है अर्थात् एक वंश में उत्पन्न होने वाली रानियों ने काव्य-रचना-सम्पत्ति प्राप्त करके अपनी कवि-सत्ता को शृंखलावत् अग्रसर किया है। पाठक देखेंगे कि रानी बाँकावती 'व्रजदासी' जिन्होंने दोहा, चौपाई-शैली से प्रबन्धात्मक कृष्ण-भक्ति-काव्य व्रजभाषा में लिखा है उन्हीं के यहाँ सुन्दरकुँवरि बाई जैसी सत्यकाव्यकारिणी रानी हुई हैं। सुन्दरकुँवरि बाई ने भी साहित्यिक, विविध छंदात्मक शैली से शृंगारात्मक काव्य भी लिखा है और पद-रचना भी की है। सुन्दरकुँवरि बाई के काव्य में उच्चकोटि के साहित्यिक गुण पाये जाते हैं। इन्होंने भी जितनी कुंडलियाँ लिखी हैं वे सब छत्रकुँवरि बाई की सी ही हैं। इनकी भाषा बड़ी ही शिष्ट स्वच्छ और सुव्यवस्थित है। लालित्य, कांति और प्रसाद-गुणों के साथ साथ भाव-गाम्भीर्य्य और भावनोत्कर्ष भक्ति की व्यंजना के साथ अच्छे रूप में पाये जाते हैं। शृंगारात्मक काव्य भी तोष और दास की श्रेणी का है। उत्प्रेक्षा, उपमा और रूपक आदि अलंकारों की सुन्दर योजना, अनुप्रास-छटा के साथ सर्वत्र इनके कवित्त आदि

छंदों में पाई जाती है। शांत-रस की कविता भी इनकी बड़ी ही सुन्दर है। इनकी रचनायें न केवल स्त्रियों की साधारण कक्षाओं में ही पढ़ाने योग्य हैं वरन् उच्च कक्षाओं में पढ़ाई जाने वाली पुरुष कवियों की रचनाओं के साथ रखी जाने की अधिकारिणी हैं। वर्णन-शैली भी इनकी चित्रोपम और साकार है। वीर रस की भी कविता इस देवी ने की है, वह भी उसी टक्कर की है जैसी श्रृंगार-रस की। सुन्दर-कुँवरि बाई को हम इसलिए स्त्री-कवियों में बहुत ऊँचा स्थान देते हैं। इन्होंने ११ ग्रंथों की रचना की हैं।

सुन्दरकुँवरि बाई के समान किन्तु साहित्यिक दृष्टि से उनसे कुछ उतर कर स्थान दिया जा सकता है प्रतापकुँवरि बाई को। इन्होंने १२ ग्रंथ रचे हैं और तुलसीदास के समान दोहा चौपाइयों में तथा कुछ अन्य छंदों में भी राम-काव्य लिखा है। इनके बराबर कदाचित किसी दूसरी महिला ने राम-काव्य की ऐसी सफल रचना नहीं की। इनकी भाषा में राम-काव्य-प्रयुक्त परंपरागत अवधी भाषा का ही प्राधान्य है। वास्तव में अवधी भाषा राम-काव्य के लिए ही उठाई गई थी। कहीं कहीं 'हाज़िरी' 'हज़ार' आदि फ़ारसी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। भाषा बड़ी ही संयत, शिष्ट और सुन्दर है। यद्यपि वह अनुप्रासों ने बहुत चमत्कृत नहीं है तो भी यथोचित रूप से कहीं कहीं अलंकारों से अलंकृत है। प्रतापकुँवरि बाई ने अपने काव्य-कौशल को अपने ही तक नहीं रखा वरन् उसे अपने संबंधियों और सखियों में भी प्रचलित किया है। रत्नकुँवरि बाई जी, जिन्होंने पद-शैली से अच्छी रचना की

है, यद्यपि थोड़ी ही की हैं, इसकी उदाहरण हैं। राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द का नाम हिन्दी संसार में विख्यात ही है, रत्नकुँवरि बीबी इन्हीं की दादी थीं। ये भी सुन्दर रचना करती थीं। कदाचित यह दूसरी देवी हैं जिन्होंने प्रबन्ध-काव्योचित दोहा-चौपाई वाली शैली में कृष्ण-काव्य लिखा है।

तुलसी और केशव के पश्चात राम-काव्य के क्षेत्र में जैसी ख्याति रींवा-नरेश श्रीमान् रघुराजसिंह जी को मिली है वैसी और किसी को नहीं प्राप्त हुई। बाघेली विष्णुप्रसाद कुँवरि इन्हीं की सुपुत्री थीं। इन्होंने तीन ग्रंथों की रचना की है। 'अवध-विलास' नामी ग्रंथ में तो राम-चरित्र दोहा-चौपाई की शैली से लिखा गया है। यह तो इन पर पड़े हुए इनके पिता के प्रभाव का फल है। दूसरा ग्रंथ 'कृष्ण-विलास' और तीसरा 'राधा-रास-विलास' है। इन दोनों में कृष्ण-काव्य लिखा गया है। विशेष अवलोकनीय तथा स्मरणीय बात यह है कि 'राधा-रास-विलास' में पद्य के साथ गद्य भी लिखा गया है। हमारी समझ में इनसे पहले और शायद ही किसी देवी ने गद्य लिखा हो। इस प्रकार हम इन्हें गद्य-लेखिका भी कह सकते हैं। इनकी रचना यद्यपि बहुत उच्चकोटि की नहीं है तो भी वह सरस, सुन्दर और सराहनीय है। राम-चरित्र लिखते हुए इन्होंने बहुत स्थलों पर तुलसीकृत रामायण से सहायता भी ली है।* न केवल भाव ही उन्होंने अपना

---

* पृष्ठ नं० १६६ देखिये।

लिये में वरन् कहीं कहीं तो तुलसीदास की पदावली भी रख ली है। राम-काव्य में जिस प्रकार अवधी का प्राधान्य है उसी प्रकार इनके कृष्ण-काव्य में, जो विवाहित होकर कृष्ण-भक्ति-स्नात जयपुर के राज्य-भवन में रहने के प्रभाव का फल है, व्रजभापा की प्रधानता है। अतः कहना चाहिए कि रानी साहवा दोनों भापात्रों में साधारणतः अच्छी रचना करती थीं। कृष्ण-काव्य में पद-शैली की रचना का बाहुल्य है। कहीं कहीं इन्होंने कवित्त आदि दूसरे छंद भी लिखे हैं।

हिन्दी-साहित्य के इतिहास का अवलोकन करने वालों को यह ज्ञात ही होगा कि कला-काल के पश्चात जब आधुनिक काल का उदय हुआ है तब समस्या-पूर्ति की पद्धति से मुक्तक-काव्य रचना की परम्परा का अच्छा प्रचार और प्रस्तार हुआ है। उसी समय में भिन्न-भिन्न स्थानों पर कवियों ने, जिनका अव्र पाश्चात्य-सभ्यता-साहित्य से प्रभावित राज-दरवारों में वैसा मान-सम्मान और आना-जाना न रह गया था, अपने अपने कवि-समाज या कवि-मंडल स्थापित कर लिए थे जिनके द्वारा समस्या-पूर्ति की परम्परा प्रचुर रूप से बहुत दिनों तक चलती रही और अब तक कुछ कुछ अंश में चली जा रही है। कुछ समाजों ने भारतेन्दु बाबू की 'कवि-वचन-सुधा' नामी साहित्यिक पत्रिका को देख कर उसी रूप में समस्या-पूर्ति तथा स्फुट कविता संबंधी पत्रिकायें निकाली थीं जिनमें तत्कालीन सभी कवियों की पूर्तियाँ छपा करती थीं।

समस्या-पूर्ति की शैली से मुक्तक काव्य करने वाली महिलाओं में सब से प्रथम चन्द्रकला बाई का नाम विशेष उल्लेखनीय है। करुणा-शतक,

राम-चरित्र आदि कई ग्रंथों की भी इन्होंने रचना की है। कवि-समाज में इनका नाम ऐसा फैल गया था और इनकी पूर्तियों को देखकर कवि लोग इनकी रचनाओं के लिए ऐसे उत्सुक रहा करते थे जिसका परिचय पाठकों को इस पुस्तक से हो जायगा। इनकी पूर्तियाँ 'काव्य-सुधा-धर' पत्र में प्रकाशित होती थीं। इनकी रचना साहित्यिक-गुण-सम्पन्न और अच्छी श्रेणी की है। पदावली सानुप्रासिक और अलंकृत है। भाषा परिपक्व, परिमार्जित और भाव-पूर्ण है। मधुरता और सरसता भी पद-लालित्य के साथ इनके रचना-सौन्दर्य्य को और भी उत्कृष्ट और मनोरम करती है। कल्पना भी इनकी प्रतिभामयी है। 'रामचरित्र' में राम-काव्य और 'करुण-शतक' में करुणा रस की रचनायें अवलोकनीय हैं। शृङ्गारात्मक काव्य भी इनका सराहनीय है। इन्होंने कविता को कला की दृष्टि से अपनाया था और इसीलिए इन्होंने शृंगार रस की न्यूनाधिक रूप से वैसी ही रचना की है जैसे पुरुष कवि प्रायः किया करते हैं। स्त्रियाँ बहुधा इस प्रकार की रचनायें अपनी स्वाभाविक लज्जा के कारण नहीं किया करतीं यद्यपि कला की दृष्टि से अश्लीलता को दूर रखते हुए प्रेम-पूर्ण शृंगारात्मक कविता वे कर सकती हैं और की भी हैं। आजकल भी प्रेम के काल्पनिक चित्रों को हमारी कई स्त्रियाँ अपने काव्य में बड़ी चारुता से चित्रित किया करती हैं। हाँ उनका रूप वैसा अवश्य नहीं होता जैसा चंद्रकला बाई जैसी देवियों के शृंगरात्मक रचनाओं में पाया जाता है। कहीं कहीं तो चन्द्रकला ने मतिराम की सी छटा अपने छंदों में दिखला दी है। सुन्दरकुँवरि बाई

के पश्चात यदि हम किसी देवी को ऊँचा स्थान देना चाहते हैं तो वह चंद्रकला बाई ही हैं।

व्रजभाषा और उसकी कविता को खड़ीबोली की इस घटना-घटाटोप में सुप्रकाश करने वालों में महाकवि रत्नाकर आदि के पश्चात् सुविख्यात वियोगी हरि जी उल्लेखनीय हैं। हरि जी ने यह काव्य-कला-गुण जिनसे प्राप्त किया है वे भी बधाई और प्रशंसा की सुपात्रा हैं। छतरपुर के वर्तमान नरेश की महारानी श्री युगलप्रिया जी के ही वियोगीहरि शिष्य हैं। युगल-प्रिया जी इसीलिए विशेप उल्लेखनीय हैं। कृष्ण-भक्ति-काव्य, जिसे इन्होंने पद-शैली में विशेप रूप से लिखा है, वास्तव में सराहनीय है। इन्हों ने कहीं कहीं अधुनिक समय के वहिरंग भक्त तथा अंतरंग विषयासक्तों की चुटकी भी ली है। भक्तों में 'परस्परं प्रशंसंति' की परिपाटी सदा ही से से अवाध रूप में चली आई है। भक्त भगवान के भक्त को न केवल अपना पूज्यपाद ही मानता है वरन उसे अपना स्वामी और गुरु सा भी समझता है। भक्त, भक्त का भी दास होता है चाहे भक्त कैसा ही क्यों न हो। भक्त-समाज में यही सिद्धान्त है। देवी जी ने ऐसा न करके साम्राज्ञी के नये नीति-पूर्ण नीर-क्षीर विवेकी हंस-न्याय के प्रभाव से इस छद्माकुला प्रणाली की आलोचना की है और जनता को द्वेधी वृत्ति-धारी-बगुला-भक्तों से सचेत रहने की चितावनी दी है। रचना साधारणतया यदि परमोच्च कोटि की नहीं तो किसी प्रकार घट कर भी नहीं है।

राम-काव्य लिखने वाली देवियों में जिनका नाम हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, उनके पश्चात यदि और कोई उल्लेखनीया हमें यहां

कोई जँचती हैं तो वह रानी रामप्रिया देवी हैं। आप ने सवैया, त्रोटक, कवित्त, पद आदि विविध छंदों में लालित्य और माधुर्य्य-गुण-पूर्ण सुन्दर रचना की है। यद्यपि रचना बहुत सुन्दर नहीं है तथापि सराहनीय है। भक्ति-भाव तो उस में खूब ही भरा हुआ है। पदावली भी परिष्कृत और प्रौढ़ है। वाक्य-विन्यास, अनुप्रास और अलंकारों से यथोचित स्थानों पर अलंकृत है। सामयिक प्रभाव से रानी साहबा समस्या-पूर्ति भी किया करती थीं और अच्छी कर लेती थीं।

यहाँ तक तो हमने प्राचीन महिलाओं की रचना का सूषम आलोचनात्मक विवोचन किया। अब वह समय हमारे सामने आता है जब से हमारे हिन्दी-साहित्य का आधुनिक-काल प्रारंभ होता है और हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में खड़ीबोली के गद्य का प्रचार बड़े प्रबल-बल-वेग से होने लगता है। जिसके कारण साहित्य का पद्य-विभाग कुछ शिथिल और मंद-गति-गामी हो जाता है। खड़ीबोली के प्रचार से ब्रजभाषा का यद्यपि उतना प्राधान्य नहीं रह जाता जितना पूर्ववर्ती कालों में था। अब तक प्राचीन शैली से काव्य करने वाले जो ब्रजभाषा में रचनायें करते हैं इनकी संख्या उतनी अधिक नहीं है जितनी खड़ीबोली के लेखकों और कवियों की। पत्र-पत्रिकाओं के प्रचुर प्रचार एवं मुद्रण-यन्त्रों के प्रचार से पुस्तक-प्रकाशन के कार्य्य के प्रस्तार से आज खड़ी-बोली व्यापक और सर्व साधारण की भाषा हो रही है ऐसी दशा में ब्रजभाषा में रचना करना सुलभ साध्य नहीं रह गया। क्योंकि चिर-परिचित तथा नित्य व्यवहृत भाषा के स्थान पर किसी अपरिचित किंचित

विस्तृत भाषा में बिना उसका अध्ययन किये हुए साहित्यिक कार्य करना यदि असाध्य नहीं तो कष्टसाध्य अवश्य है। यही कारण है कि आज खड़ीबोली में कविता करने वाले नवयुवकों की संख्या कुछ बढ़ रही है।

इसी काल से अंग्रेज़ी तथा बंगला आदि अन्य भाषाओं के साहित्यों का प्रभाव हमारे हिन्दी-साहित्य तथा उसके रचने वालों पर पड़ चलता है। जिसके कारण न केवल गद्य-रचना में ही कतिपय विशेष परिवर्तन हो जाते हैं वरन् पद्य-रचना में भी रूपान्तर हो चलते हैं। काव्य-साहित्य की प्राचीन शैलियों के स्थानों पर निबंधात्मक तथा काल्पनिक-प्रेमात्मक साधारण शैलियों का नवोदय और नवविकास हो चलता है। कांगरेस और उसके राजनीतिक आन्दोलनों से देश में जो देशभक्ति की तरंग तरंगित होती है उसका प्रभाव उसी प्रकार आधुनिक काव्य-साहित्य पर भी पड़ता है जिस प्रकार पूर्व-कालों में देश की अन्य प्रमुख विचार-धाराओं के प्रभाव पड़े थे। महर्षि दयानंद के धार्मिक एवं सामाजिक-सुधार का शंखनाद भी हमारे नवकवियों की लेखनियों को समाज और एकेश्वरवाद-संबंधी विषयों की ओर प्रवर्तित कर देता है। बंगला के कवियों की निबंधात्मक तथा रहस्यात्मक-शैली का अनुकरण खड़ीबोली की रचनाओं में होने लगता है। अंग्रेज़ी-साहित्य के प्रचार से प्रकृति-चित्रण और कल्पना-जन्य चित्रोपम-प्रेम-निरूपण-काव्य विकसित होता हुआ चलने लगता है।

जिस प्रकार भारतेन्दु बाबू के समय से खड़ीबोली के गद्य और पद्य में नवीन उत्थान प्रारंभ होता है उसी प्रकार स्त्री-साहित्य में हम श्रीहेमंत-

कुमारी चौधरानी के समय से नवोन्नति का प्रारंभ देखते हैं। चौधरानी जी ने रचना-कार्य्य तो उतना स्तुत्य नहीं किया किन्तु अपने पिता श्री नवीनचंद्रराय को देखते हुए पंजाब-प्रांत में, जहाँ उस समय उर्दू का विशेष बोलबाला था, हिन्दी का चिरस्मरणीय प्रचार-कार्य्य किया है। स्त्री-शिक्षा की जागृति और उन्नति का श्रेय पंजाब-प्रांत में यदि किसी महिला-रत्न को मिल सकता है तो वह इन्हीं को।

साहित्य-रचना का प्रशंसनीय कार्य्य इस आधुनिक-काल में जिन महिलाओं ने किया है उनमें से रानी रघुवंश कुमारी का नाम प्रथम उल्लेखनीय है। इस देवी ने अपनी रचनाओं से स्त्री-संसार को सूचित किया है कि स्त्रियों का साहित्य पुरुषों के साहित्य से स्वतंत्र और पृथक होना चाहिए। इन्होंने स्त्री-उपयोगी विषय चुनकर इन्हीं पर मौलिक रचनायें की हैं। 'भामिनी-विलास' 'बनिता-बुद्धि-विलास' और 'सूप-शास्त्र' विशेष उल्लेखनीय पुस्तकें हैं। पुस्तकों के नामों से ही इनके विषयों का पर्याप्त परिचय मिल जाता है। वास्तव में हमारी देवियों को इस ओर ध्यान देना और कार्य्य करना चाहिए। यह कहा जाता है कि क्या स्त्रियाँ पुरुषों के समान उत्कृष्ट साहित्य का अध्ययन, उसका प्रवर्धन आदि नहीं कर सकतीं और क्या उन्हें गार्हस्थ्योपयोगी विषयों पर ही सदैव निर्भर रहना चाहिए? उत्तर में यह कहना अनुचित न न होगा कि स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान उच्चकोटि के साहित्य-क्षेत्र में विचरण कर सकती हैं। किन्तु इसके साथ ही उन्हें उस गौरव-पूर्ण उत्तरदायित्व को सदैव अपने लक्ष में रखना चाहिए जो उन्हें अत्यन्त

विश्वास करके दिया गया है और जिसके आधार पर उन्हें गृह-लक्ष्मी और सहधर्मिणी आदि की उपाधियाँ दी जाकर पुरुष-समाज का जीवन-सार समर्पित कर दिया गया है। अस्तु। गार्हस्थ्य-संबंधी विषयों में दक्षता प्राप्त करना स्त्रियों का एक परमोच्च कर्तव्य है। रानी रघुवंश कुमारी जी ने कविता, सवैया, बरवा, पद तथा सोहर आदि विविध छंदों में रचना की है। हमारी समझ में कदाचित इन्होंने सुन्दर बरवै लिखे हैं। भाषा इनकी परम शुद्ध और सच्ची व्रजभाषा न होकर मिश्रित व्रजभाषा सी है। इसमें अवधी और कहीं कहीं खड़ीबोली की भी पुट है। किन्तु उस समय पूर्वी प्रान्तों में इसी प्रकार की भाषा का विशेष प्रचार था। इसलिये रानी साहबा का इस भाषा में रचना करना न्याय-संगत ही है।

हिन्दी-साहित्य के कला-काल में जिस प्रकार भूषण ने वीर-स्तवन-काव्य विशेष रूप से लिखा है उसी प्रकार इस काल में स्वर्गीय लाला भगवानदीन जी की धर्मपत्नी श्री बुंदेलाबाला ने वीर-काव्य लिख कर अपने नाम को सार्थक किया है। बुन्देलखंड भारतीय इतिहास के मध्यकाल में वीर बघेलों का प्रदेश था। बुंदेलाबाला के शरीर और प्राण दोनों में वहाँ की वीर-रस-संसिक्त प्रकृति का पूरा प्रभाव था। इन्होंने स्वर्गीय लाला जी से काव्य-शास्त्र तथा छंद-शास्त्र का भी पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया था और इसीलिए इनकी कविता में काव्य-गुण चारुता से मिलते हैं। इनकी भाषा शुद्ध खड़ीबोली है। उसमें ओज-प्रसाद आदि गुण हैं। वह जोशीली और उत्तेजक है। शैली

इनकी साधारण और सरल है क्योंकि इनका उद्देश्य समाजोचित-साहित्य की रचना करने का था और ये अपनी वीर-रसमयी वाणी को नवयुवकों और नवयुवतियों के हृदयों में पैठाना चाहती थीं। दोहा-शैली से नीति-काव्य भी इन्होंने वृंद जैसे कवियों के समान अच्छा लिखा है। प्रेम पर भी इन्होंने कुछ रचना की है और कहीं कहीं उर्दू-साहित्य के भाव तथा उदाहरण उर्दू-शब्दों के साथ रख दिए हैं। इन्होंने तुकबंद कवियों पर भी उपदेश-पूर्ण कटाक्ष किये हैं। कुछ रचनायें इन्होंने कथोपकथन शैली से भी लिखी हैं। बुन्देलाबाला जी का इन्हीं विशेषताओं के कारण साहित्य में हम अच्छा स्थान स्वीकार करते हैं। स्त्री-समाज में इन्हें वही स्थान दिया जा सकता है जो पुरुष कवि-समाज में भूषण जैसे कवियों को दिया गया है।

यह साहित्य-सेवियों से छिपा नहीं है कि आधुनिक काल के प्रारंभ में तथा भारतेन्दु बाबू के पश्चात् तक समस्या-पूर्ति सम्बन्धी मुक्तक-काव्य की रचना का अच्छा प्रचार रहा है। समस्या-पूर्ति सम्बन्धी कतिपय पत्र और पत्रिकाएं भी निकलती रही हैं। यहाँ जिस देवी जी का हम सूक्ष्म विवेचन करने जा रहे हैं वह इसी समय की शैली में रचना करने वाली हैं। इनका नाम रमा देवी है। इन्होंने ब्रजभाषा और खड़ी-बोली दोनों में रचनायें की हैं, जैसा आधुनिक समय के कतिपय कवियों ने भी किया है। इन्होंने कहीं कहीं ठेठ देहाती बोली का भी प्रयोग किया है। सामयिक प्रवाह से प्रभावित होकर इन्होंने जो रचनायें व्यंग और हास्य-पूर्ण की हैं वे अत्यन्त मनोरंजक हैं। उर्दू-हिन्दी-

मिश्रित भाषा का भी इन्होंने उपयोग किया है। नीति-विषयक-रचनाओं में दोहा-शैली को ही प्रधानता दी है। समस्या-पूर्तियों में कहीं कहीं उक्ति-वैचित्र्य और कला-कौशल भी अच्छा मिलता है। हमारी समझ में रमा जी का भी स्थान साहित्य-क्षेत्र में ऊँचा ठहरता है।

खड़ीबोली के काव्य-जगत में नवीन पद्धति से काव्य-रचना करने वाली महिलाओं में श्रीमती तोरन देवी शुक्ल 'लली' जी सर्वाग्रगण्य हैं। 'लली' जी ने शुद्ध खड़ीबोली का प्रयोग जैसा अच्छा किया है वैसा कदाचित किसी दूसरी देवी ने नहीं किया। इन्होंने सामयिकता को अपने सामने रख कर नवीन विषयों पर नवीन शैली से मनोहारिणी रचनायें की हैं। देशानुराग, प्रेम, वीर-भाव इनकी रचनाओं में विशेष प्रधानता रखते हैं। आपने काव्य-रचना की प्राचीन कवित्त, सवैया, दोहा, चौपाई आदि शैलियों को न अपना कर आधुनिक समय की नवीन छंदात्मक शैलियों में ही रचना की है। रचना भाव-पूर्ण, प्रभावोत्पादिनी और रोचक है। इनकी कविता में ओज और वीरत्व का जो प्रादुर्भाव होता है वह वर्तमान खड़ीबोली के लिए नवीन और गौरवपूर्ण है। हम इन्हें आधुनिक समय में खड़ीबोली में रचना करने वाली देवियों की प्रधान प्रतिनिधि समझते हैं।

न केवल स्त्री-समाज को ही जिस देवी पर गर्व है वरन् पुरुष समाज में भी जिनका नाम बड़े सम्मान से लिया जाता है वे श्रीमती सुभद्रा कुमारी जी चौहान हैं। वर्तमान समय में इन्हें खड़ीबोली की सुन्दर रचना के लिए अच्छी ख्याति और प्रतिष्ठा मिली है। हाल ही में

इनकी स्फुट रचनाओं का संग्रह 'मुकुल' नाम से पुस्तक रूप में प्रकाशित हुआ है। जितनी रचनायें इनकी अब तक देखने में आई हैं उनसे इनकी प्रौढ़ प्रतिभा और प्रशस्त कवित्व-शक्ति का पता चलता है। इन्होंने भी भिन्न भिन्न प्रकार के नवीन छंदों में मुक्तक शैली से, जिसमें इतिवृत्तात्मक निवन्ध-रचना ही विशेष रूप से होती है, रचनायें की हैं। भाषा यद्यपि उच्चकोटि की साहित्यिक खड़ीवोली नहीं है तो भी शुद्ध, सुव्यवस्थित और पूर्ण परिष्कृत होती हुई अच्छी साहित्यिक खड़ीबोली अवश्य है और जिसमें कहीं कहीं उर्दू शब्द भी देखने में आते हैं। स्वदेश-प्रेम तथा अन्य नवीन विषयों पर इन्होंने अपनी हार्दिक अनुभूति की मार्मिक व्यंजना का प्रतिविंव डालते हुए स्फुट कवितायें लिखी हैं। कहीं कहीं तो इन्होंने प्राचीन कवियों के भाव ले लिए हैं किन्तु उन्हें कुछ नवीनता से अपने साँचे में ढाल कर मौलिकता लाने का प्रयत्न किया है। कहीं कहीं उर्दू छंदों का भी उपयोग किया है। वर्णन-शैली इनकी सजीवता और चित्रोपमता रखती है। हार्दिक भावों का साधारण भाषा में यथातथ्य प्रकाशन इनकी रचनाओं का मूल उद्देश्य जान पड़ता है। प्रेम की भी पवित्र आभा से इनकी बहुत सी रचनायें चमक उठी हैं। ऐसे स्थलों में जान पड़ता है कि सुभद्राकुमारी जी प्रेम की पुजारिनी और अदृश्य की उपासिका और कल्पना की अनुरक्ता हैं। स्वाभाविक भावों और अनुभावों का भी चित्रण इन्होने अच्छा किया है। वहुतेरी रचनायें तो ऐसी हैं जिनके देखने से यही कहना पड़ता है कि ये भुक्तभोगी हृदय से ही निकली हैं। वीर-रस की भी अपनी

उन्नत भावनाओं के साथ 'झांसी की रानी' जैसी रचनाओं में इन्होंने अच्छी धारा बहाई है। इन्होंने आद्योपांत खड़ीबोली में ही रचना की है और उच्चकोटि की रचना को है। हमारी समझ में वर्तमान समय की खड़ीबोली की रचना करने वाली देवियों में इनका स्थान बहुत ऊँचा है।

खड़ीबोली के काव्य-क्षेत्र में इधर कुछ दिनों से एक नवीन आन्दोलन सा उठा है और वह उठा है कवीन्द्र रवीन्द्र की रहस्यात्मक रचनाओं के प्रभाव से। इस आन्दोलन में नवोदित कवियों को कहाँ तक सफलता मिली है, अभी नहीं कहा जा सकता। इस आन्दोलन से जिस नवीन काव्य-शैली का प्रचार हो रहा है उसे छायावाद या रहस्यवाद की संज्ञा दी गई है। वास्तव में रहस्यवाद जिसे कहा गया है उसका अच्छा रूप तो इन नवोदित कवियों की रचनाओं में नहीं पाया जाता; हाँ रहस्यवाद की उसमें छाया अवश्य पाई जाती है और इसीलिए उसे छायावाद कहना भी युक्ति-संगत है। अनंत-सौंदर्य्य, असीम-प्रेम, और विचित्र आनंद की ओर कल्पना की ऊँची उड़ान से उड़ने वाले यह कवि खड़ीबोली काव्य-क्षेत्र के प्रकृति-वन-विहारी विचित्र विहंगम हैं। यदि ज्ञानानुभव से सहायता लेकर ये लोग अपनी प्रगति को परिमार्जित और पुष्ट करते चलें तो छायावाद-काव्य का उज्वल भविष्य निश्चित हो जायगा।

इस नवीन शैली से प्रभावित होकर जिन देवियों ने वर्तमान समय की खड़ीबोली में काव्य-रचना प्रारंभ की है उनमें श्रीमहादेवी वर्मा का

नाम सर्वाग्रगण्य है। इन्हें अंग्रेज़ी, संस्कृत और हिन्दी की उच्च शिक्षा से अपने काव्य को प्रौढ़ एवं परिष्कृत करने में बहुत बड़ी सहायता मिली है। दर्शन-शास्त्र के विषय के अध्ययन से इनकी रुचि का आध्यात्मिक-रहस्य की ओर झुक जाना साधारण सी ही बात है। प्रेम के कल्पित चित्र जो इन्होंने सरल और सरस भाषा में चित्रित किये हैं वे बड़े ही मनोरम और स्वाभाविक हैं। अनुभूति-व्यंजना भी इनमें अच्छी है। 'मेरा जीवन' शीर्षक जैसी रचनायें इसके लिए प्रमाण हैं। इनकी रचनाओं में प्रेम भरे हृदय की मार्मिक पीड़ा और वेदना छिपी है। प्रकृति के साथ में खेलती हुई कल्पना इस वेदना के सूत्र से ग्रथित होकर कैसे उद्गार निकालती है, पाठक स्वयं इनकी रचनाओं में देख लें। आधुनिक शैली में प्रायः विरोध मूलक शब्दों का एक विचित्र संगुम्फन करके रहस्यवाद की अनोखी सृष्टि का रचना-विधान किया जाता है। इस विधान की कुछ झलक इनकी रचनाओं में भी पाई जाती है। भाषा यद्यपि शुद्ध, परिष्कृत और प्रौढ़ खड़ीबोली है फिर भी कहीं कहीं उसमें कुछ अव्यवस्था तथा व्याकरण की त्रुटि खटकने लगती है। वर्णन-शैली इनकी निबन्धात्मक रचनाओं में साकार और सजीव है। पदावली में माधुर्य्य, लालित्य और मार्दव है। वर्तमान खड़ी-बोली के रहस्यवाद और छायावादी कवियों में इनका स्थान ऊंचा है।

अब दो एक देवियाँ ऐसी और हैं कि जिनका उल्लेख न करना हमारी समझ में उनके साथ अन्याय करना होगा। इनमें से एक तो श्री राजदेवी जी हैं, जो श्री सुभद्रा कुमारी चौहान की बड़ी बहन हैं।

आपने अपने समय की शैली के अनुसार खड़ीबोली और ब्रजभाषा दोनों में कविता की है। यद्यपि कविता बहुत उच्चकोटि की नहीं है तथापि सरायनीय अवश्य है। कतिपय अनिवार्य्य कारणों से आपको अपनी प्रतिभा को दबा देना पड़ा और रचना करना बंद करना पड़ा। यदि ये ऐसा न करके बराबर रचना-कार्य्य करती रहतीं तो संभवतः इन्हें स्तुत्य सफलता मिलती।

दूसरी उल्लेखनीय देवी हैं श्री सरस्वती देवी। आपके पिता बड़े ही सुयोग्य और सुकवि थे। पं० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय आपके पिता के मित्र हैं और इसीलिए आपसे परिचित भी हैं। देवी जी ने कई पुस्तकें लिखी हैं और प्राचीन नीति-काव्य लिखते हुए शतक-शैली का अनुकरण किया है। इन्होंने वर्तमान समय की पाश्चात्य सभ्यता के आतंक से प्रभावित होकर अपनी प्राचीन सम्मानित भारतीय संस्कृति-परंपरा की उदंड-उच्छृंखलता से अवहेला करने वाली स्त्रियों को देखकर 'सुन्दरी-सुपंथ' नामक ग्रंथ की रचना कर स्त्री-समाज के सामने सुन्दर आदर्श और उपदेश उपस्थित किये हैं। यद्यपि नवसमाज के सुधार की ओर अर्कर्पित नागरिक-जीवन न होने से इन्हें विशेप ख्याति नहीं मिली किन्तु हम समझते हैं कि यदि इनकी रचनायें प्रकाशित होकर पठित समाज के सामने आ जायँ तो इनका अवश्य आदर होगा।

इस संग्रह में मित्रवर निर्मल जी ने एक 'कुसुम-माला' नाम से सुन्दर रचनाओं का गुच्छा भी रख दिया है और इसमें वर्तमान समय

की उन नवोदित महिला-कवयित्रियों की एक-एक सुन्दर रचनायें ग्रथित करके एक मंजु मालिका बनाई है ; जिसने हमें आकर्षित कर लिया— इसलिये पाठकों के सामने उसका भी सूक्ष्म विवेचन उपस्थित करना हमने अपना कर्तव्य समझा। क्योंकि ऐसा न करने से पुस्तक का एक अंश अविवेचित ही रह जाता। अस्तु।

इस मालिका की कलियों के देखने से यह ज्ञात होता है कि इनमें भी काव्य-प्रतिभा है जो आगे चलकर अपने अच्छे रूप में प्रस्फुटित हो सकती हैं, यदि उसे एतदर्थ सुअवसर और अवकाश प्राप्त हो सके। ये सभी देवियाँ खड़ीबोली में ही रचनायें करती हैं और इनकी रचनायें वर्तमान पत्र-पत्रिकाओं में यदा-कदा प्रकाशित भी होती रहती हैं। 'निर्मल' जी ने जैसा कि अपने कुसुम-मालान्तर्गत संक्षिप्त प्राक्कथन में एक जगह लिखा है, इन देवियों में से कतिपय देवियों की रचनायें वर्तमान समय के नवोदित पुरुष-कवियों की रचनाओं से किसी भी प्रकार कम नहीं है। कविता यथार्थ में पुरुषों की ही संपत्ति भी नहीं है। उसे स्त्री और पुरुष दोनों समानता से ले सकते हैं। इन देवियों की संकलित कविताओं में काव्योचित सभी गुण वैसे ही पाये जाते हैं जैसे पुरुष कवियों में। इनमें से कदाचित ही किसी को ख्याति मिली हो और कदाचित ही मिले। स्त्रियाँ प्रायः जनता-प्रदत्त प्रसिद्धि के प्राप्त करने में पुरुषों से अवश्य पीछे रह जाती हैं और बहुत ही कम देवियाँ कीर्ति प्राप्त कर पाती हैं अथवा यों कहिए कि केवल वे ही देवियाँ यशोभागिनी होती हैं जो गार्हस्थ्य-जीवन से अलग होकर साहित्यिक-जीवन ही विशेष

रूप से रखती हैं और जिनकी रचनायें जनता के सामने किसी प्रकार उपस्थित हो जाती हैं। आजकल यदि सच पूछिये तो युग है विज्ञापन का। विज्ञापन-कला-कुशल चाहे वह किसी भी क्षेत्र में कार्य्य करने वाला क्यों न हो और चाहे वह भला-बुरा कैसा भो कार्य्य क्यों न करता हो, अवश्यमेव प्रसिद्धि-प्रसाद-प्राप्त कर लेता है और उन सत्पुरुषों की अपेक्षा अधिक प्राप्त करता है जो अपना विज्ञापन आप नहीं करते।

इन देवियों में हमारी समझ में कई विशेष उल्लेखनीय हैं। १. जाह्नवी देवी दीक्षित, इनकी भाषा सुन्दर मधुर और सरल है। कल्पना भी अच्छी है। वर्णन-शैली में भी सरलता है। २. शाँति देवी, इनकी भाषा प्रौढ़ परिपक्व और सानुप्रासिक है। कहीं कहीं अलंकार भी हैं। निबन्धात्मक-शैली से वर्णन-चातुर्य्य भी कल्पना-कौशल के साथ सरसता और मधुरता रखती हुई अच्छी है। ३. केशव देवी, अनुभूति-व्यंजना साधारण और स्पष्ट भाषा में इनमें विशेष पाई जाती हैं। ४. चुन्नी देवी, भाषा सुन्दर, सरस और भाव-पूर्ण है। पदावली सानुप्रासिक और अलंकृत है। काल्पनिक चित्र भी साकारता और सजीवता रखते हैं। ५. मुन्नी देवी, अनुभूति व्यंजना के साथ मृदु-मंजुल पदावली-पूर्ण सरस और मधुर भाषा में कल्पित चित्र-चित्रण इनका मनोरम है। ६. पार्वती देवी, संस्कृत-छंद की छटा है। परिपक्व भाषा, निबंधात्मक वर्णन-शैली, इनकी रचनाओं में उल्लेखनीय हैं। ७. लीलावती, सानुप्रासिक, ओजस्विनी तथा प्रभावपूर्ण भाषा में इनकी काव्य-रचना अच्छी है। ८. सत्यबाला

देवी, उर्दू शैली से साधारण भाषा में भावव्यञ्जना-पूर्ण 'अन्योक्ति' शीर्शक रचना इनकी सुन्दर और सराहनीय है। ६. चकोरी, ओजस्विनी, सबल और प्रौढ़ भाषा में इनकी राष्ट्रीय-भावों से पूर्ण रचना उल्लेखनीय है। इससे उत्तेजना मिलती है और इनकी सशक्त प्रतिभा का परिचय प्राप्त होता है। इनके सिवा और भी अनेक देवियाँ हैं जिनकी कविताओं को देखकर उनके भविष्य का सुन्दर परिचय प्राप्त होता है।

तुलनात्मक-विवेचन

हिन्दी-संसार में आज कल समालोचना का जो प्रवाह विशेष रूप से चल रहा है उसमें तुलनात्मक शैली का ही विशेष प्राधान्य है। कुछ दिनों से तो केवल तुलना मात्र को ही लोग तुलनात्मक आलोचना मानने लगे हैं। यद्यपि तुलना और तुलनात्मक आलोचना दोनों में बहुत अंतर है। यह प्रणाली यहाँ तक बढ़ गई है कि उन कवियों की भी तुलनायें की जाती हैं जिनकी वास्तव में तुलना नहीं हो सकती। क्योंकि वे कवि भिन्न विषयों पर पृथक पृथक शैली से और प्रथक पद्धतियों से रचनायें करते हैं। ऐसी दशा में उनमें सादृश्य कुछ भी नहीं रहता है, वैषम्य की मात्रा विशेष रहती है। साम्य और वैषम्य दोनों ही यद्यपि तुलना के अन्तर्गत हैं तथापि साम्य की ही विशेषता रहती है।

समालोचना के इस सामयिक प्रवाह को देखते हुए हम भी यहाँ कुछ प्रधान देवियों की रचनाओं पर तुलनात्मक शैली से आलोचना-लोक डालना चाहते हैं। इन देवियों की तुलनायें दो प्रकार से हो सकती हैं। प्रथम स्त्रियों से स्त्रियों की तुलना, दूसरे स्त्री-कवयित्रियों की पुरुष कवियों से तुलना। जहाँ तक प्रथम प्रकार की तुलना की बात है वहाँ तक तो वह बहुत ही स्वाभाविक और उचित है किन्तु दूसरे प्रकार की तुलना में हमें कुछ अस्वाभाविकता और अनुपयुक्तता सी जान पड़ती है। क्योंकि पुरुष कवियों के साथ उन देवियों की तुलना करना—जिन्हें पुरुषों के समान न तो साहित्यावलोकन, काव्य-शिक्षा, कला-कौशला-अभ्यास के उपयुक्त समस्त साधन ही सुलभ हैं और न सामाजिक नियमों के कारण सुयोग्य कविसमाज के साथ सम्पर्क-संबंध की ही सुविधा प्राप्त है, जो काव्य-रचना के लिए न केवल परमावश्यक ही है वरन् अनिवार्य्य है। इस प्रकार विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि पुरुष-कवियों के साथ किसी भी स्त्री-कवि की तुलना करना यदि अनुचित नहीं तो असंगत अवश्य है। क्योंकि दोनों ही परिस्थितियों, भावानुभूतियों, संस्कृतियों, विचारधाराओं और उन सब से प्रभावित होने वाली काव्य-रचनाओं में अवश्यमेव विशेष अन्तर रहता है। फिर भी यदि बहुत सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो तुलनात्मक आलोचना के लिए कुछ न कुछ सामग्री मिल ही सकती है।

हमने पहले लिखा है कि स्त्रियों ने प्रायः काव्य-रचना-क्षेत्र में सभी प्रकार पुरुष-कवियों का अनुकरण किया है। प्रायः उन्होंने

अपने समय की उसी भाषा, उसी शैली, उसी रचना-परम्परा को अपनाया है जिन्हें हमारे पुरुष-कवियों या महाकवियों ने उठा कर प्रवर्तित किया है। उसी आधार पर यहाँ हम कुछ देवियों की तुलना कुछ कवियों से करते हैं। किन्तु यह कह देना आवश्यक है कि इस तुलना से हमारा यह भाव नहीं है कि जिन देवियों की तुलना जिन पुरुष-कवियों या महाकवियों से यहाँ की जा रही है उनका स्थान उन पुरुष कवियों के समान साहित्य के क्षेत्र में मान्य है और वे उसी कोटि की कवयित्री हैं। तात्पर्य्य केवल यह है कि यहाँ तुलनात्मक आलोचना के द्वारा विचार-साम्य अथवा भाव-वैषम्य की ओर कुछ संकेत कर दिया जाय और यह दिखला दिया जाय कि स्त्री-कवियों ने कहाँ तक पुरुष-कवियों के साथ काव्य-रचना के क्षेत्र में सफलता से कार्य्य किया है।

सब से प्रथम हम यहाँ मीराबाई को ही लेते हैं। मीराबाई का नाम आज हिन्दी संसार में स्वर्णाक्षरों लिखा गया है। वस्तुतः मीरा ने अपने समय के अनुसार कृष्ण-काव्य की अच्छी रचना की है। कुछ छंद तो मीरा के ऐसे हैं जिनके विषय में अब तक यह नहीं निश्चित हो सका कि वे वास्तव में मीरा के ही लिखे हुए हैं अथवा किसी अन्य कवि के। उदाहरण में हम "कोई कहौ कुलटा........................" छंद को लेते हैं। यह छंद देव कवि का रचा हुआ कहा जाता है।* ऐसी दशा में निश्चय रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। हमारा

---

* हिन्दी नवरत्न पृष्ठ २४०, २४१।

भी विचार यही है कि इस प्रकार के छंद मीराबाई के रचे हुए नहीं हैं वरन् वास्तव में देव जैसे पुरुष कवियों के ही रचे हुए हैं। क्योंकि मीराबाई को काव्य-शास्त्र अथवा छंद-शास्त्र का ऐसा प्रौढ़ ज्ञान न था जैसा इस प्रकार के छंदों से प्रगट होता है। मीरा ने अपने समय के गीति-काव्य की शैली से ही कृष्ण-काव्य की रचना की है और भाषा भी प्रायः राजपूतानी मिश्रित व्रजभाषा रखी है। अस्तु, भाषा के विचार से मीरा की तुलना हम किसी कृष्ण-भक्त कवि से नहीं कर सकते। उन छंदों के विषय में जिन में शुद्ध व्रजभाषा मिलती है हमारी तो यह धारणा है कि वे वास्तव में मीरा के नहीं हैं और इसीलिए हम उनके आधार पर मीरा की तुलना किसी कवि से नहीं करना चाहते। शैली के विचार से हम मीराबाई की तुलना उन कृष्ण-भक्त कवियों से अवश्य कर सकते हैं जिन्होंने गीति-काव्य की शैली से भक्ति-विषयक रचनायें की हैं।

अब यदि भक्ति-पद्धति पर हम विचार करें तो ज्ञात होता है कि मीरा ने सूर और नंददास जैसे भक्त-कवियों के समान वात्सल्य और सख्य-भाव की भक्ति न रख कर माधुर्य्य-भाव की भक्ति विशेष रूप से रखा है। कृष्ण को इन्होंने अपना प्रियतम मानते हुए अपने को उनकी दासी या परिचारिका ही माना है। हाँ, साथ ही कहीं कहीं इन्होंने कृष्ण को अपने पति (स्वामी) के रूप में मान कर अपने को उनकी चरण-सेविका, प्रिया दिखलाया है। जैसे—

" घड़ी एक नहिं आवड़े तुम दरसण बिन मोय " (छंद नं० २)

" पिय इतनी बिनती सुन मोरी ।"

(छंद नं० ३)

कहीं कहीं मीरा ने कृष्ण को संसार-सागर से पार करने वाले परमेश्वर के रूप में मानकर अपने को संसार-सागर में फँसा हुआ दिखलाया है और उनसे पार्थना की है ।

" मेरा बेड़ा लगाय दीजो पार प्रभुजी अरज करूँ छूँ ।"

(छंद नं० ४)

ऐसी दशा में हम यह कह सकते हैं कि मीरा के हृदय में भिन्न भिन्न प्रकार के भक्ति-भावों का प्रभाव समय समय पर पड़ा है और इसीलिए इन्होंने भिन्न भिन्न प्रकार के भक्ति-भावों की रचनायें की हैं । यदि कहीं वे कृष्ण को समस्त चराचरमय जगत का स्वामी मानती हैं, उन्हें अपना स्वामी मानती हैं तो कहीं वे उन्हें अपना स्वामी, अपना प्रियतम और बेड़ा पार करने वाला भी कहती हैं । इनकी जीवनी से भी यह प्रगट होता है कि इन पर न केवल कृष्ण-भक्तों का ही प्रभाव पड़ा वरन् तुलसीदास का भी, जो दास्य-भाव के भक्त थे, गहरा प्रभाव पड़ा था । ऐसे पद भी मीरा के मिलते हैं जिनके देखने से कबीर की माधुर्य्य-भक्ति और विरोध मूलक भावविन्यास-शैली का भी प्रभाव इन पर ज्ञात होता है । जायसी जैसे संत कवियों के प्रेम-पीर की भी कलक इनके हृदयोद्गारों में झलक पड़ती है ।

"दरद की मारी बन बन डोलूँ "

(छंद नं० ८)

भक्त और भगवान के बीच माया के कारण जो विषम वियोग की वेदना उत्पन्न होजाती है और जिसका संकेत कृष्ण-काव्य के विप्रलंभ श्रृंगारात्मक भाग में तथा सूफ़ी-संत कवियों के रहस्यात्मक प्रेम-गाथा-काव्य के एक पक्ष में मिलता है उसका भी संकेत मीरा के कतिपय पदों में पाया जाता है। कहीं कहीं कबीर के ज्ञानाभासात्मक विचारधारा की भी पुट इनकी पंक्तियों में पाई जाती है।

"ना कोई मारे ना कोई मरता तेरा यह अज्ञान।
चेतन जीव तो अजर अमर है यह गीता को ज्ञान"

(छंद नं० ६)

किन्तु उसमें निर्गुण एवं निराकारवाद की शैली की स्पष्ट झलक नहीं है जैसी कबीर में है। मीरा वस्तुतः साकारोपासना और सगुण ब्रह्म की भक्ति में ही लीन रहती थी। सत्गुरु-महिमा की भी कहीं कहीं सूक्ष्म झलक है।

"सत्गुरु भवसागर तरि आयो"

(छंद नं० १०)

सूर के पदों का भी सम्मिश्रण इनके काव्य में कहीं कहीं किया गया जान पड़ता है।

"करम गति टारे नाहिं टरे"

(छंद नं० १२)

इस प्रकार अब हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि यदि मीरा के जितने भी पद मिलते हैं उन सबके भावों पर दृष्टि डाली जाय

तो कबीर, सूरदास, तुलसी, देव तथा जायसी आदि पुरुष महाकवियों के भावों का प्रतिबिम्ब पूर्ण रूप से मिलता है और इस आधार पर मीरा की तुलना न्यूनाधिक रूप से इनके साथ की जा सकती है। हाँ यह अवश्य है कि इन महाकवियों के समान न तो मीरा में भावोत्कर्ष ही है, न काव्य कौशल है और न भाषा आदि का सौष्टव ही। भाव-साम्य अवश्य है और यही हो भी सकता था। मीरा प्रेम-रस-संसिक्त भक्तिभावपूर्ण, सहृदया कवयित्री थीं। भावुकता और प्रतिभा उनमें अवश्य ही उत्कृष्ट थी। इसीलिए अपने समय की प्रायः सभी प्रधान रचना-शैलियों, विचारधाराओं और भक्ति-भाव-पद्धतियों को ले कर उन्होंने सुन्दर रचनायें की हैं। स्त्रियों में तो हम यदि मीरा के सर्वोच्च स्थान दें तो कदाचित अनौचित्य न होगा।

आलम-प्राण-प्रीता शेख यदि आलम से किसी प्रकार बढ़ कर नहीं तो उनसे कम भी नहीं है। प्रेम की जो सुन्दर धारा आलम की सरल, स्वाभाविक और स्पष्ट रचनाओं में मिलती है शेख में भी वही प्रवाहित होती हुई जान पड़ती है। यह तो निर्विवाद ही मान सकते हैं कि दोनों में भाव-भावना-साम्य स्वभावतः ही था। यदि ऐसा न होता और दोनों की प्रकृति एक सी न होती तो दोनों में अनुराग ही न होता। आलम ने शेख की एक ही पंक्ति को देख कर यह जान लिया था कि शेख में वे सब गुण विद्यमान हैं जो उनमें हैं। दोनों की रचनायें भी ऐसी मिलती-जुलती हैं कि कहीं कहीं तो उनका एक दूसरे से पृथक करना बहुत ही कठिन हो जाता है।

सामयिक प्रभाव तो दोनों में ही पाया जाता है। प्रेम की जो अनुभूति और सरसता की जो सुन्दर व्यंजना आलम में है लगभग वही; शेख में भी है। नायक-नायिका-भेद तथा अन्य प्रकार कला-पूर्ण काव्य को लेकर हम शेख को कला-काल के साधारण पुरुष-कवियों की कक्षा में रख सकते हैं। यह अवश्य है कि शेख की रचना में सानुप्रासिक और अलंकृत पदावली उतनी विशेष नहीं जितनी कला-काल के पुरुष-कवियों में पाई जाती है। सब से विशेष बात जो शेख की रचना में हमें मिलती है वह है उसकी शुद्ध, सरल, सुव्यवस्थित और सरस ब्रजभाषा। शेख के पहले और शेख के बाद भी बहुत दिनों तक ऐसी सुन्दर ब्रजभाषा में ऐसी गठी हुई कविता और किसी भी महिला ने नहीं की। यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि शेख की भाषा ठाकुर और बोधा की भाषा से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। अब एक प्रश्न यह उठ सकता है कि शेख को ऐसी सुन्दर साहित्यिक ब्रजभाषा से ऐसा पूर्ण परिचय कैसे प्राप्त हो सका? शेख की प्रति दिन व्यावहारिक भाषा जहाँ तक सम्भव है उसके जाति-संस्कार-प्रभाव से खड़ीबोली ही रही होगी जो उर्दू और फ़ारसी के साँचे में मुसलमानों के द्वारा ढाली गई थी और जिसका प्रयोग-प्रचार मुसलमानों के घरों में विशेष रूप से था। यदि यह कहा जाय कि आलम के साथ में रह कर शेख ने ब्रजभाषा के इस साहित्यिक रूप का ऐसा पूर्ण परिचय प्राप्त किया था तो भी कुछ पुष्ट प्रमाण का प्रतिबिम्ब इसमें नहीं झलकता। संपर्क-सम्बन्ध का प्रभाव अवश्य पड़ता है परन्तु इतना नहीं। अब एक तो अनुमान इस विषय में यह

हो सकता है कि कदाचित् शेख-स्नेहासव-पान से मदोन्मत्त-भावुक आलम ने ही प्रेम-प्रमाद में आकर शेख के नाम से रचना की हो जो अब शेख ही की रचना प्रसिद्ध हो गई है। इस अनुमान की पुष्टि के लिए कोई अकाट्य तर्क, पुष्ट-प्रमाण और युक्त-युक्ति जब तक नहीं है तब तक यह केवल विवाद-ग्रस्थ और विचारणीय ही है।

शेख की रचना वस्तुतः ऐसी प्रतीत होती है मानो किसी अच्छे सु-कवि की रचना हो। उसमें वाग्वैचित्र्य, चमत्कार-चातुर्य्य, भाषा-सौष्ठव, कला-पूर्ण-काव्य का कौशल सभी अच्छे रूप में प्राप्त होता है। इसी आधार पर हमारा यह अनुमान है कि कदाचित् प्रसन्न होकर ही आलम ने अपने छंदों पर शेख के नाम की मुहर लगाकर उसे अमर करने के लिए यह सुन्दर मुक्तक-काव्य रच दिया है। अनुमान कुछ और आगे बढ़ कर तथ्य की ओर झुकने लगता है किन्तु है अभी यह विचारणीय और अन्वेषणीय ही।

शेख में कहीं-कहीं कृष्ण-भक्ति का भी रंग चढ़ा हुआ प्रतीत होता है। इसे हम सामयिक प्रभुत्व ही कह सकते हैं।* निष्कर्षतः हम यही कहना चाहते हैं कि जो छंद शेख के नाम से मिलते हैं यदि वे वास्तव में शेख के छंद हैं तो शेख का स्थान स्त्री-समाज में तो उच्चतर है ही पुरुष कवियों में भी वह ऊंचा है। हमारी समझ से स्त्रियों में तो शेख की तुलना चंद्रकला बाई, जैसी दो-एक देवियों से

* छं० नं० २० देखो।

हो सकती है और पुरुषों में ठाकुर, आलम, लछिराम और दास जैसे सुकवियों से भी की जा सकती है।

जिस प्रकार पुरुष कवियों में केवल कुंडलिया-छंद लिखने के लिए और नीति-काव्य की दोहा-शतक-शैली की कुंडलिया-शैली में रूपान्तरित करने के लिए कविवर गिरिधरदासजी का नाम अपना विशेष महत्व रखता है उसी प्रकार साईं का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है और न केवल स्त्री-समाज में ही वरन् पुरुष-समाज में भी। सच बात तो यह है कि जो प्रशंसनीय बात बाण कवि के सुपुत्र ने उत्तरार्द्ध 'कादम्बरी' की रचना करके अपने पिता के संकल्प के पूरा करने में और चन्द्र कवि के सुपुत्र ने 'रासो' की पूर्ति करके चंद्र की आज्ञा के परिपालन करने में दिखलाई है वही बात साईं ने भी अपने जीवन-धन के संकल्प को पूरा करने में दिखलाई है। किसी विशेष कवि की अधूरी रचना को इस प्रकार पूर्ति देना कि तनिक भी अन्तर न हो सके, एक बड़ी ही कठिन और श्लाघनीय बात है। साईं को जैसी स्तुत्य सफलता इससे मिली है वह कहने की बात नहीं। अब हम साईं की तुलना ही क्या करें? क्योंकि केवल कुंडलिया छंद लिखने में उसके सामने मुख्यतया गिरिधर कविराय, दीनदयालगिरि जैसे कवि ही आते हैं। गिरिधरदास के साथ तो साईं का पूर्ण साम्य है ही। दीनदयालगिरि से भी साईं की रचना बहुत कुछ मिलती-जुलती है। हाँ, अन्तर यह अवश्य है कि गिरि जी ने अपनी रचनाओं में अन्योक्ति की प्रधानता रखी है और इस प्रकार अपने कला-काल की रुचि को दिखलाया है। साईं ने यह नहीं

किया। क्योंकि उसे उसी शैली, उसी भाषा और उसी विचार-धारा को लेते हुए रचना करनी थी जो गिरिधरदास की रचना में पाई जाती है। छंद-रचना में साईं किसी भी कुंडलिया-लेखक पुरुष-कवि से कुछ भी कम नहीं। छत्र कुँवरिबाई ने भी कुंडलिया छंद में रचना की है किन्तु हमारे विचार से वह साईं के सामने तुल नहीं सकती।

सुन्दरि कुँवरिबाई की ही रचना ऐसी सुन्दर हुई है कि वह भी कला-काल के द्वितीय श्रेणी के सु-कवियों में स्थान पा सकती है। कुंडलिया छन्द लिखने में यद्यपि इन्हें साईं के समान सफलता नहीं मिली तथापि इससे इनकी और रचना का महत्व न्यून नहीं हो सकता। कवित्त, सवैयों में इन्होंने जितनी भी रचना की है वह उत्कृष्ट कोटि की है। कहीं-कहीं तो इनके कवित्त ऐसे सुन्दर वन पड़े हैं कि वे मतिराम और पद्माकर के कवित्तों का स्मरण कराते हैं। कवित्त की लय इन्होंने बहुत कुछ पद्माकर की ही शैली में रखी है। पदावली भी इनकी बहुत कुछ पद्माकर की सी ही छटा रखती है। इन्होंने भी राधा और कृष्ण को अपनी रचना का आधार बनाकर शृंगारात्मक मुक्तक-काव्य लिखा है। यह अवश्य किया है कि विप्रलंभ-शृंगार को बहुत विशेपता नहीं दी। वचन-चातुर्य्य भी मार्मिक व्यंजना के साथ इनके कवित्तों में अच्छी है। भाषा मधुर, मार्दवमयी और सरस है साथ ही अलंकृत और सानुप्रासिक भी है। इस विचार से बाई जी कला-काल के द्वितीय श्रेणी वाले किसी भी सु-कवि से साथ तुल सकती हैं। स्त्रियों में इनकी समानता कोई यदि कर सकती है तो वह चन्द्रकला बाई ही है।

जैसा हम पहले लिख चुके हैं मुक्तक काव्य-रचना करनेवाली देवियों में चन्द्रकला का बहुत ही ऊँचा स्थान है। द्विज बलदेव, जो अपने समय के प्रसिद्ध कवियों थे, तथा लछिराम, शङ्कर आदि से इन्होंने खूब टक्कर ली है। कहीं-कहीं तो इन्होंने ऐसी चोखी और अनोखी चातुर्य्य दिखलाई है कि बलात् यह कहना पड़ता है यह रचना किसी देवी की न होकर एक प्रौढ़ सुकवि की है।* समस्या-पूर्ति करने में जितना सराहनीय श्रम इन्होंने किया है उतना यदि ये किसी पुस्तक की रचना में करतीं तो आज हमें यहाँ पर कोई दूसरा ही पृष्ठ लिखना पड़ता और उसकी विवेचना करते हुए हिन्दी के किसी अच्छे सुकवि से इनकी तुलना करके साहित्य में ऊँचा स्थान देना पड़ता। जो कुछ सामग्री हमारे पास है उसके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि स्त्री-समाज-गगन में चन्द्रकला वास्तव में चन्द्रकला है।

स्थानाभाव से हम इस प्रसंग को विस्तृत नहीं करना चाहते यद्यपि हमारी इच्छा यह अवश्य थी कि हम इस पर विशेष प्रकाश डालें। शेष जितनी भी देवियों की रचनायें यहाँ संग्रहीत हैं वे सब इस समय सौभाग्य से जीवित रह कर रचना-कार्य्य करती ही जा रही हैं। ऐसी दशा में हमको उनकी सुप्रतिभा से अभी और भी बड़ी बड़ी आशायें हैं। प्राचीन नियमानुसार जीवित कवियों की आलोचना करना भी अच्छा नहीं कहा गया। वास्तव में जब तक कोई कवि

---

* छंद नं० १०, ९, १२, १३ देखो।

जीवित रह कर रचना-कार्य्य निरंतर करता जाता है तब तक यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि उसकी प्रतिभा किस कोटि की है। यह केवल तभी साध्य एवं ठीक होती है जब उसकी प्रतिभा के विकास की संभावना न रह जाय और उसके रचना-कार्य्य की सदा के लिए इतिश्री हो जाय। वर्तमान समय के खड़ीबोली में जो कवयित्रियाँ सुन्दर रचनायें कर रही हैं यद्यपि उनकी आलोचना करना अच्छा प्रतीत होता है तथापि हम इसी आशा से कि उनकी सुप्रतिभा ने पूर्ण रूप से प्रस्फुटित होकर अभी कोई ऐसी सुन्दर पुस्तक नहीं रच दी है जिसकी विशद आलोचना की जा सके और जिससे कि उनकी रचना का अंत माना जाकर उसका निश्चित रूप निर्धारित किया जा सके। जो कुछ भी रचनायें अब तक इन महिलाओं ने उपस्थित की हैं वे बहुत ही संतोष-प्रद और आशाजनक हैं।

पुस्तक-परिचय

हमें अत्यन्त प्रसन्नता है कि आज वह दिन आ गया जब हमें अपने साहित्य के क्षेत्र में हिन्दी में स्त्रियों के उस काव्य-साहित्य के भी शुभागमन का स्वागत करने का अवसर मिल रहा है। आज तक जहाँ तक हम जानते हैं हमारे किसी भी विद्वान लेखक ने इस ओर ध्यान नहीं दिया था। श्रद्धेय मिश्रबंधुओं ने अपने विनोद में कुछ परम प्रधान देवियों और उनकी रचनाओं का उल्लेख किया है तथा मुन्शी देवीप्रसाद मुंसिफ ने भी कुछ खोज की है। इनके सिवा किसी भी हिन्दी-साहित्य

के इतिहास-लेखक ने स्त्रियों के रचना-कार्य्य का उल्लेख नहीं किया। साहित्य-इतिहास-मूलक कुछ अच्छे ग्रंथ जो आधुनिक समय में प्रकाशित किये गये हैं वे भी स्त्री-साहित्य की ओर उपेक्षा की दृष्टि रखते हैं। 'कविता-कौमुदी' आदि ग्रंथों में कहीं कहीं मीरा, सहजो और दया जैसी देवियों की थोड़ी सी रचनायें दे दी गई हैं और वे भी एक साधारण दृष्टि से। स्त्रियों का रचना-कार्य्य जैसा कि इस लेख से स्पष्ट हो गया होगा अपना एक महत्व-पूर्ण स्वतन्त्र इतिहास रखता है और एक स्वतंत्र विषय बनकर एक बड़े ग्रंथ की आवश्यकता दिखलाता है।

मित्रवर निर्मल जी ने, यद्यपि मित्र के नाते हमें न कहना चाहिए, अपने इस सुन्दर ग्रंथ से स्त्री-साहित्य के इतिहास का मार्ग खोल दिया है। जिस पर हम आशा करते हैं कि हमारे खोज करने वाले सुयोग्य लेखक इस अंग की पूर्ति करने का प्रयत्न करेंगे। हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में अपने ढंग का यह ग्रंथ अप्रतिम है। न केवल सूक्ष्म जीवनी और सुन्दर रचनायें ही इसमें संग्रहीत की गई हैं वरन् प्रत्येक देवी की रचनाओं की मार्मिक और सूक्ष्म आलोचना भी जीवनी के साथ साथ कर दी गई है जिससे ग्रन्थ का महत्व और भी बढ़ गया है। अन्त में 'कुसुम-माला' के नाम से जो नवोदित कवयित्रियों की रचनाओं का संग्रह किया गया है वह उन्हें प्रोत्साहित करता हुआ रचना-कार्य्य के पथ पर अग्रसर करने की क्षमता रखता है। ग्रन्थ और भी उपादेय बनाया गया है उस शब्द कोष से, जो पुस्तक के अंत में 'परिशिष्ट' के रूप में दिया गया है। यत्र-तत्र टिप्पणियों के रूप में इतिहास-मूलक

जो बातें लिखी गई हैं वे पाठकों को महिला-साहित्य के विषय में खोज करने की ओर प्रोत्साहित करती हैं। उनमें मार्मिकता और विचार-शीलता का अच्छा आभास है। संग्रहीत रचनायें भी ऐसी ही हैं जो अपनी पूरी महत्ता और उल्लेखनीयता रखती हैं। सभी उदाहरण शिष्ट, सुन्दर, रोचक और सुपाठ्य हैं। साथ ही वे उन सब विशेपताओं को सूचित करते हैं जो भिन्न भिन्न देवियों में पाई जाती हैं।

अन्त में इस सुन्दर और सराहनीय ग्रंथ के लिए हम प्रसन्नता प्रगट करते हुए यह आशा रखते हैं कि हमारे हिन्दी-संसार के भावुक पाठक इसका पूर्ण रूप से समादर करेंगे साथ ही वे इस पर विचार करते हुए स्त्री-साहित्य की ओर विशेप ध्यान देंगे। यहाँ हमें अपनी बहनों से यह साग्रह निवेदन करना भी अनिवार्य्य जान पड़ता है कि वे इस ग्रंथ से सहायता लेते हुए, इसका पूर्ण अध्ययन करके, इसी की शैली से अपने स्त्री-साहित्य का अन्वेपण और विशेप विवेचन करने का प्रयत्न करें और इस प्रकार इसकी रक्षा करते हुए भावी संतति के लिए एक स्थायी स्त्री-साहित्य को स्वतंत्र आस्तित्व प्रदान करें, ताथास्तु।

प्रयाग
२०-१-३१

विद्वज्जन कृपाकांक्षी
रामशङ्कर शुक्ल 'रसाल' एम० ए०





मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई।

—मीराबाई

मीराबाई

मीराबाई जोधपुर, मेंड़ता के राठौर रतनसिंह की एक लौटी बेटी थीं। इनका जन्म चौकड़ी नामक ग्राम में हुआ था। इनका विवाह सम्वत् १५७३ में मेवाड़ के प्रसिद्ध महाराणा सीसोदिया-कुल-भूषण भोजराज के साथ हुआ था। इनके जन्म और मृत्यु के सम्वतों का ठीक ठीक पता नहीं चलता। स्वर्गीय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का कहना है कि मीराबाई सम्वत १६२० और १६३० में मरी होंगी।

मीराबाई का समय क्या है? इस विषय में बड़ा मतभेद है। गुजराती साहित्य में भी मीराबाई के जन्म-मृत्यु के समय के सम्बन्ध में घोर मतभेद चला आ रहा है। मीराबाई के सम्बन्ध में 'मिश्रबंधु' लिखते हैं, "ये बाई जी मेड़तिया के राठौर रतनसिंह जी की पुत्री, राय ईदा जी की पौत्री और जोधपुर में बसनेवाले प्रसिद्ध राव जोधा जी की प्रपौत्री थीं। इन्होंने संवत १५७३ में चौकड़ी नामक ग्राम में जन्म लिया और इनका विवाह उदयपुर के महाराणा कुमारभोज राज के साथ हुआ। मीराबाई का देहान्त द्वारिका जी में सं० १६०३ में हुआ। पहले बहुतों का मत था कि मीराबाई राजा कुम्भकरण की स्त्री थीं, और बाई जी का जन्मकाल सं० १४७५ का लोग मानते थे। परन्तु जोधपुर के

प्रसिद्ध इतिहासज्ञ मुंशी देवीप्रसाद जी ने मीराबाई के संबन्ध में उपर्युक्त बातों का पता लगाया है जो अब सर्वसम्मत भी है।"

मीराबाई के कई पदों के यह पता चलता है कि ये रैदास को अपना गुरू मानती थीं। जैसेः—

"मीरा ने गोविंद मिल्या जी गुरु मिलिया रैदास।"

परन्तु पं० रामनरेश त्रिपाठी के मतानुसार मीराबाई और रैदास के समय में बड़ा अंतर पड़ता है। और यदि उपर्युक्त बातें मानली जायँ तो मुंशी देवीप्रसाद और मिश्रबंधुओं ने मीराबाई का जो समय निर्धारित किया है वह ग़लत ठहरता है। इसलिये यह बात असंभव है कि मीराबाई के गुरू रैदास थे। मालूम होता है कि रैदास के किसी शिष्य ने कुछ पद इस प्रकार के बना दिये होंगे जो आगे चलकर मीराबाई के पदों में मिल गये होंगे। वे ही आज तक वर्तमान हैं।

लोग कहते हैं कि विवाह हो जाने पर मीराबाई जी चित्तौड़ चली गईं। लगभग दस वर्षों के व्यतीत होने पर ये विधवा हो गईं। किन्तु इन्हें पति की मृत्यु पर रंच भी दुःख न हुआ, क्योंकि इनके हृदय में गिरधर गोपाल की भक्ति उत्पन्न हो गई थी। रात दिन गिरधर गोपाल के ही प्रेम में ये लीन रहा करती थीं। ये साधु-संतों की संगति में आने जाने लगीं। महाराणा रतनसिंह के बाद इनके देवर महाराणा विक्रमादित्य सिंह गद्दी पर बैठे। विक्रमादित्य सिंह मीराबाई की ऐसी संगति न पसंद करते थे। उन्होंने मीराबाई को बहुत समझाया और दो एक दासियों को भी इन के पास रहने का प्रबन्ध कर

दिया। वे मीरा को गोपाल की भक्ति तथा सन्तों की संगति से अलग रखने का उपचार किया करती थीं। किन्तु इनके हृदय पर साधु-संगति का ऐसा गहरा रंग चढ़ गया था कि लाख कोशिश करने पर भी महाराणा विक्रमादित्य सिंह इनका हृदय घर-गृहस्थी की ओर न फेर सके। विक्रमादित्य सिंह ने मीरा के लिए विष का प्याला भेजा किन्तु वे उसे चरणामृत समझ कर पी गईं। कहते हैं कि इनके शरीर में विष का कुछ भी असर न हुआ। विक्रमादित्य सिंह ने साम, दाम, दंड, भेद सभी से मीरा को घर लौट आने के लिए मज़बूर किया किन्तु उन्हें सफलता न मिली। मीरा को अपने देवर पर बहुत दुख हुआ। उन्होंने एक दिन महात्मा तुलसीदास को इसी संबन्ध में यह पद लिख कर भेजा:—

श्रीतुलसी सुख निधान दुख हरन गुसाईं।
बारहिं बार प्रनाम करूँ अब हरो सोक समुदाई॥❀
घर के स्वजन हमारे जेते सबनि उपाधि बढ़ाई।
साधु संग अरु भजन करत मोहिं देत कलेस महाई॥
बाल पने ते मीरा कीन्हीं गिरधर लाल मिताई।
सो तो अब छूटत नहिं क्यों हूँ लगी लगन बरियाई॥

❀ यहाँ इकार को सानुस्वार होना चाहिये था। क्योंकि प्रथम तुक में सानुस्वार इकार ही आया है। मालूम होता है कि मीरा के समय में तुक के इस सूक्ष्म साम्य पर ध्यान नहीं दिया जाता था।

मेरे पात पिता के सम हो हरि भक्तन सुखदाई।
हमको कहा उचित करिबो है सो लिखियो समुझाई।।

इस पद के उत्तर में गोस्वामी तुलसीदास जी ने उन्हें यह पद लिख भेजा:—

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही।।
तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषण बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु, तज्यो कंत ब्रज बनितन, भे सब मंगलकारी।।
नातों नेह राम से मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँख जो फूटे वहुतक कहौं कहाँ लौं।।
तुलसी सो सब भांति परम हित पूज्य प्रानतें प्यारो।
जासों होय सनेह रामपद याही मतो हमारो।।

गोस्वामी जी का यह उत्तर पाने पर मीराबाई जी चित्तौड़ छोड़कर मेंड़ता चली गईं।

वहां भी मीराबाई का मन न लगा तब ये मेंड़ता से वृन्दाबन चली आईं। यहाँ मीराबाई जीव गोस्वामी का दर्शन करने गईं। उन्होंने कहा कि हम स्त्रियों से नहीं मिलते। मीराबाई ने कहला भेजा—'मैं नहीं जानती थी कि गिरधरलाल के सिवा यहाँ और भी पुरुष हैं।' यह सुनते ही जीव गोस्वामी नंगे पैर बाहर आकर मीराबाई को सत्कार के साथ भीतर ले गये। वृन्दावन में कुछ दिन रह कर मीराबाई द्वारका चली गईं। महाराणा विक्रमादित्य सिंह ने कई भक्तों को मीराबाई के ले आने

को द्वारका भेजा किन्तु वे वहाँ से न लौटीं। भक्तों का कहना है कि ये श्री रणछोड़ जी के मन्दिर में गईं और वहीं उसी मूर्ति में समा गईं।

मीराबाई के पद भक्ति रस से परिपूर्ण हैं। इनके पद प्रायः सभी मन्दिरों और गांवों में बड़े प्रेम से गाये जाते हैं। इनके हृदय में गिरधर गोपाल का आगाध प्रेम था। ये गोपाल की मूर्त्ति के सामने नाचतीं, गातीं और इन्हीं की सेवा सुश्रुशा में लीन रहती थीं। महाकवि देव जी ने इनके सम्बन्ध में एक कवित्त लिखा है :—

कोई कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ,
कोई कहौ रंकिनी कलंकिनी कुनारी हौं॥
कैसो परलोक नरलोक वरलोकन मैं,
लीन्हों मैं असोक लोक लोकन ते न्यारी हौं॥
तन जाहि मन जाहि 'देव' गुरुजन जाहि,
जीव क्यों न जाहि टेक टरन न टारी हौं॥
वृन्दावन वारी बनवारी के मुकुट पर,
पीत पट वारी वाहि मूरति पै वारी हौं॥*

मीराबाई ने कई ग्रन्थ बनाये हैं। उनमें से 'नरसीजी का मायरा' भी एक है; इसे मुंशी देवीप्रसाद जी ने देखा था। दूसरा ग्रंथ 'गीत गोविन्द की टीका' है। तीसरा ग्रंथ 'राग गोविन्द' है। इनके भजनों का

---

* कुछ लोगों का कहना है कि यह छंद मीराबाई का ही रचा हुआ है।

एक संग्रह "मीराबाई की शब्दावली" नाम से प्रकाशित हुआ है, जो हमारे पास है। बाक़ी तीन ग्रंथ हमारे देखने में नहीं आये।

मीराबाई की कविता राजपूतानी बोली मिश्रित हिन्दी भाषा में है। गुजराती भाषा में भी मीराबाई ने बहुत से पद लिखे हैं। हम यहाँ उनकी पुस्तकों से कुछ चुने चुने पद उद्धृत करते हैं:—

१

राम नाम रस पीजै मनुआँ, राम नाम रस पीजै।
तज कुसंग सतसंग बैठि नित हरि चर्चा सुण लीजै॥
काम क्रोध मद लोभ मोह कूँ चित से बहाय दीजै।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर ताहिके रँग में भीजै॥

२

घड़ी एक नहिं आवड़े तुम दरसण बिन मोय।
तुम तो मेरे प्राण जी कासूँ जीवण होय॥
धाम न भावै नींद न आवै बिरह सतावै मोय।
घायल सी घूमत फिरूँ रे मेरा दरद न जाणे कोय॥
दिवस तो खाय गमायो रे रैण गमाई रोय।
प्राण गमायो झूरतां रे नैण गमाई रोय॥
जो मैं ऐसा जाणती रे प्रीति किये दुख होय।
नगर ढिँढोरा फेरती रे प्रीति करो जनि कोय॥
पंथ निहारूँ डगर बुहारूँ ऊभी मारग जोय।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर तुम मिलियाँ सुख होय॥

३

पिय इतनी बिनती सुण मोरी, कोइ कहियो रे जाय ॥
औरन सूँ रस-बतियाँ करत हो, हमसे रहे चित चोरी।
तुम बिन मेरे और न कोई मैं सरनागत तोरी ॥
आवण कह गये अजहुँ न आये दिवस रहे अब थोरी।
मीरा कहै प्रभु कब रे मिलोगे अरज करूँ कर जोरी ॥

४

मेरा बेड़ा लगाय दीजो पार प्रभु जी अरज करूँ छूँ ॥
या भव में मैं बहु दुख पायो संसा सोग निवार।
अष्ट करम की तलब लगी है दूर करो दुख भार ॥
यों संसार सब बह्यो जात है लख चौरासी धार।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर आवागमन निवार ॥

५

म्हाँरो जनम मरन को साथी,
थाँ ने नहिं बिसरूँ दिन राती।
तुम देख्याँ बिन कल न परत है जानत मेरी छाती।
ऊँची चढ़ा चढ़ पंथ निहारूँ रोय रोय अँखियाँ राती ॥
यो संसर सकल जग झूठो झूठा कुलरा नाती।
दोउ कर जोड्याँ अरज करत हूँ सुण लीजो मेरी बाती ॥
ये मन मेरो बड़ो हरामी ज्यूँ मदमातो हाथी।
सत गुरु दस्त धर्‌यो सिर ऊपर आँकुस दै समझाती ॥

मीरा के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणाँ चित राती।
पल पल पिव का रूप निहारूँ निरख निरख सुख पाती ॥

६

स्वामी सब संसार के हो, साँचे श्री भगवान्।
स्थावर, जंगम, पावक, पाणी, धरती बीच समान ॥
सब में महिमा तेरी देखी कुदरत के कुरबान।
सूदामा के दारिद खोये वारे की पहिचान ॥
द्वै मूठी तंदुल की चाखी दीनी द्रव्य महान।
भारत में अर्जुन के आगे आप भये रथवान ॥
उनने अपने कुल को देख्या छुट गये तीर कमान।
ना कोई मारे ना कोई मरता तेरा यह अज्ञान ॥
चेतन जीव तो अजर अमर है यह गीता को ज्ञान।
मुझ पर तो प्रभु किरपा कीजै बंदी अपनी जान।
मीरा गिरधर सरण तिहारी लगे चरण में ध्यान ॥

७

म्हाँरी सुध ज्यूँ जानो ज्यूँ लीजौ जी।
पल पल भीतर पंथ निहारूँ दरसण म्हाँने दीजौ जी।
मैं तो हूँ वहु औगुणहारी औगुण चित मत दीजौ जी ॥
मैं तो दासी थाँरे चरण-जनाँ की मिल बिछुरन मत कीजौ जी।
मीरा तो सतगुरु जी सरणे हरिचरणाँ चित दीजौ जी ॥

८

हेरी मैं तो प्रेम दिवाणी मेरा दरद न जाणे कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी किस विधि सोणा होय॥
नभ मंडल पै सेज पिया की, किस विधि मिलणा होय।
घायल की गति घायल जानै, की जिन लाई होय।
जौहरी की गति जौहरी जानै, की जिन जौहर होय।
दरद की मारी बन बन डोलूँ, बैद मिल्या नहिं कोय।
मीरा की प्रभु पीर मिटेगी, जब बैद सँवलिया होय॥

९

राम मिलण रो घणों उमावो, नित उठ जोऊँ वाटड़ियाँ।
दरसण बिन मोहिं पल न सुहावै, कल न पड़त है आँखड़ियाँ॥
तलफ तलफ के बहु दिन बीते, पड़ी विरह की फाँसड़ियाँ।
अब तो वेगि दया कर साहब, मैं हूँ तेरी दासड़ियाँ॥
नैण दुखी दरसण को तरसै, नाभि न बैठै साँसड़ियाँ।
रात दिवस यह आरत मेरे, कब हरि राखै पासड़ियाँ॥
लगी लगन घूटण की नाहीं, अब क्यों कीजै आटड़ियाँ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, पूरौ मन की आसड़ियाँ॥

१०

पायो जी, मैंने नाम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, किरपा कर अपनायो॥

जनम जनम की पूँजी पाई, जग में सभी खोवायो।
खरचै नहिं कोई चोर न लेवै, दिन दिन बढ़त सवायो॥
रात की नाव खेवटियाँ सतगुरु भवसागर तर आयो।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर हरख हरख जस गायो॥

११

बसो मेरे नैनन में नँदलाल।
मोहनी मूरति साँवरि सूरति नैना बने बिसाल।
अधर-सुधा रस मुरली राजित उर बैजन्ती माल॥
छुद्र घंटिका कटितल सोभित नूपुर सब्द रसाल।
मीरा प्रभु संतन सुखदाई, भक्त बछल गोपाल॥

१२

करम गति टारे नाहिँ टरे।
सतबादी हरिचँद से राजा नीच घर नीर भरे।
पाँच पांडु अरु कुंती द्रौपदि हाड़ हिमालय गरे॥
जज्ञ किया बलि लेण इन्द्रासन सो पाताल धरे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर विष से अमृत करे॥ ❀

१३

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
दूसरो न कोई साधो सकल लोक जोई॥

❀ ऐसा ही पद श्री० सूरदास और श्रीकबीर कृत भी कहा जाता है।

भाई छोड्या बंधु छोड्या छोड्या सगा सोई।
साधु संग बैठ बैठ लोक-लाज खोई॥
भगत देख राजी भई जगत देख रोई।
अँसुवन-जल सींच सींच प्रेम बेलि बोई॥
दधि मथ घृत काढ़ लियो डार दई छोई।
राणा विष को प्यालो भेज्यो पीय मगण होई॥
अब तो बात फैल गई जाणे सब कोई।
मीरा राम लगण लागी होणी होय सो होई॥

१४

मीरा मगन भई हरि के गुन गाय।
साँप पिटारा राणा भेज्या मीरा हाथ दियो जाय।
न्हाय-धोय जब देखन लागी सालिगराम गई पाय॥
जहर का प्याला राणा भेज्या अमृत दीन्ह बनाय।
न्हाय-धोय जब पीवण लागी हो गई अमर अँचाय॥
सूल सेज राणा ने भेजी दीज्यो मीरा सुलाय।
साँझ भई मीरा सोवण लागी मानो फूल बिछाय॥
मीरा के प्रभु सदा सहाई राखे विघन हटाय।
भजन भाव में मस्त डोलती गिरधर पै वलि जाय॥

१५

नहिं ऐसो जनम बारम्बार।
क्या जानूँ कछु पुन्य प्रगटे मानुसा अवतार॥

बढ़त पल पल घटत छिन नहिं चलत लागे बार।
बिरछ के ज्यों पात टूटे लगे नहिं पुनि डार॥
भौ सागर अति घोर कहिए विषय ओखी धार।
सुरत का नर बाँध बेड़ा, बेगि उतरे पार॥
साधु संता ते महंता, चलत करत पुकार।
दास मीरा लाल गिरधर जीवना दिन चार॥

१६

हरि करिहौ जण की भीर।
द्रौपदी की लाज राखी तुम बढ़ायो चीर॥
भक्त कारण रूप नरहरि धस्यो आप शरीर।
हरिनकस्यप मार लीन्हो धस्यो नांहिन धीर॥
बूड़ते गजराज तास्यो कियो बाहिर नीर।
दास मीरा लाल गिरधर दुःख जहाँ न पीर॥

१७

भई हौं बावरी सुन के बाँसुरी।
स्रवन सुनत मोरी सुध बुध बिसरी लगी रहत तामें मनकी गाँसुरी॥
नेम धरम को न कीनी मुरलिया कौन तिहारे पासुरी।
मीरा के प्रभु बस कर लीने सप्त सुरन ताननि की फाँसुरी॥

१८

भजु मन चरन कमल अविनासी।
जेतइ दीसे धरनि गगन बिच तेतइ सब उठ जासी॥

कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हें कहा लिए करवट कासी ॥
इहि देही का गरब न करना माटी में मिलि जासी ।
यों संसार चहर की बाजी, सांझ पड्या उठ जासी ॥
कहा भयो है भगवा पहिन्यों घर तज भये सन्यासी ।
जोगी होय जुगति नहि जानी उलट जनम फिर आसी ॥
अरज करौं अबला कर जोरे स्याम तुम्हारी दासी ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर काटो जम की फाँसी ॥

१९

म्हाँरे घर आयो प्रीतम प्यारा ।
तन मन धन सब भेंट करूँगी भजन करूँगी तुम्हारा ।
वो गुणवंत सुसाहिब कहिए मोमें औगुण सारा ॥
मै निगुणी गुण जानू नाहीं वे छो बगसण सारा ।
मीरा कहै प्रभु कबहिं मिलोगे तुम बिन नैण दुखारा ॥

२०

हे री मोसूँ हरि बिन रह्यो न जाय ।
सासू लड़े, रीस जनावे ननदी पिव जी रह्यो रिसाय ।
चौकी मेलो भले ही सजनी ताला घोन जड़ाय ।
पूर्व जन्म की प्रीति हमारी सो कहँ रहे लुकाय ।
मीरा कहे प्रभु गिरधर के बिन दूजो न आवै दाय ।

२१

प्रभू जो थे कहाँ गयो नेहड़ी लगाय ।

छाँड़ि गया बिसवास सँगाती प्रेम की बात बताय ॥
बिरह सँमुद मैं छांड़ गया छो प्रेम की नाव चलाय।
मीरा कहै प्रभु कबै मिलौगे तुम बिन रह्यो न जाय ॥

२२

बंसीवारो आयो म्हाँरे देस थाँरी साँवरी सुरत वाली बैस।
आऊँ आऊँ कर गया साँवरा, कर गया कौल अनेक ॥
गिणते गिणते घिस गई उँगली घिस गई उँगली की रेख।
मैं बैरागिणि आदि की थाँरे म्हाँरे कद को सँदेस ॥
बिन पाणी बिन साबुन❀ साँवरा हुई गई धुई सपेद।
जोगिण होई जंगल सब हेरूँ तेरा नाम न पाया भेस ॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै घूँघर वाला केस।
मीरा के प्रभु गिरधर मिल गये दूना बढ़ा सनेस ॥

२३

नातो नाम को मोसूँ तनक न तोड़्यो जाय।
पाना ज्यों पीली पड़ी रे लोग कहें पिंड रोग।
छाने लाँघन मैं किया रे राम मिलण के जोग ॥
बावल बैद बुलाइया रे पकड़ दिखाई म्हांरी बाँह।
मूरख बैद मरम नहिं जानै करक करेजे माँह ॥
जाओ बैद घर आपने रे म्हांरो नाँव न लेय।

❀ ज्ञात होता है कि उस समय भी भारत में साबुन बनता था।

मैं तो दाधी बिरह की रे काहे कूँ औखद देय ॥
मांस गलि गलि छीजिया रे करक रह्यो गल मांहि ।
आँगुरियाँ से मूँदड़ी म्हाँरे आवन लागी बांहि ॥
रहु रहु पापी पपीहा रे पिव को नाम न लेय ।
जे कोइ बिरहिन साम्हले तो पिव कारन जिव देय ॥
खिन मंदिर खिन आँगने रे खिन खिन ठाढ़ी होय ।
घायल ज्यूँ घूँमू खड़ी म्हांरी बिथा न बूझे कोय ॥
काटि करेजो मैं धरूँ रे कौआ तू ले जाय ।
ज्यों देसाँ म्हाँरो पिव बसै रे वे देखत तू खाय ॥
म्हाँरे नातो नाम को रे और न नातो कोय ।
मीरा व्याकुल बिरहिनी रे पिय दरसए दीजो मोय ॥

२४

गोहने गोपाल फिरूँ ऐसी आवत मन में ।
अवलोकत बारिज बदन बिवस भई तन में ॥
मुरली कर लकुट लेउँ पीत बसन धारूँ ।
आछी गोप भेष मुकुट गोधन सँग चारूँ ॥
हम भई गुल काम-लता वृन्दावन रैनाँ ।
पसु पंछी मरकट मुनी श्रुवन सुनत बैनाँ ॥
गुरुजन कठिन कानि, कासों री कहिये ।
मीरा प्रभु गिरिधर मिलि ऐसे ही रहिए ॥

२५

तेरा कोई नहिं रोकनहार, मगन होय मीरा चली ॥
लाज सरम कुल की मरजादा, सिर से दूर करी।
मान अपमान दोऊ धर पटके, निकसी हूँ ज्ञान-गली ॥
ऊँचो अटरिया, लाल किवड़िया, निरगुन-सेज बिछी।
पँचरंगी झालर सुभ सोहै, फूलन फूल कली ॥
बाजूबन्द कडूला सोहै, सेंदुर माँग भरी।
सुमिरन थाल हाथ में लीन्हा, सोभा अधिक भली ॥
सेज सुखमणा मीरा सोवै, सुभ है आज घरी।
तुम जावो राणा घर अपणे, मेरी तेरी नाहिं सरी ॥

२६

दरस बिन दूखन लागे नैन।
जब तें तुम बिछुरे पियप्यारे, कबहुँ न पायों चैन ॥
सबद सुनत मेरी छतिया काँपै, मीठे लागैं बैन।
एक टकटकी पंथ निहारूँ, भई छमासी रैन ॥
बिरह-बिथा काँसू कहूँ सजनी, वह गई करवत ऐन।
मीरा के प्रभु कब हो मिलोगे, दुखमेटन सुखदैन ॥

२७

सखी, मोरी नींद नसानी, हो।
पिय को पंथ निहारत सिगरी रैन बिहानी, हो ॥
सब सखियन मिलि सीख दई, मन एक न मानी, हो।

बिन देखे कल नाहिं परत जिय ऐसी ठानी, हो॥
अंग छीन व्याकुल भई, मुख पिय पिय बानी हो।
अंतरवेदन बिरह की, वह पीर न जानी, हो॥
ज्यों चातक घन को रटै, मछरी जिमि पानी, हो।
मीरा व्याकुल बिरहिनी सुध-बुध बिसरानी, हो॥

२८

मन रे, परसि हरि के चरन।*
सुभग सीतल कमल कोमल, त्रिविध ज्वाला-हरन।
जे चरन प्रह्लाद परसे इन्द्र-पदवी-धरन॥
जिन चरन ध्रुव अटल कीनो राखि अपने सरन।
जिन चरन त्रयलोक नाप्यौ छलन बलि उद्धरन॥
जिन चरन-रज परसि पावन तरी गौतम-घरन।
जिन चरन कालीहि नाथ्यौ गोप-लीला-करन॥
जिन चरन धरियौ गोबर्धन गरब मघवा हरन।
दासि मीरा लाल गिरधर अगम तारन-तरन॥

२९

फागुन के दिन चार रे, होली खेल, मना रे।
बिन करताल पखावज बाजे, अनहद की झनकार रे॥
बिन सुर राग छतीसूँ गावे, रोम रोम रँग सार रे।

* इसी प्रकार का एक छन्द सूरदासजी ने भी लिखा है।

सील सँतोष की केसर घोली, प्रेम प्रीति पिचकार रे ॥
उड़त गुलाल लाल भये बादल, बरसत रङ्ग अपार रे।
घट के सब पट खोल दिये हैं, लोक-लाज सब डार रे ॥
होरी खेल प्यारी घर आये, सोई प्यारी पिय प्यार रे।
मीरा कै प्रभु गिरधर नागर, चरन कमल बलिहार रे ॥

३०

होरी खेलत हैं गिरिधारी।
मुरली चंग बजत डफ न्यारी, सँग जुवती ब्रजनारी ॥
चंदन केसर छिरकत मोहन अपने हाथ बिहारी।
भरि-भरि मूठ गुलाल लाल चहुँ देत सबन पै डारी ॥
छैलछबीले नवल कान्ह सँग स्यामा प्रान-पियारी।
गावत चारु धमार राग तहँ, दै दै कल करतारी ॥
फाग जु खेलत रसिक साँवरो, बाढ़्यौ रस ब्रज भारी।
मीरा प्रभु गिरिधर मिले मनमोहन लाल बिहारी ॥



ताज

ताज नाम की एक स्त्री-कवि हो गई हैं। इनमें प्रगाढ़ कृष्ण-भक्ति थी। इनके जन्म और मृत्यु के संवतों का ठीक ठीक पता अभी तक नहीं चला है। सिहोर, रियासत भावनगर निवासी गुजराती और हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक गोविन्द-गिल्ला भाई के पास इनके सैकड़ों छंद लिखे हैं। किन्तु उनको भी ताज कवि के सम्बन्ध में कोई प्रमाणिक बात नहीं मालूम है। शिवसिंह सरोज में, इनका जन्म संवत् १६५२ लिखा है। मुंशी देवीप्रसाद जी ने सं० १७०० के लगभग इनका समय माना है। ये जाति की मुसलमान थीं। हमने गोविन्द-गिल्ला भाई से इनके विषय में पत्र व्यवहार किया था। उन्होंने हमारे पास ताजकी कई कवितायें भेजी हैं। किन्तु इनकी जीवनी पर कुछ विशेष प्रकाश नहीं डाला। गोविन्द-गिल्ला भाई इन्हें करौली राज्य में होना मानते हैं। आप अपने ११-१२-२५ के पत्र में लिखते हैं :—

"ताज नाम की एक मुसलमान स्त्री-कवि करौली ग्राम में हो गई है। वह नहा-धोकर मंदिर में भगवान का नित्यप्रति दर्शन करती थी; इसके पश्चात् भोजन ग्रहण करती थी। किन्तु एक दिन वैष्णवों ने

उसे विधर्मिणी समझ कर मंदिर में दर्शन करने से रोक दिया। इससे ताज उस दिन उपवास करके मंदिर के आँगन में ही बैठी रह गई और कृष्ण के नाम का जप करती रही। जब रात हो गई तब ठाकुर जी स्वयं मनुष्य के रूप में भोजन का थाल लेकर ताज के पास आये और कहने लगे— तूने आज ज़रा सा भी प्रसाद नहीं खाया, ले अब इसे खा। कल प्रातःकाल जब सब वैष्णव आवें तब उनसे कहना कि— तुम लोगों ने मुझे कल ठाकुर जी का प्रसाद और दर्शन का सौख्य नहीं दिया, इससे आज रात को ठाकुर जी स्वयं मुझे प्रसाद दे गये हैं और तुम लोगों को संदेश कह गये हैं कि ताज को परम वैष्णव समझो। इसके दर्शन और प्रसाद-ग्रहण करने में रुकावट कभी मत डालो। नहीं तो ठाकुर जी तुम लोगों से नाराज़ हो जावेंगे। प्रातःकाल जब सब वैष्णव आये तो ताज ने सारी बातें उनसे कह सुनाई। ताज के सामने भोजन का थाल रक्खा देख कर वे अत्यन्त चकित हुए। वे सभी वैष्णव ताज के पैर पर गिर पड़े और क्षमा-प्रार्थना करने लगे। तब से ताज प्रतिदिन भगवान का दर्शन करके प्रसाद ग्रहण करने लगी। पहले ताज मंदिर में जाकर ठाकुर जी का दर्शन कर आती थी तब और दूसरे वैष्णव दर्शन करने जाते थे।"

"ताज कवि परम वैष्णव और महा भगवद्भक्त थी। उन्हीं ठाकुर जी की कृपा से यह कवि हो गई। जब मैं करौली गया था, तब अनेक वैष्णवों के मुख से मैंने यह बात सुनी थी। वहाँ मैंने इनकी अनेकों कविता भी सुनी। उसी समय मैंने इनकी कितनी ही

कवितायें लिख भी ली थीं। ताज की दो सौ कविता मेरे हाथ की लिखी हुई मेरे निजी पुस्तकालय में है।" ❀

गोविंद-गिल्ला भाई
सिहोर
भावनगर-राज्य

मथुरा के कविराज चौबे नवनीत अभी मौजूद हैं। वे पहले प्रायः काँकरोली (मेवाड़) में रहते थे। उनका कहना है कि "ताज एक मुसलमान स्त्री-कवि थी और पंजाब की रहने वाली थी। कृष्ण से प्रेम हो जाने पर कविता की ओर इसका ध्यान हो गया था।"

अनेक सज्जनों का यह अनुमान है कि शाहजहाँ बादशाह की वेगम ताजबीवी (मुमताज महल) 'ताज' नाम से कविता लिखती थी। इसी प्रकार अनेक दंतकथायें ताज कवि के सम्बन्ध में सुनी जाती हैं किन्तु कोई बात प्रमाणिक नहीं जँचती।

ताज कवि पंजाब निवासिनी थीं, और मुसलमानिन थीं, इस पर तो किसी को भी संदेह नहीं हो सकता। क्योंकि इस बात का पता उसके निम्नलिखित कवित्त से चलता है। इस पद्य की भाषा भी सिद्ध करती है कि यह पंजाब की ही रहने वाली थीं। कवित्त यह है :—

❀ दुःख है कि श्री गोविन्द-गिल्ला भाई का सन् १९२६ में देहान्त हो गया।

सुनो दिल जानी मेरे दिल की कहानी तुम,
दस्त ही बिकानी बदनामी भी सहूँगी मैं।
देव पूजा ठानी हौं निवाज हूँ भुलानी तजे,
कलमा कुरान सारे गुनन गहूँगी मैं॥
श्यामला सलोना सिरताज सिर कुल्ले दिये,
तेरे नेह दाग में निदाग हो रहूँगी मैं।
नन्द के कुमार कुरबान ताणी सूरत पै,
हूँ तो तुरकानी हिन्दुआनी हो रहूँगी मैं॥

इनकी कविता बहुत सरस और मनोहर है। ये श्रीकृष्ण भगवान की परमभक्त थीं। इनकी कविता द्वारा कृष्ण-भक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। कविता की भाषा पंजाबी और हिन्दी मिश्रित है। इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिए जाते हैं :—

१

छैल जो छबीला सब रंग में रंगीला बड़ा,
चित्त का अड़ीला सब देवतों से न्यारा है।
माल गले सोहै, नाक मोती सेत सोहै कान,
मोहै मन कुंडल मुकुट सीस धारा है॥
दुष्ट जन मारे, संत जन रखवारे 'ताज'
चित हित वारे प्रेम प्रीति कर वारा है।
नन्द जू को प्यारा जिन कंस को पछारा,
वह वृन्दाबन वारा कृष्ण साहेब हमारा है॥

२

कालिन्दी के तीर नीर-निकट कदम्ब कुंज,
मन कछु इच्छा कीनी सेज सरोजन की।
अन्तर के यामी कामी कँवल के दल लेकें,
रची सेज तहाँ शोभा कहा कहौं तिनकी॥
तिहिं समै 'ताज' प्रभु दंपति मिले की छबि,
बरन सकत कोऊ नाहीं वाहि छिन की।
राधे की चटक देखे अंखिया अटक रहीं,
मीन को मटक नाहिं साजत वा दिन की॥

३

चैन नहीं मनमें न मलीन सुनैन भरे जल में न तई है।
'ताज' कहै परयंक यों बाल ज्यों चंपकी माल बिलाय गई है॥
नेकु बिहाय न रैन कछू यह जान भयानक भारि भई है।
भौन में भानु समान सुदीपक अंगन में मनो आगि दई है॥



खगनिया

खगनिया जिला उन्नाव मे रणजीत पुरवा नामक ग्राम की रहने वाली थी। इसके पिता का नाम बासू था और जाति की तेलिन थी। यह पढ़ी लिखी तो विशेष रूप से नहीं थी किन्तु पहेलियाँ बनाने में बड़ी प्रवीण थी। इसकी पहेलियों को साधारण लोग बहुत पसंद करते हैं। बहुत से लोग इसकी पहेलियाँ सुनकर इससे लिख ले जाते थे और उन्हें कंठस्थ कर लेते थे। आज भी कितने ही लोगों को खगनिया की पहेलिया कंठस्थ हैं। उन्नाव के एक सहृदय मित्र ने खगनिया की कुछ पहेलियाँ हमारे पास भेजी हैं। उन्होंने खगनिया के सम्बन्ध में यह छंद भी लिख भेजा है:—

सिर पै लिए तेल की मेटी,
घूमति हौं तेलिन की बेटी।
कहौं पहेली बहले हिया,
मैं हौं बासू केर खगनिया॥

इसने ग्रामीण भाषा में कविता लिखी है। इसकी पहेलियाँ साहित्यिक दृष्टि से तो अत्यन्त साधारण हैं किन्तु उनमें कुछ ऐसा रस है जो सभी लोगों को पसन्द आता है। इसने अपनी पहेलियों में अपने पिता का भी नाम रक्खा है। संसार में बहुत से तेली और तेलिन हो गई हैं किन्तु उनमें खगनिया का नाम आज भी अमर है। इसका समय

सं० १६६० विक्रमी के लगभग माना जा सकता है। इसकी कुछ पहेलियाँ हम नीचे उद्धृत करते हैं:—

१

हाथी हाथ हथनियाँ काँधे, चले जात हैं बकुचा बाँधे ॥

गज

२

आधा नर आधा मृगराज, युद्ध बिआहे आवे काज।
आधा टूट पेट में रहै, बासू केरि खगनिया कहै ॥

नरसिंह

३

लम्बी चौड़ी आँगुर चारि, दुहों ओर तें डारिनि फारि।
जीव न होय जीव को गहै, बासू केरि खगनिया कहै ॥

कंघी

४

चारि पाँव बाँधे ते मोटि, अपने दल मां सबतें छोटि।
दुखी सुखी सबके घर रहै, बासू केरि खगनिया कहै ॥

चोली

५

भीतर गूदर ऊपर नांगि, पानी पियै परारा मांगि।
तिहिं की लिखी करारी रहै, बासू केरि खगनिया कहै ॥

दावात

६

बाम्हन खावै पेटवा फार, लाली है रंगति वहि क्यार।
नेरे नहीं दूर माँ रहै, वासू केरि खगनिया कहै॥

कचौरी

७

रहत पीताँबर वाके कांधे, गूंजत पुहुपन पै मन साधे।
कारो है पै रस को गहै, वासू केरि खगनिया कहै॥

भौंरा

८

तिरिया देखी एक अनोखी, चाल चलति है चलवल चोखी।
मरना जीना तुरत बताय, नेकु न अन्नहु पानी खाय।
हाथन माँ है मोरे रहै, वासू केर खगनिया कहै॥

नाड़ी

९

इक नारी है बीहड़ नंगी, झटपट बन जाती है जंगी।
रकत पियासी खासी रहै, वासू केरि खगनिया कहै॥

तलवार

१०

कोऊ वाको नेकु न खाय, सब ही वाको लेंय भुनाय।
पास सबहिं के ही वह रहै, बासू केरि खगनिया कहै॥

रुपया

११

चुप्पी साधे नेकु न बोले, नारी वाकी गाठें खोले।
दरवाजन माँ ऐसेन लटके, चोरन तें स्वावत बेखटके॥
रच्छा घर की करता रहै, बासू केरि खगनिया कहै॥

ताला

१२

आँखिन माँ सब लेंय लगाय, लरिका वाते हैं सुख पाय।
तनुक न ऊजर कारो रहै, बासू केरि खगनिया कहै॥

काजल

१३

दुइनौं एक अजीब अनोखी, बड़ी करारी रंगति चोखी।
जाते ये दोनों लग जातीं, बिनु देखे नहिं वाहि अघातीं॥
बिना न याके जीवन रहै, बासू केरि खगनिया कहै।

आँख

१४

पटियाँ आंखिन माँ बंधवावैं, कोल्हू माँ हैं वाहि चलाव।
मौन रहे पै बिपदा सहै, बासू केरि खगनिया कहै॥

कोल्हू का बैल



शेख

शेख जाति की मुसलमान थी। इसका विवाह आलम नाम के एक सुकवि से हुआ था। ठाकुर शिवसिंह ने अपने शिवसिंह सरोज में आलम को सनाढ्य ब्राह्मण लिखा है और इनका जन्म संवत् १७१२ में बतलाया है। ये औरङ्गजेब के पुत्र शाहज़ादा मुअज्ज़म के दरबार में रहा करते थे। आलम के जन्म-संवत् के दो चार वर्ष पीछे शेख का जन्म माना जा सकता है। शेख के जन्म और मृत्यु का ठीक ठीक समय निश्चित अभी नहीं हो सका है।

शेख रंगरेजिन थी। कपड़े रंगा करती थी। एक बार आलम ने, जब उनकी शेख से जान पहचान नहीं थी, इसे अपनी पगड़ी रंगने को दी। भूल से एक कागज़ का टुकड़ा, जिसमें आलम ने आधा दोहा लिखकर फिर किसी समय उसे पूरा करने के लिए बांध दिया था, उसमें बंधा ही रह गया। पगड़ी रंगते समय शेख ने उस कागज़ के टुकड़े को खोल कर पढ़ा। उसमें दोहे की एक पंक्ति लिखी थी:—

"कनक छरी सी कामिनी काहे को कटि छीन।"

शेख ने इस दोहे की पूर्ति इस प्रकार कर दी:—

"कटि को कंचन काटि विधि, कुचन मध्य धरि दीन॥"

शेख ने दोहे की पूर्ति करके, कपड़ा रंगने के बाद उस कागज़ को फिर उसी में बांध दिया। जब आलम को वह पगड़ी मिली और

उन्होंने दोहे की ऐसी सुन्दर पूर्ति देखी, तब वे तुरन्त शेख के घर पहुँचे। उन्होंने शेख को पगड़ी की रंगाई के अलावा कितनी ही अशर्फ़ियाँ पुरस्कार में दीं। उसी दिन से दोनों में अगाध प्रेम हो गया। आलम ने मुसलमानी मत को स्वीकार करके शेख के साथ अपना विवाह कर लिया।

मुंशी देवी प्रसाद जी ने भी इसी प्रकार की एक घटना लिखी है, वह इस प्रकार है :—

"एक दिन आलम अपनी पगड़ी इसे रंगने को दे गये। इसने रंगते समय उसके छोर में एक कागज़ का परचा बंधा देखा तो उसमें ये तीन पद नायक की प्रशंसा में लिखे थे :—

प्रेम रँग पगे जगमगे जगे जामिनि के,
जोवन की जोति जगि जोर उमगत हैं।
मदन के माते मतवारे ऐसे घूमत हैं,
झूमत हैं झुकि झुकि झँपि उघरत हैं॥
आलम सा नवल निकाई इन नैननि की,
पाँखुरी पदुम पै भँवर थिरकत हैं।

शेख ने उसके नीचे निम्नलिखित चौथा पद लिख कर कवित्त पूरा कर दिया :—

चाहत हैं उड़िबे को देखत मयंक-मुख
जानत हैं रैनि ताते ताहि में रहत हैं॥

आलम ने ज्योंही चौथा चरण पढ़ा त्योंही वे प्रेम में मस्त होकर रंगरेजिन के घर आये। वह उस समय रोटी खा रही थी। उन्होंने

पूछा कि यह चौथा चरन किसने लिखा है तो वह हाथ जोड़कर खड़ी हो गई और बोली कि साहब मैंने लिखा है। यह सुन कर आलम के हृदय में प्रेम और प्रसन्नता का इतना कुछ आवेश हुआ कि बिस्मिल्लाह कह कर उसके संग भोजन करने को बैठ गये। ·········इसके बाद विवाह होजाने पर दोनों निश्चित होकर काव्य-रस का मज़ा लेने लगे।"

आलम और शेख बड़े प्रेमी जीव थे। शेख के एक पुत्र भी था उसका नाम था 'जहान'। एक दिन शाहज़ादा मुअज्ज़म ने शेख से मज़ाक में पूँछा—"क्या आलम की औरत आप ही हैं?" शेख ने उसी समय जवाब दिया—"हाँ जहाँपनाह जहान की माँ मैं ही हूँ।" शाहज़ादा शेख का जवाब सुनकर बड़ा लज्जित हुआ। उसने शेख को बहुत सा धन दिया।

शेख और आलम की कविताओं का एक संग्रह "आलम केलि" नाम का लाला भगवानदीन* की सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ है। पुस्तक के अंत में लिखा है:—

"इति श्री आलम कृत कवित्व 'आलम केलि' समाप्तम्"। "सम्वत् १७५३ समये आसन बदी अष्टमी बार शुक्र॥"

इसके सिवा "माधवानल काम कंदला" नामक संस्कृत ग्रन्थ का अनुवाद भी इन्हीं का किया हुआ बतलाया जाता है। किन्तु इस ग्रन्थ का

* खेद है कि लालाजी का २८-७-३० को काशी में स्वर्गवास हो गया।

अभी तक पता नहीं चल सका है। "आलम-केलि" में आलम और शेख के ४०० छंद संग्रहीत हैं। छंदों में कवित्त और सवैया प्रधान हैं।

आलम और शेख का सम्बन्ध प्रेम-मय था। इनके छंदों से साहित्य मर्मज्ञता सच्ची कृष्णभक्त और अनूठी प्रतिभा का परिचय मिलता है। हमारा विचार है कि 'आलम' की प्रतिभा से 'शेख' की प्रतिभा कुछ ऊँची है। लोग कहते हैं कि आलम, शेख के लिए मुसलमान हो गये। किन्तु हमारी राय में 'आलम' की सुसंगति पाकर 'शेख' कृष्ण-भक्ति के रंग में रंग कर कृतार्थ हो गई। सच्चे कवियों का कोई धर्म्म नहीं होता। वे तो धर्म्म के दिखाऊ बंधनों को तोड़कर सच्चे प्राकृतिक सौन्दर्य्यमय प्रेम-पथ के पथिक होते हैं। 'शेख' रंगरेजिन ही न थी वरन् ऐसा जान पड़ता है कि वह सच्चे प्रेम-रंग में स्वयं रँगी हुई थी। वह बड़ी प्रतिभाशालिनी और हाज़िर जवाब थी।

स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसाद जी के पुस्तकालय में आलम और शेख के ५०० छंद मौजूद हैं। इन दोनों का कविता-काल साधारणतः संम्वत् १७४० से सं० १७७० तक माना जाता है। हम यहां 'शेख' की कुछ चुनी हुई कवितायें उद्धृत करते हैं:—

१

रात के उनींदे अलसाते मदमाते राते,
अति कजरारे दृग तेरे यों सोहात हैं।
तीखी तीखी कोरनि करोरे लेत काढे जिउ,
केते भये घायल औ केते तलफात हैं॥

ज्यों ज्यों लै सलिल चख 'सेख' धोवै बार बार,
त्यों त्यों बल बुंदन के बार झुकि जात हैं।
कैवर के भाले केधौं नाहर नहनवाले,
लोहू के पियासे कहूँ पानी ते अघात हैं॥

२

बीस बिधि आऊँ दिन बारीये न पाऊँ और,
याही काज वाही घर बाँसनि की बारी है।
नेकु फिरि ऐहैं कैहैं दै री दै जसोदा मोहिं,
मो पै हठि मांगैं बंसी और कहूँ डारी है॥
'सेख' कहै तुम सिखवो न कछु राम याहि,
भारी गरिहाइनु की सीखे लेतु गारी है।
संग लाइ भैया नेकु न्यारो न कन्हैया कीजै,
बलन बलैया लैकै मैया बलिहारी है॥

३

कीनी चाहौ चाहिली नवोढ़ा एकै बार तुम,
एक बार जाय तिहि छलु डरु दीजिये।
'सेख' कहौ आवन सुहेली सेज आवै लाल,
सीखन सिखैगी मेरी सीख सुनि लीजिये॥
आवन को नाम सुनि सावन किये है नैन,
आवन कहै सुकैसे आइ जाइ छीजिये।

बरबर बसि करिबे को मेरो बसु नाहिं,
ऐसी वैस कहौ कान्ह कैसे बस कीजिये ॥

४

छलिबे को आई ही सु हौं ही छलि गई मनु,
छीकतौ न छल, करि पठई बिहारी हौं।
तूँ तो चल है पै आली हौं हीये अचल सी हौं,
सादी रूप रेख देखि रीझि भीजि हारी हौं ॥
'सेख' भनि लाल मनि बेंदी की बिदा है ऐसे,
गोरे गोरे भाल पर वारि फेरि डारी हौं।
बैरिन न होहु नेकु बेसरि सुधारि धरो,
हौं तो बलि बेसरि के बेह बेधि मारी हौं ॥

५

कहूँ भूल्यो वेनु कहूँ धाइ गई धेनु कहूँ,
आये चित चैनु कहूँ मोरपंख परे हैं।
मन को हरन को है अछरा छरन को है,
छाँह ही छुवत छवि छिन ह्वै कै छरे हैं ॥
'सेख' कहै प्यारी तू जो जबहीं ते बन गई,
तब हीं ते कान्ह अँसुवनि सर करे हैं।
याते जानियति है जू वेऊ नदी नारे नीर,
कान्ह वर विफल बियोग रोय भरे हैं ॥

६

जोगी कैसे फेरनि बियोगी आवै बार बार,
जोगी ह्वै है तौ लगि बियोगी बिललातु है।
जा छिन ते निरखि किसोरी हरि लियो हेरि,
ता छिन ते खरोई धरोई पियरातु है॥
'सेख' प्यारे अति हीं बिहाल होइ हाय हाय,
पल पल अंग की मरोर मुरछातु है।
आन चाल होति तिहि तन प्यारी चलि चाहि,
बिरही जरनि ते बिरह जर्‌यो जातु है॥

७

सीस फूल सीस धर्‌यो भाल टीका लाल जर्‌यो,
कछु सुक्र मंगल में भेदु न विचारि हौं।
बेसरि की चूनी जोति खुटिला की दूनी दुति,
बीरनि के नागिन तरैयाँ ताकि वारि हौं॥
'सेख' कहै स्याम बिधु पून्यो को सो देखि मुख,
बुद्धि बिसरैगी बेगि सुधि न सँभारि हौं।
नभ के से नखत दुरैंगे नहीं न्यारे न्यारे,
दीपक दुराय तव दीपति निहारि हौं॥

८

रस में बिरस जानि कैसे बसि कीजै आनि,
हा हा करि मो सों अब बोलि हौ तौ लरौंगी।

औरनि के आधे नाउँ आधो रैन दौरि जाउँ,
राधा जू के संग पै न आधो डग भरौंगी ॥
'सेख' होत न्यारे ऐसी पीर लाये प्यारे तुम,
अबहीं हौं बिरह बखाने पीर हरौंगी।
आज हू न ऐहै कोऊ कालि चलि जैहै सौंह,
परौं लगि हौं ही वाके पाँय जाय परौंगी ॥

९

मोती कैसी ढरनि ढरकि आवै नैना नेकु,
तुमैं ढोरी लागी जानौ गोरी ढरि आई है।
'सेख' भनि ताकों हाय हाय करौं पाय परौं,
आय बाय ऐसी जीय कैसे करि आई है ॥
नेह नहीं नैननि सनेह नहीं मन माहिं,
देह नहीं बिकल बियोग जरि आई है।
झूठे ही कहत परवस मरयो जात हौं सु,
परवस नहीं बरबस बरिआई है ॥

१०

प्रीति की परनि बैरी बिरह की जीति भई,
हारे सब जतन जहाँ लौं जानियत है।
वेदन घटै न बिघटी सी वहै जाति 'सेख',
आन आन भांति उपचार आनियत है ॥

जन्त्र है न जरी कछु मरी जाति कन्त बिन,
नेह निरमोही के न मन्त्र मानियत है।
चन्दन चितैये बरै चाँदनी न चाही परैं,
चन्दा हू की ओट को चँदोवा तानियत है॥

११

कहूँ मोती माँग कहूँ बाजू बन्द झब्बा झरे,
कहूँ हार कंकन हमेल टाँड टीक है।
ऐसे कै बिसारी स्याम ऐसी बैस ऐसी बाम,
पिहकि पपीहा की सी बार बार पी कहै॥
'सेख' प्यारे आजु कालि आल चाल देखौ आइ,
छिन छिन जैसी तन-छीजन की छीक है।
सेज मैन-सारी सी है सारी हूँ बिसारी सी है,
बिरह बिलाति जाति तारे की सी लीक है॥

१२

नेह सों निहारै नाहु नेकु आगे कीने बाहु,
छाँहियो छुवत नारि नाहियों करति है।
प्रीतम के पानि पेलि आपनी भुजै सकेलि,
धरकि सकुचि हियो गाढ़ो कै धरति है॥
'सेख' कहि आधे बैना बोलि करि नीचे नैना,
हा हा करि मोहन के मनहिं हरति है।

केलि के अरम्भ खिन खेल के बढ़ाइबे को,
प्रोढ़ा जो प्रवीन सो नवोढ़ा ह्वै ढरति है ॥

१३

निरखैं निबाहैं तेई गोरी हैं कठोरी हम,
चोरी ही में चाहैं पतझारी केसे पात हैं।
'सेख' कहि एक बार कान्हर की खोरि आयें,
ठौर रहै मानस, कठोर सोई गात हैं ॥
मोहिनी से बोल कारे तारनु, की डोल मिली,
बोल डोल दोऊ बटमारे बात बात हैं।
नैना देखें स्याम के ते बैना कैसे सुन माई,
बना सुनें तिनै कैसें नैना देखे जात हैं ॥

१४

निधरक भई अनुगवति है नन्द घर,
और ठौर कहूँ टोहे हू न अहटाति है।
पौरि पाखे पिछवारे कौरे कौरे लागी रहे,
आँगन देहली याहो बीच मँडराति है ॥
हरि रस राती 'सेख' नेकहूँ न होइ हाती,
प्रेम मदमाती न गनति दिन राति है।
जब जब आवति है तब कछू भूलि जाति,
भूल्यो लेन आवति है और भूलि जाति है ॥

१५

मानस को कहा बसि कीजतु है बावरी सु,
बासी सुरबास हू को बसि कै बसाऊँ री।
मैनका को स्वामी कामकन्दला को कामी भोरि,
मैन हू की मानिनि को मन मोहि ल्याऊँ री॥
'सेख' मनमोहन के मोहन के मन्त्र जन्त्र,
मोहिं जे न आवें ते विधाता पै न पाऊँ री।
आखतनि लेत हाथ चन्दा चल्यो आवे साथ,
नदिन को नीर बीर उलटि बहाऊँ री॥

१६

खरी अनखात ह्वै है बीरियो न खात ह्वै है,
झाँकि झाँकि जात ह्वै है नेक भये न्यारे हो।
'सेख' कहै उनही सिखाइ पठये हो पिय,
झाँकी दैन आये तुम हिये झुकि हारे हो॥
बोलो ताहि सों हो सौंहैं जोरै कौन भौंहैं ऐसे,
पाँय परौं वाके जाके पाय पर वारे हो।
प्यारी कहो ताही सों जु रावरे सों प्यारे कहै,
आजु कालि रावरे परोसिन के प्यारे हो॥

१७

ढीली ढीली डगैं भरो ढीली पाग ढरि रही,
ढरे से परत ऐसे कौन पर ढहे हो।

गाढ़े जु हिया के पिय ऐसी कौन गाढ़ी तिय,
गाढ़ी गाढ़ी भुजन सों गाढ़े गाढ़े गहे हो ॥
लाल लाल लोयन उनींदे लागि लागि जात,
साँची कहौ 'सेख' प्यारे मैं तौ लाल लहे हो ।
रस बरसात सरसात अरसात गात,
आये प्रात कहौ बात रात कहाँ रहे हो ॥

१८

तुम निरमोही लोग औरै कछू बूझत हैं,
कहा एती बात को परेखो जिय मानिये ।
भावै सोई आवै जु वियोगी दुख पावै जातें,
परबस भये येती मनहिं न आनिये ॥
अब नैना लागे भागे कैसे छुटियत है जू,
पैंडे के चलत सोई नीके पहिचानिये ।
नैननि के तारे तुम न्यारे कैसे होहु पीय,
पायन की धूरि हमैं दूरि कै न जानिये ॥

१९

जुग है कि जाम ताको मरम न जानै कोऊ,
बिरही की घरी और प्रेमी को जु पल है ।
'सेख' प्यारे कहियो सँदेसो ऊधो हरि आगे,
ब्रज बारिये को घरी घरी घृत जल है ॥

हाँसी नहीं नैसकु उकासी देत जोग तन,
बिरह बियोग भार औरै दावानल है।
सिर सों न खेलै पग मेले न परे लौं जाय,
गिरि हू ते भारो यहाँ बिरह सबल है॥

२०

मिटि गयो मौन पौन साधन की सुधि गई,
भूली जोग जुगति बिसार्‌यो तप वन को।
'सेख' प्यारे मन को उजारो भयो प्रेम नेम,
तिमिर अज्ञान गुन नास्यो बालपन को॥
चरन कमल ही की लोचनि में लोच धरी,
रोचन ह्वै राच्यो सोच मिटो धाम धन को।
सोक लेस नेक हू कलेस को न लेस रह्यो,
सुमिर श्री गोकलेस गो कलेस मन को॥

२१

पैंड़ों सम सूधो वड़ों कठिन किंवार द्वार,
द्वारपाल नहीं तहाँ सबल भगति है।
'सेख' मनि तहाँ मेरे त्रिभुवन राय हैं जू,
दीन बन्धु स्वामी सुरपतिन को पति है॥
वैरी को न बैरु बरियाई को न परवेस,
हीने को हटक नाहीं छीने को सकति है।

हाथी की हँकार पल पाछे पहुँचन पावे,
चींटी की चिंघार पहिले ही पहुँचति है ॥

२२

जीत गई प्रानिनि अनीति भई भोति सब,
बीति गयो औसर बनावै कौन बतिया ।
ऊक भई देह बरि चूक है न खेह भई,
हूक बढ़ी पै न बिषि टूक भई छतिया ॥
'सेख' कहि साँस रहिबे की सकुचनि कवि,
कहा कहौं लाजनि कहौगे निलज तिया ।
और न कलेस मेरो नाथ रघुनाथ आगे,
भेसु यहै भाखियो सँदेस यहै पतिया ॥

२३

थोरी बार है जु कछु थोरे सो मैं ताकि आई,
ओरो सो बिलाइ कहीं खिन ही में खोइगो ।
धीरज अधारते रह्यो है खंग धार जैसो,
आँसुन की धार सो न धूरि है जु धोइगो ॥
आहि सुनि आई औ न चाहि ताहि पाई फेरि,
देखि 'सेख' मजनूँ बिनाही नींद सोइगो ।
नीकै कै निहारि वाके बसननि झारि डारि,
तार तार ताकि कहूँ बार सो जु होइगो ॥

२४

बिछुरे ते बलबीर धरि न सकत धीर,
उपजी बिरह पीर ज्यों जरनि जर की।
सखिनि सँभारि आनि मलय रगरि लायो,
तैसी उड़ी अवली कहूँ ते मधुकरि की॥
बैठ्यो आय कुच बीच उड़ि न सकत नीच,
रहि गई रेख 'सेख' दंत दुहुँ पर की।
मानहु पुरातन सुमरि बैरु संभु जू सों,
मार्यो सम्बरारि रहि गई फोंक सर की॥

२५

रूप सुधा मकरन्द पिये ते तऊ अलि कंट वियोग अरे हैं।
'सेख' कहै हरि सों कहियो अलि ध्यान प्रतच्छ समान करे हैं॥
जो मन मूरति के निरखे हम देखत ही गिरि गात गरे हैं।
जोति प्रसंग पतंग गरे इक झाँई के भूसत तेल तरे हैं॥

२६

जोवन के फूल बन फूलनि मिलनि चली,
बीच मिले कान्ह सुधि बुधि बिसराई है।
बाँसुरी सुनत भई बाँसुरियो बाँसुरी सु,
बाँसुरी की काहि 'सेख' आँसुनि अघाई है।
थकि थहराइ बहराइ बैठियो न कहूँ,
ठहराइ जीय ऐसी पुनि ठहराई है।

बारुनी बिरह आक बाक बकवास लगी,
गई हुती छाक दैन आपु छकि आई है ॥

२७

केसू कुर हरे अध जरे मानो क्वेला धरे,
कैलहाई कोयल करेजो भूँजे खाति है।
फूली बन बेली पै न फूली हौ इकेली तन,
जैसी तलबेली औ सहेली न सुहाति है ॥
चहुँघा चकित चंचरीकन को चारु चौंप,
देख 'सेख' राती कोंप छाती खोंप जाति है।
होन आयो अंत तंत मंत पै न पायो कछू,
कंत सों बसाति ना बसंत सों बसाति है ॥

२८

जाकी बात रात कही सो मैं जात आजु लही,
मो तन तिरीछे हँसि हेरि सुख दियो है।
ऐसी देखी आन कोऊ सो न देखी आन तुम,
वाके देखे मानस मरू कै कोऊ जियो है ॥
कै तो कहूँ बांधो उर वेधिवे को ठौर नहीं,
'सेख' ऐसो रावरे कठोर मन कियो है।
पीरो नहीं प्रेम पीर सीरो न सिथिल भयो,
चीरो नहीं चित या सु हीरो है कि हियो है ॥

२९

सखिन बुलावै कान्ह मुखहि न लावै झुकि,
दूतियो निकारी बीनि बेगि ही बगर तें।
हौं न भई हाती कहौं वाही की सुहाती ऐसी,
मान रस माती हौं न बोली डोली डर तें॥
जो लौं कहूँ मुरली की घोर सुनी कान 'सेख'
घरी ही में देहली दुहेली भई घर तें।
परी तिहि काज हुती पीरी पीरी बाल जनु,
सीरी भई सुनि छुटि बीरी गई कर तें॥

३०

जौहीं भौंह भीजी आँखि ताकि है जु तीजिये से,
जीवी कहे ज्याइहै अमर पद आइ लै।
अंबर पखारे ते दिगम्बर बनै है तोहि,
छलक छुआये गज छाल तन छाइ लै॥
'सेख' कहै आपी कोऊ जैनी है कि जापी बड़ो,
पापी है तो नीर पैठि नागन नहाइ लै।
अंग बोरि गंग में निहंग ह्वै कै बेगि चलि,
आगे आउ मैल धोइ बैल गैल लाइ लै॥



छत्रकुँवरि बाई

छत्रकुँवरि बाई रूपनगर (राजपूताना) के राजा सरदारसिंह जी की बेटी और व्रजभाषा के प्राचीन कवि नागरीदास जी की पोती थीं। ये अपने 'प्रेम-विनोद' नामक ग्रन्थ में अपना परिचय इस प्रकार देती हैं:—

रूपनगर नृप राजसी, निज सुत नागरिदास।
तिनके सुत सरदार सी, हौं तनया मैं तास॥
छत्रकुँवरि मम नाम है, कहिबे को जग माँहि।
प्रिया सरन दासत्व तें, हौं हित चूर सदाँहिं॥
सरन सलेमाबाद की, पाई तासु प्रताप।
आश्रय ह्वै जिन रहसि के, बरन्यो ध्यान सजाप॥

इनका विवाह महाराजा बहादुरसिंह जी ने वैसाख सुदी १२ सम्वत् १७३१ में कोठड़े के गोपालसिंह जो खीची से किया था। इसलिए इनका जन्म सं० १७१५ के लगभग मानना चाहिए। ये बहुत दिनों तक अपने पति के पास रह कर फिर रूपनगर चली आईं। एक स्थान पर यह भी लिखा मिलता है कि ये राजा सरदारसिंह की खवास थीं। बाल्यकाल ही से इन्हें कृष्ण-प्रेम का चस्का लग गया था। उन्हीं की गुणावली के वर्णन करने में ये अपना समय बिताती थीं। ये अपने बाबा नागरीदास के ग्रंथों का अधिक अध्ययन किया करतीं थीं। इसी से इनके हृदय में कृष्ण जी के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार

सत्संग और प्रेम से इनके हृदय में भक्ति-भाव-मयी कविता करने की इच्छा पैदा हुई।

अंत में इन्होंने सलेमाबाद के निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षा ले ली। इसका पता ठीक ठीक नहीं चलता कि इनका मरण किस सम्वत् में हुआ। इनका 'प्रेम-विमोद' नामक ग्रन्थ सम्वत् १७४५ आपाढ़ सुदी तीन बृहस्पतिवार को समाप्त हुआ था। इनकी कविता सरस, कृष्ण भक्ति के रंग में रँगी हुई सुन्दर है। 'प्रेम-विनोद' से इनकी कुछ रचनायें यहाँ दी जातीं हैं:—

१

श्याम सखी हँसि कुँवरि दिसि, बोली मधुरी बैन।
सुमन लेन चलिए अबै, यह बिरियाँ सुख दैन॥
यह बिरियाँ सुख दैन, जान मुसुकाय चली जब।
नवल सखी करि कुवँरि, रंग सहचरि बिथुरी सब॥
प्रेम भरी सब सुमन चुनत, जित तित साँझी हित।
ये दुहुँ बेबस अंग फिरत, निज गति मति मिस्रित*॥

* कुंडलिया छंद का यह नियम है कि वह जिस शब्द से प्रारम्भ होता है उसी पर समाप्त भी होता है। किन्तु बाई जी की कुंडलियों में यह नियम सर्वथा चरितार्थ नहीं होता। प्रायः कुंडलिया लिखने वाले सभी कवियों ने पंचम पद में अपने नाम या उपनाम दिए हैं परन्तु बाई जी ने ऐसा नहीं किया।

२

गरबाहीं दीने कहूँ, इक टक लखन लुभाहिं।
पगपग द्वै द्वै पैड़ पै, थकित खरी रहि जाहिं॥
थकित खरी रहि जाहिं, दृगन दृग छुटै न छूटैं।
तन मन फूल अपार, दुहूँ फल लाह सुलूटैं॥
नैनन नैनन सुलग बैन सों नहिं वनि आवै।
उमड़न प्रेम समुद्र थाह तिहिं नाहिन पावै॥

३

फूलन संझा समय अति, फूले सुमन सुरंग।
फूले नैन दुहून के, फूलि समात न अंग॥
फूलि समात न अंग रंग तिहिं सुगल सम्हारैं।
साँझी सुरत सुआय लैन तब सुमन बिचारैं॥
प्यारी झमक झुकात डार झूमत अलबेली।
कर पहुँचै तहँ नाहिं, चढ़ावत कंध नवेली॥

४

लेत सुमन वेलीन तें, मोतिन की सी वेलि।
तृन तोरत लखि छकि तहाँ, नागरि सखी नवेलि॥
नागरि सखी नवेलि, अपन पौ सर्व निवारैं।
सुमन गह्यावत सघन, झूम निरवारै डारैं॥
अरुझत प्यारी बसन जहां द्रुम बेलिन माँही।
सुरझावत नव नारि, अपुन उरझन उरझाहीं॥

५

अरुझन में अरुझन नवल गुरुजन रंग अपार।
ज्यों डारन सों डार त्यों उर हारन सों हार॥
उर हारन सों हार अलक अलकन लपटानी।
नैन नैन बैनान सुगल की अकथ कहानी॥
प्रेम सिंधु छिल ललचि लहरि इत अति सरसानी।
कुँवरि सकुचि सतराय झिझकि ठिग सखिन बुलानो॥

६

प्यारी छवि सतरान लखि नव नागरि मुसुकाय।
विवस प्रेम दृग गति छकी इक टक रही चिताय॥
इक टक रही चिताय अमल अनउतरन छाकी।
इक चितवन सकुचान भरी इत प्रेमहिं पाकी॥
जुरन घुरन पुनि दुरन मुरन लोचन अनियारे।
भवनागति उर मैन, बान लगि फुट दुसारे॥

७

यह छवि लखि लखि रीझि कै प्रेम पूर छकछाय।
कहत नई कहुँ दूर सों हँसिके दुहुन सुनाय॥
हँसिके दुहुन सुनाय कहत विधि मिलन मिलाई।
द्रुम वेलिन के मेल, फूल अति छल छवि छाई॥
यह सुनि नव नागरि जु, प्रिया मुख लखि मुसुकाई।
कहत भई हँसि वहि जु अहा मोहन की पाई॥

८

मिला मिली की रीति जो चलन लगी इहिं बाग।
रहिये तिहि सामिल तहाँ, जो प्रसंग जिहिं जाग॥
जो प्रसंग जिहिं जाग तिहीं बानिक गति गहिए।
अलि मनोज वर फिरत, दुहाई देत सुलहिए॥
मिल बिछुरन न सलाह, लाह दैहैं ग्रह साँझी।
मिलै मेल ह्वै रंग अनँग रस सुरहैं माँझी॥

९

कछु मुसुकत सतराय कछु, कह्यो कुँवरि सकुचात।
बात तिहारी ये कछू, मोंहि न समझो जात॥
मोंहि न समझी जात, कहा झकझोर मचाई।
साँझी खेलन-बेर, यहै अब नियमी आई॥
कहिहैं गोप कुँवारि, गई कब की कित न्यारी।
गेह चलन की बेर, अबै क्यों करत अबारी॥



प्रवीणराय

प्रवीणराय वेश्या थी। यह ओड़छा (बुंदेलखंड) के महाराजा इंद्र जीतसिंह जी के यहाँ रहती थी। महाकवि केशवदास दास ने इसी के लिए 'कवि-प्रिया' ग्रन्थ की रचना की थी। केशवदास जी 'कवि-प्रिया' के प्रथम प्रभाव के अंतिम दोहे में कहते हैं:—

सविता जू कविता दई, ताकहँ परम प्रकाश।
ताके काज कवि-प्रिया, कीन्ही केशवदास॥

यह केशवदास की शिष्या थी। इन्हीं की संगति से इसने भी कविता करना सीख लिया था। 'कवि-प्रिया' में केशवदास जी ने प्रवीणराय की बड़ी प्रशंसा की है। कुछ उदाहरण लीजिए :—

तंत्री तुंबुरु सारिका, सुद्ध सुरन सों लीन।
देव-सभा सी देखिये, रायप्रवीन प्रवीन॥

अर्थात्—रायप्रवीण की अति सुन्दर वीणा देव-सभा सी है। क्योंकि जैसे देव-सभा तंत्री (बृहस्पति) तुंबुरु (गंधर्व) सारिका नामी अप्सरा तथा सतोगुणी देवताओं से संयुक्त रहती है, वैसे ही रायप्रवीण की वीणा भी तार, तूँबा, सारिका शुद्ध सुरों से युक्त है।

सत्या रायप्रवीन युत, सुरतऽरु सुरतरु गेह।
इंद्रजीत तासो बँधे, केशवदास सनेह॥

अर्थात—प्रवीणराय (पातुर) सत्यभामा के समान है । क्योंकि जैसे सत्यभामा में कृष्ण के प्रति सुन्दर प्रेम था वैसे ही रायप्रवीण में भी अपने पति के प्रति सुन्दर प्रेम है । जैसे सत्यभामा के घर में पारिजात वृक्ष था वैसे ही इसके घर में भी सुरों का वृक्ष अर्थात् जिससे सातों सुर निकलते हैं ऐसी वीणा है । जैसे सत्यभामा पर श्रीकृष्ण जी अनुरक्त थे वैसे ही राजा इंद्रजीत भी इससे बँधे हैं अर्थात् अनुरक्त हैं ।

नाचति गावति पढ़ति सब, सबै बजावत बीन ।
तिनमें करति कवित्त इक, रायप्रवीन प्रवीन ॥

अर्थात्—इंद्रजीत सिंह के यहाँ जितनी वेश्यायें थीं वे सभी नाचने, गाने, पढ़ने और वीणा बजाने में अत्यन्त कुशल थीं, किन्तु उनमें रायप्रवीण केवल कविता करने में ही अति प्रवीण थी ।

रतनाकर लालित सदा, परमानंदहि लीन ।
अमल कमल कमनीय कर, रमा कि रायप्रवीन ।

अर्थात्—यह प्रवीणराय है कि लक्ष्मी है । क्योंकि लक्ष्मी रत्नाकर द्वारा लालित हुई है तो यह भी रत्न-समूह से सदा लालित रहती है । (रत्न-जटित आभूषण पहने रहती है) और लक्ष्मी परमानंद (नारायण) की सेवा में लीन रहती है तो यह भी अत्यंत आनन्द में सदा निमग्न रहती है । लक्ष्मी के हाथ में निर्मल सुन्दर कमल रता है तो यह भी हाथ में सुन्दर कमल (कमल नामक आभूषण) रखती है ।

रायप्रबीन कि शारदा, सुचि रुचि राजत अंग।
वीणा पुस्तक धारिणी, राजहंस सुत संग॥

अर्थात्—यह प्रवीणराय है कि शारदा है। क्योंकि शारदा का अंग स्वेत कांति से रंजित है और इसका अंग भी शृंगार की कांति से रंजित है। शारदा वीणा और पुस्तक लिए रहती है और यह भी वीणा और पुस्तक लिए रहती है। शारदा के साथ राजहंस रहता है और यह भी हंस-जात (सूर्यवंशी) राजा के साथ रहती है।

वृषभ बाहनी अंग उर, बासुकि लसत प्रबीन।
शिव सँग सोहै सर्वदा, शिवा की रायप्रबीन।

अर्थात्—यह पार्वती है या रायप्रवीण, क्योंकि पार्वती शिव का अंग होने से वृषभ-वाहिनी हैं, उनके उर में वासुकी नाग पड़ा रहता है और प्रवीण भी हैं। वे सर्वदा शिव के संग रहती हैं। इसी प्रकार प्रवीणराय भी अपने अंग पर धर्म्म को वहन करती है अर्थात् वेश्या होने पर भी वेश्या-वृत्ति छोड़ केवल एक राजा ही से सम्बन्ध रखती है अतः पतिव्रता है। उस पर फूलों की माला धारण करती है और उत्तम वीणा भी रखती है तथा सर्वदा सुन्दर-रूप-युक्त शोभा देती है।

सुबरन बरन सु सुबरननि, रचित रुचिर रुचि लीन।
तन मन प्रगट प्रबीन मति, नवरँग रायप्रवीन।

अर्थात्—प्रवीणराय कैसी है कि सोने का सा सुन्दर रंग है। सोने के बने हुए सुन्दर आभूषण उसकी कांति में लुप्त होते जाते हैं। उसके तन से और मन से मति की प्रवीणता प्रगट होती है।

प्रवीणराय बड़ी सुन्दरी थी। वेश्या होने पर भी अपने को पतिव्रता समझती थी। पढ़ी लिखी थी। कविता करने में अत्यन्त प्रवीण थी। महाराज इंद्रजीत सिंह ने अनेक वेश्याओं से युक्त संगीत का एक अखाड़ा बनवाया था, जिसमें यह प्रधान थी।

प्रवीणराय कविता करती थी, इसलिए महाराज इंद्रजीत को अत्यन्त प्यारी थी। उस समय भारत में मुग़ल सम्राट अकबर का शासन था। प्रवीणराय की काफ़ी प्रशंसा हो रही थी। अकबर बादशाह ने भी अपने किसी हिन्दू दरबारी से उसकी प्रशंसा सुनी। उसने प्रवीणराय को बुला भेजा। प्रवीणराय ने इंद्रजीतसिंह के पास जाकर यह सवैया पढ़ा :—

आई हौं बूझन मन्त्र तुम्हैं निज स्वासन सों सिगरी मति गोई।
देह तजौं कि तजौं कुल कानि हिए न लजौं लजि हैं सब कोई।
स्वारथ औ परमारथ को पथ चित्त बिचारि कहो तुम सोई।
जामे रहै प्रभु की प्रभुता अरु मोर पतिव्रत भंग न होई॥

इन्द्रजीत सिंह ने प्रवीणराय को अकबर के पास नहीं जाने दिया। इससे अकबर ने नाराज़ होकर इंद्रजीत सिंह पर एक करोड़ का जुरमाना कर दिया और प्रवीणराय को ज़बरदस्ती बुला भेजा। प्रवीणराय अकबर के दरबार में गई। यह बड़ी चतुर और पतिव्रता थी। इसने दरबार में जाकर पहले अकबर बादशाह को यह सवैया सुनायाः—

अंग अनंग तहीं, कुछ संभु सु केहरि लंक गयन्दहिं घेरे।
भौंह कमान तहीं मृग लोचन खंजन क्यों न चुगै तिलि नेरे॥

है कच राहु तहीं उदै इंदु सु कीर के बिम्बन चोंचन मेरे।
कोऊ न काहू सों रोस करै सु डरै डर साह अकव्वर तेरे॥

प्रवीणराय ने बादशाह के सामने कई गीत गाए। इस समय रायप्रवीण की अवस्था कुछ ढलने पर आ गई थी। बादशाह अकबर ने इसकी अवस्था देखकर एक दोहे का आधा पद कहा :—

युवन चलत तिय देह ते, चटक चलत किहि हेत।

प्रवीणराय ने उत्तर दिया:—

मनमथ बारि मसाल को, सौति सिहारो लेत॥

बादशाह ने फिर आधा दोहा कहा:—

ऊँचे ह्वै सुरबस किये सम ह्वै नरबस कीन।

प्रवीणराय ने उत्तर दिया :—

अब पताल बस करन को ढरकि पयानो कीन।

अकबर बादशाह प्रवीणराय की कविता पर मुग्ध हो गया। उसने प्रवीणराय से अपने दरबार में रहने के लिए कहा और उसे धन-दौलत का भी लोभ दिया। किन्तु प्रवीणराय ने बादशाह से यह दोहा कहकर बिदा माँगी :—

बिनती राय प्रवीन की, सुनिये साह सुजान।
जूठी पतरी भखत हैं, बारी-बायस-स्वान॥

प्रवीणराय की प्रवीणता और कवित्वगुण देखकर बादशाह अकबर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उसे इन्द्रजीत के पास उसी समय भेज दिया। केशवदास जी के उद्योग और महाराज बीरबल की प्रेरणा से अकबर

बादशाह ने महाराज इन्द्रजीत सिंह का एक करोड़ के जुर्माना भी माफ़ कर दिया।

प्रवीणराय का लिखा हुआ कोई ग्रन्थ हमने नहीं देखा और न उसके रचना-काल के ही सम्बन्ध में हम कुछ ठीक ठीक कह सकते हैं। केशवदास जी के समय में तो यह थी ही। इसलिए इसका समय भी वही हो सकता है जो केशवदास जी का है। इसकी जो फुटकर रचनायें हमारे देखने में आई हैं उनमें से कुछ यहाँ उद्धृत की जाती हैं:—

१

सीतल सरीर ढार, मंजन कै घनसार,
अमल अँगोछे आछे मन में सुधारि हौं।
देहौं न अलक एक लागन पलक पर,
मिलि अभिराम आछी तपन उतारि हौं॥
कहत 'प्रवीणराय' आपनीन ठौर पाय,
सुन बाम नैन या बचन प्रतिपारि हौं।
जबहीं मिलेंगे मोहिं इंद्रजीत प्रान-प्यारे,
दाहिनो नयन मूँदि तोहीं सौं निहारि हौं॥

२

कमल कोक श्रीफल मँजीर कलधोत कलश हर।
उच्च मिलन अति कठिन दमक बहु स्वल्प नीलधर॥
सरवन शरवन हेम मेरु कैलास प्रकासन।
निशि बासर तरुवरहिं कौंस कुन्दन दृढ़ आसन।

इमि कहि 'प्रवीन' जल थल अपक अविध भजित तिय गौरि सँग।
कलि खलित उरज उलटे सलिल इंदु शीश इमि उरज ढँग॥

३

कूर कुरकुट कोटि कोठरी निवारि राखौं,
चुनि दै चिरैयन को मूँदि राखौं जलियो।
साँरग में साँरग सुनाइ के 'प्रबीन' बीना,
साँरग दै साँरग की जोति करौं थलियो॥
बैठि परयंक पै निसंक ह्वै कै अंक भरौं,
करौंगी अधर पान मैन मत्त मिलियो।
मोहिं मिलैं इंद्रजीत धीरज नरिन्द राय,
एहो चंद! आज नेकु मंद गति चलियो॥

४

छूटी लटैं अलबेली सी चाल भरे मुखपान खरी कटि छीनी।
चोरि नकारा उघारे उरोजन मोहन हेरि रही जु प्रबीनी॥
बात निशंक कहै अति मोहि सों मोहिं सों प्रीति निरंतर कीनी।
छाँड़ि महानिधि लोगन की हित मेरो सो क्यों बिसरै रसभीनी॥

५

अब गारि तुम कहँ देहिं हम कहि कहा दूलह राय जू।
कछु बाप विप्र परदार सुनियत करी कहत कुबाय जू॥
को गनै कितने पुरुष कीन्हें कहत सब संसार जू॥
सुनि कुंवर चित दै बरनि ताको कहिय सब व्योहार जू॥

वहु रूप सों नवयोबना वहु रत्नमय बपु मानिये।
पुनि वंश रत्नाकर बन्यो अति चित्त चंचल जानिये॥
शुभ शेष फण मणिमाल पलिका परति करति प्रबंध जू।
करि शीश पश्चिम पाँय पूरब गात सहज सुगंध जू॥
वह हरी हठि हिरनाक्ष दैयत देखि सुन्दर देह सों।
वरवीर यज्ञबरात बर ह्वी लई छीनि सनेह सों॥
ह्वै गई विह्वल अंग पृथु फिरि सजे सकल सिंगार जू।
पुनि कछुक दिन वश भई ताके लियो सरवस सार जू॥
वह गयो प्रभु परलोक कीन्हौं हिरणकश्यप नाथ जू।
तेहि भांति भांतिन भोगियो भ्रमि पल न छांड़यो साथ जू॥
वह असुर श्रीनरसिंह मार्‍यो लई प्रबल छड़ाइ के।
लै दई हरि हरिचंद राजहिं बहुत गोसुख पाइ के॥
हरिचन्द विश्वामित्र को दई दुष्टता जिय जानि कै।
तेहि वरी बलि बरिबंड वर ह्वी विप्र तपसी जानि कै॥
वलि बांधि छल—बल लई बावन दई इन्द्रहिं आनि कै।
तेहि इन्द्र तजि पति कर्‍यो अर्जुन सहस भुज को जानि कै॥
तव तासु मद छवि छक्यो अर्जुन हत्यो ऋषि जमदग्नि जू।
सो परशुराम सगोत जार्‍यो प्रबल बलि की अग्नि जू॥
तेहि बेर तबही सकल क्षत्रिन मारि मारि बनाइ कै।
इक बीस बेरन दई विप्रन रुधिर-जल अन्हवाइ कै॥
वह रावरे पितु करी पत्नी तजी विप्रन थूँकि कै।

अरु कहत हैं सब रावणादिक रहे ता कहँ ढूँढि कै॥
यहि लाज मरियत ताहि तुम सों भयो नातो नाथ जू।
अब और मुख निरखैं न ज्यों त्यों राखियो रघुनाथ जू॥❀

६

नीकी घनी गुननारि निहारि नेवारि तऊ अँखिया ललचाती।
जान अजानन जोरति दीठि बसीठि के ठौरन औरन हाती॥
आतुरता पिय के जिय की लखि प्यारी 'प्रवीन' वहै रसमाती।
ज्यों ज्यों कछू न बसाति गोपाल की त्यों त्यों फिरै घर में मुसुकाती॥

७

सैन कियो उर सों उर लाय कै पानि दुहूँ कुच संपुट कीने।
कोटि उपाय उपाय सखीनि भुराइ भुराइ बिसासिनि दीने॥
देखि कला कल प्यारो 'प्रवीन' सुबीन भयो सुख नैननि लीने।
नेक कपोलन आँगुरी लाय कै दुःख दुराह महा रस भीने॥

८

मान कै बैठी है प्यारी 'प्रवीन' सो देखे बनै नहीं जात बनायो।
आतुर ह्वै अति कौतुक सों उत लाल चले अति मोद बढ़ायो॥

❀ उपर्युक्त सात पद्य केशव की रामचंद्रिका के हैं। केशवदास ने यह गारी राम के विवाह की कथा लिखते समय प्रवीणराय से लिखाई थी; ऐसा स्वर्गीय लाला भगवानदीन जी का कहना है।

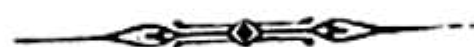
जोरि दोऊ कर ठाढ़े भये करि कातर नैन सों सैन बतायो।
देखत वेंदी सखी की लगी मित हेर्यो नहीं इत यों बहरायो॥

९

दोहा लाल कह्यो सुन्यो, चित दै नारि नवीन।
ताको आधो बिंदु युत, उत्तर दियो 'प्रबीन'॥

१०

चिबुक कूप, मद डोल† तिल, बँधत अलक की डोरि।
दृग भिस्ती, हित-ललकि तित, जल-छवि भरत झकोरि॥*



* ये पाँच छंद पं० कृष्णविहारी मिश्र के छोटे भाई पं० विपिनविहारी मिश्र ने भेजे हैं।

† पानी भरने का डोल।

दयाबाई

दयाबाई महात्मा चरनदास की शिष्या थीं। प्रसिद्ध सहजोबाई इनकी गुरु बहन थीं। ये चरनदास जी स्वजातीय थीं। इनका भी जन्म चरनदास जी के जन्म स्थान मेवाड़ के डेहरा नामक गाँव में हुआ था। ये अपने गुरू जी के साथ दिल्ली में आकर रहने लगीं और भगवद्-भक्ति में अपना समय बिताकर वहीं अपना शरीर छोड़ा। सन्तबानी के सम्पादक का कहना है कि संवत् १७५० और सम्वत् १७७५ के बीच के किसी सम्वत् में इनका जन्म होना पाया जाता है।

इनकी 'दयाबाई की बानी' नामक एक पुस्तक सन्तबानी-पुस्तक-माला में प्रयाग के बेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित हुई है। जिसमें 'दया-बोध' और 'विनय मालिका' नामक पुस्तकें संग्रहीत हैं।

दयाबोध, सम्वत् १८१८ वि० में बना। दयाबोध के अन्त में यह दोहा लिखा है—

संवत ठारा सै समै, पुनि ठारा गये बीति।
चैत सुदी तिथि सातवीं, भयो ग्रन्थ सुभ रीति ॥

इसमें 'गुरुमहिमा' 'प्रेम के अंग' 'सूर का अंग' 'सुमिरन का अंग' शीर्षकों द्वारा अनेक दोहे और पदों का संग्रह है। इसमें दयाबाई जी ने अपने गुरु चरनदास जी की बड़ी महिमा गाई है। इनके सभी पद भक्ति-रस से परिपूर्ण हैं।

इस ग्रन्थ के पदों में दयाबाई जी ने अपने नाम दया, दयादास और दयाकुँवरि रखे हैं। पता नहीं ये तीनों नाम दयाबाई के ही हैं या इनमें से दो और किसी के। सम्भव है किसी 'दयादास' नामक साधु सज्जन ने अपने पद इस पुस्तक में रख दिये हों ? क्योंकि दयाबाई जी का अपनी रचना में तीन प्रकार से नाम का प्रयोग करना कुछ असम्भव सा जान पड़ता है। 'दया कुँवरि' नाम से यह प्रगट होता है कि शायद ये किसी राज-घराने की स्त्री रहीं होंगी। क्योंकि 'कुँवरि' का प्रायः राजकुमारियों के नाम के साथ प्रयोग होता है। कुछ भी हो दयाबाई जी परम भक्त और भगवद्-भक्ति-परायणा थीं। उन्होंने अपनी बानी में प्रेम की व्याख्या सुन्दर रूप से की है।

'मिश्रबंधु-विनोद' में दयाबाई का नाम नहीं दिया गया। कविता-कौमुदी-कार ने भी दयाबाई के सम्बन्ध में थोड़ा ही सा परिचय दिया है। सन्तबानी के सम्पादक ने इनकी एक दूसरी पुस्तक 'विनय-मालिका' नाम से प्रकाशित की है। किन्तु हमारी समझ में यह पुस्तक दयाबाई जी की रची हुई नहीं है। मालूम होता है यह चरनदास जी के शिष्य और दयाबाई के गुरु भाई किसी 'दयादास' नामक सज्जन की रचना है। इसी 'दयादास' के नाम से अनेक पद दयाबाई जी के 'दयाबोध' में भी पाये जाते हैं। दयाबाई जी के 'दया' और 'दया कुँवरि'' नाम से जितने पद मिले हैं उन्हें हम उन्हीं के रचे हुए मानते हैं। 'विनय-मालिका' और 'दयाबोध' की कतिपय

रचनाओं की शैली में बड़ा अन्तर है। इसीलिये हम, दयाबाई जी की रची हुई यह पुस्तक 'विनय-मालिका' भी है, अप्रमाणिक समझते हैं।

दयाबाई की कविता मधुर और अत्यन्त भक्ति से परिपूर्ण है। इनकी कविता के कुछ नमूने हम नीचे देते हैं:—

१

जो पग धरत सो दृढ़ धरत, पग पाछे नहिं देत।
अहंकार को मार कर, राम रूप जस लेत॥
तात मात तुम्हरे गये, तुम हूँ भये तयार।
आज काल में तुम चलो, दया होहु हुसियार॥
बड़ो पेट है काल को, नेक न कहूँ अघाय।
राजा-रानी-छत्रपति, सब को लीले जाय॥
छिन उठूँ छिन गिरि परूँ, राम दुखी मन मोर।
बौरी ह्वै चितवत फिरूँ, हरि आवें केहि ओर॥
दया दया करि देत हैं, श्रीहरि दर्शन सोय।
प्रेम पुंज प्रगटै जहाँ, तहाँ प्रगट हरि होय॥
साधू सिंह समान हैं, गरजत अनुभव ज्ञान।
करम भरम सब भजि गये, दया दुखो अज्ञान॥
दया दान अरु दीनता, दीनानाथ दयाल।
हिरदे शीतल दृष्टि सम, निरखत करैं निहाल॥
काम क्रोध मद लोभ नहिं, षट विकार करि हीन।
पंथ कुपंथ न जानहीं, ब्रह्मभाव रस-लीन॥

साधु संग महिमा अधिक, गावत शेष महेश।
ये जग में दाता बड़े, देत दान उपदेश ॥
दया दया करि के कह्यो, सतगुरु मों सों भाख।
नासा आगे दृष्टि धरि, स्वाँसा में मन राख॥
ताप-हरन सब सुख करन, दया करत परनाम।
चरनदास गुरु देव जू, ब्रह्म-रूप सुख-धाम॥
चरनदास गुरु देव हैं, दया रूप भगवान।
इंद्रादिक जो देवता, देत तिन्हैं सम्मान॥
जहाँ जाय मन मिटत हैं, ऐसो सत्त सरूप।
अचरज देखि दया करै, वन्दत भाव अनूप॥
दया कुँवरि या जगत में, नहीं आपनो कोय।
स्वारथ बंदी जीव है, राम नाम चित जोय॥
जैसो मोती ओस को, तैसो यह संसार।
बिनसि जाय छिन एक में, दया प्रभू उर धार॥
विरह व्यथा सों है बिकल, दरसन कारन पीव।
दया दया की लहर कर, क्यों हलकाओ जीव॥
प्रेम पंथ है अटपटो, कोइ न जानत वीर।
कै मन जानत आपनो, कै लागी जेहिं पीर॥
त्रिभुवन की संपति दया, तृन सम जानत साध।
हरि रस माते जे रहैं, तिनको मतो अगाध॥
प्रेम मगन गदगद वचन, पुलकि रोय सब अंग।

पुलकि रह्यो मन रूप में, दया न हो चित भंग ॥
रे मन तू निकसत नहीं, है तू बड़ो कठोर।
सुन्दर स्याम सरूप बिन, क्यों जीवत निस भोर ॥
दया कुँवरि या जगत में, नहीं रह्यो थिर कोय।
जैसो बास सराय को, तैसो यह जग होय ॥
तीन लोक नौ खंड के, लिए जीव सब हेर।
दया काल परचंड है, मारै सब को घेर ॥
छांड़ों विषय विकार को, राम नाम चितलाव।
दया कुँवरि या जगत में, ऐसो काल बिताव ॥
बिन रसना बिन माल कर, अंतर सुमिरन होय।
दया दया गुरुदेव की, बिरला जानै कोय ॥
वही एक व्यापत सकल, ज्यों मनिका में डोर।
थिरचर कीट पतंग में, दया न दूजो ओर ॥
चरनदास गुरुदेव ने, कीन्ही कृपा अपार।
दया कुँवरि पर दया करि, दियो ज्ञान निज सार ॥
पिय को रूप अनूप लखि, कोटि भानु उँजियार।
दया सकल दुख मिटि गयो, प्रगट भयो सुख-सार ॥
यहां मोह की नींद में, सोवत सब संसार।
दया जगी गुरु-दया सों, ज्ञान भानु उँजियार ॥
प्रथम पैठि पाताल में, धमकि चढ़ै आकाश।
दया सुरति नटिनी भई, बाँधि बरत निज स्वाँस ॥

२

ज्ञान-रूप को भयो प्रकास,
भयो अविद्या तम को नास।
सूझ पर्‍यो निज रूप अभेद,
सहजै मिट्यो जीव को खेद॥
जीव ब्रह्म अन्तर नहिं कोय,
एकहिं रूप सर्ब घट सोय।
विमल रूप व्यापक सब ठाईं,
अरध उरध मधि रहत गुसाईं॥
जग-बिवर्त सों न्यारा जान,
परम-द्वैव रूप निरबान।
निराकार निरगुन निरबासी,
आदि निरंजन अज अविनासी॥



कविरानी

बूँदी-राज्य के आश्रय में बहुत से कवि रहते आये हैं और रहते हैं। राव राजा बुधसिंह जी के आश्रय में कविराज लोकनाथ चौबे नाम के एक कवि रहते थे। इनकी स्त्री कविरानी जी भी सुकवि थीं। राव राजा बुधसिंह जी संवत् १७५२ से सम्वत् १८०५ तक वर्तमान थे। यही समय कविरानी जी का भी माना जा सकता है।

कविरानी जी के पति कविराज लोकनाथ चौबे एक अच्छे कवि थे। इन्हीं की सत्संग से कविरानी जी को भी कविता करने का अच्छा अभ्यास हो गया था। ये कविता अपने पति के समान सरल, सुन्दर और सरस करती थीं।

एक बार कविराज लोकनाथ चौबे राव राजा बुधसिंह के साथ दिल्ली गये। राव राजा बुधसिंह ने इन्हें किसी कारण से अटक (सिंध नदी) के उस पार जाने का हुक्म दिया। कविरानी जी ने जब सुना कि राव राजा बुधसिंह ने उन्हें अटक-पार जाने का हुक्म दिया है तो वह अत्यन्त दुखी हुईं; क्योंकि वे बड़ी धार्मिक रमणी थीं। उन्हें यह डर था कि यदि कविराज जी अटक-पार जावेंगे तो वहाँ कहीं उनका धर्म्म न भ्रष्ट हो जाय! क्योंकि वहाँ अधिकतर मुसलमानों का निवास था। कविरानी जी ने अपने पति कविराज जी को एक कवित्त लिख भेजी।

कविराज जी ने वह कवित्त राव राजा बुधसिंह जी को सुनाया। बुधसिंह जी को वह कवित्त बहुत पसन्द आया।

कविरानी जी ने कोई पुस्तक लिखी थी या नहीं, इसका अभी तक कुछ पता नहीं चला। इनके बनाये हुए कुछ ही छंद सुने जाते हैं। बूँदी के वर्तमान कविराज रामनाथ सिंह से भी हमने पूछ-ताछ की थी किन्तु उन्होंने भी दो छंदों के सिवा और कोई छंद नहीं बताया। वे छंद ये हैं :—

१

मैं तो यह जानी हो कि लोकनाथ पति पाय,
संग ही रहौंगी अरधङ्ग जैसे गिरजा।
एते पै बिलच्छण ह्वै उत्तर गमन कीन्हों,
कैसे कै मिटत ये वियोग विधि सिरजा॥
अब तो जरूर तुम्हें अरज करे ही बने,
वे हू द्विज जानि फरमाय हैं कि फिरजा।
जो पै तुम स्वामी आज अटक उलंघ जैहौ,
पाती माहिं कैसे लिखूं मिश्र मीर मिरजा॥

२

विनती करहुगे जो वीर राव राजाजी सों,
सुनत तिहारी बात ध्यान में धरहिंगे।
पाती 'कविरानी' मोरी उनहिं सुनाय दीन्हों,
अवसि बिरह-पीर मन की हरहिंगे॥

वे हैं बुद्धिमान सुखदान बड़भागी बड़े,
धरम की बात सुन मोद सों भरहिंगे।
मेरी बात मानौ राव राजा सों अरज करौ,
लौटन को घर फरमाइस करहिंगे।



रसिकविहारी *

रसिकविहारी जी, महाराज नागरीदासजी की दासी थीं। इनका असली नाम बनीठनी जी था। ये हमेशा महाराज की सेवा में रहा करती थीं। महाराज की संगति से इन्हें भी कविता करने का अच्छा अभ्यास हो गया था। उन्होंने कविता का कोई ग्रन्थ नहीं रचा। 'नागर-समुच्चय' नामक ग्रन्थ में, जो महाराज नागरीदासजी की कविताओं का संग्रह है, रसिकविहारी जी की भी कवितायें संग्रहीत हैं। इस ग्रन्थ में अनेक स्थानों पर नागरीदासजी की कविता के साथ ही साथ 'आनकवि कृत' इस नाम से इनके बहुत से पद छपे हुए हैं।

'नागर-समुच्चय' ज्ञान-सागर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित हुआ है। वह अत्यन्त अशुद्ध ग्रंथ है। इस ग्रन्थ में छपे हुए रसिकविहारी जी के पदों से यह प्रगट होता है कि ये बड़ी धर्मपरायणा और कृष्ण-भक्त थीं†। इनका देहान्त महाराज नागरीदासजी की मृत्यु के कुछ पीछे आषाढ़ सुदी

---

*इसी नाम के एक दूसरे कवि हिन्दी संसार में विख्यात हैं। पाठक उनसे परिचित ही होंगे।

† सूरदास की प्रचलित की हुई पद-शैली का प्रचार इतना अधिक हो गया था कि वह राजपूताना, मारवाड़, उत्तरी गुजरात, पूर्वी पंजाब औरयुक्तप्रांत में भी अपनाई गई थी।

१५ संवत् १८२२ में हुआ था। 'नागर-समुच्चय' में इनके जो पद छपे हुए हैं उनमें से कुछ चुने हुए पद यहाँ दिये जाते हैं :—

१

रतनारी हो थारी आँखड़ियाँ।
प्रेम छकी रस-बस अलसाणी जाणि कमल की पाँखणियाँ॥
सुन्दर रूप लुभाई गति मति हौं गई ज्यूँ मधु माँखड़ियाँ।
'रसिकबिहारी' वारी प्यारी कौन बसी निसि काँखड़ियाँ॥

२

हो झालो दे छे रसिया नागर पनाँ।
साराँ देखें लाज मराँ छाँ आवाँ किण जतनाँ॥
छैल अनोखो क्यों कह्यो मानै लोभी रूप सनाँ।
'रसिकबिहारी' नणद बुरी छै हो लाग्यो म्हारो मनाँ॥

३

पावस ऋतु बृन्दावन की दुति दिन दिन दूनी दरसै है।
छबि सरसै है।
लूम झूम सावन घनो घन बरसै है॥
हरिया तरवर सरवर भरिया जमुना नीर कलोलै है।
मन मोलै है।
प्यारी जी रो बाग़ सुहावणो मोर बोलै है॥
आभा आया बीच चिमंकै जलधर गहरो गाजै है।
रितु राजै है।

स्यामा सुन्दर मुरली रली बन बाजै है ॥
'रसिकविहारी' जी रो भीज्यों पीताम्बर प्यारी जी री चूनर सारी है।
सुखकारी है।
कुंजा कुंजा भूल रमा पिय प्यारी है ॥

४

कैसे जल लाऊँ मैं पनघट जाऊँ।
होरी खेलत नंद लाडिलो क्यों कर निवहन पाऊँ ॥
वे तो निलज फाग मदमाते हौं कुल-बधू कहाऊँ।
जो छुवें अंचल 'रसिकविहारी' धरती फार समाऊँ ॥

५

कुंज पधारो रंग-भरी रैन।
रँग भरी दुलहिन रँग भरे पीया स्यामसुँदर सुख दैन ॥
रँग-भरी सेज रची जहाँ सुन्दर रँग-भर्यो उलहत मैन।
'रसिकबिहारी' प्यारी मिलि दोउ करो रंग सुख-चैन ॥

६

आज बरसाने मंगल गाई।
कुँवरलली को जनम भयो है घर घर वजत वधाई ॥
मोतिन चौक पुरावो गावो देहु असीस सुहाई।
'रसिकबिहारी' की यह जीवनि प्रगट भई सुखदाई ॥

७

आज बधावो वृषभान के धाम।
मंगल-कलश लिए आवत हैं गावत ब्रज की बाम॥
कीरति कैं की रति प्रगटी है रूप धरें अभिराम।
'रसिकबिहारी' की यह जोरी हौंनी राधा नाम॥

८

मैं अपनो मन-भावन लीनौं, इन लोगन को कहा न कीनौं।
मन दै मोल लयो री सजनी, रत्न अमोलक नन्ददुलारे॥
नवल लाल रँग भीनो।
कहा भयो सब क मुख मोरे, मैं पायो पीव प्रवीनौं।
'रसिकबिहारी' प्यारो प्रीतम, सिर बिधनौं लिख दीनौं॥

१०

धीरे झूलो री राधा प्यारी जी।
नवल रँगीली सबै झुलावत गावत सखियाँ सारी जी॥
फरहरात अंचल चल चंचल लाज न जात सँभारी जी।
कुंजन ओर दुरे लखि देखत प्रीतम 'रसिकबिहारी' जी॥

११

ये बाँसुरियावारे ऐसो जिन बतराय रे।
यों न बोलिए! अरे घर बसे लाजनि दबि गई हाय रे॥
हौं धाई या गैलहिं सों रे! नैन चल्यो धौं जाय रे।
'रसिकबिहारी' नाँव पाय कै क्यों इतनो इतराय रे॥

१२

कै तुम जाहु चले जिन धरो मेरी सारी।
सुन श्याम सुन श्याम सौहैं तिहारी॥
याही बेर छिनाइ लेउँ कर ते पिचकारी।
अब कुछ मोपै सुन्यो चहत हौ गारी॥
घर में सीख्यो यह ढंग हे रसिकबिहारी॥

१३

भीजै म्हाँरी चूनरी हो नँदलाल।
डारहु केसर—पिचकारी जनि हा! हा! मदन गुपाल॥
भीज बसन उघरो सो अँग अँग बड़ो निलज यह ख्याल।
'रसिकबिहारी' छैल निडर थे पाले को जंजाल॥

१४

दोहा—गहगह साज समाज-जुत, अति सोभा उफनात।
चलिबे को मिलि सेज-सुख, मंगल-मुदमय-रात॥
रही मालती महकि तहँ, सेवत कोटि अनंग।
करो मदन मनुहार मिलि, सब रजनी रस-रंग॥
चले दोउ मिलि रसमसे, मैन रसमसे नैन!
प्रेम रसमसी ललित गहि, रंग रसमसी रैन॥
'रसिकबिहारी' सुख सदन, आए रस सरसात।
प्रेम बहुत, थोरी निसा, ह्वै आयो परभात॥

१५

उड़ि गुलाल-घूँधर गई, तनि रह्यो लाल बितान।
चौंरी चारु निकुंज में, व्याह फाग सुख-दान॥
फूलन के सिर सेहरा, फाग रँग मँगे बेस।
भाँवर ही में चलत दोउ, लै गति सुलभ सुदेस॥
भीज्यो केसर—रंग सों, लगे असन पर पीत।
कालै चांचर चौक में, गहि बँहियाँ दोउ मीत॥
रच्यो रंगीली रैन में, होरी के बिच व्याह।
बनी बिहारन रसमयी, 'रसिकबिहारी' नाह॥

१६

होरी होरी कहि बोलै सब ब्रज की नारि।
नंदगाँव-बरसानो हिलि मिलि गावत इत उत रस की गारि॥
उड़त गुलाल अरुण भयो अंबर चलत रंग पिचकारि कि धारि।
'रसिकबिहारी' भानु-दुलारी नायक सँग खेलें खेलवारि॥

१७

बाजैं आज नंद-भवन बधाइयाँ। ❀
गह गह आँनन भवन भयो है गोपी सब मिलि आइयाँ॥
महरिन गावहिं कै भयो सुत है फूली अंगन माइयाँ।
'रसिकबिहारी' प्राननाथ लखि देत असीस सुहाइयाँ॥

❀ यह ब्रज-रूप है।

ब्रजदासी

ब्रजदासी जी महारानी बाँकावती के नाम से प्रसिद्ध थीं। ब्रज-दासी इनका उपनाम था। इनका असली नाम महारानी ब्रजकुँवरि बाई था। ये जयपुर राज्य में लिवाण के कछवाहा राजा आनंदराम जी की पुत्री थीं। लिवाण में महाराजा भगवानदासजी एक सुप्रसिद्ध और वीर पुरुष हो गये हैं। अकबर बादशाह ने उन्हें कई बार अपने चंगुल में फँसाना चाहा किन्तु वे अकबर के चक्कर में न आये। उन्होंने दो-चार स्थानों पर अकबर का अपमान भी किया था इससे अकबर बादशाह उन्हें बाँका कहा करता था। इसीसे उस वंश में जितने महाराजा हुए वे बाँकावत के नाम से प्रसिद्ध हो गये और महारानियाँ बाँकावती के नाम से पुकारी जाने लगीं।

ब्रजदासी जी का जन्म सम्वत् १७६० वि० के लगभग हुआ होगा क्योंकि इनका विवाह कृष्णगढ़ के महाराजा राजसिंह से संवत् १७७६ ई० में वृन्दावन में हुआ। महाराज राजसिंह की पहली रानी का देहान्त हो चुका था। ब्रजदासी जी दूसरी रानी थीं। महाराज इनका बड़ा आदर करते थे। इनके दो संताने थीं, एक पुत्र और दूसरी कन्या। पुत्र का नाम वीरसिंह और कन्या का नाम सुन्दर-कुँवरिबाई था जो बड़ी प्रवीण, भक्त और सुकवियत्री हो गई हैं।

महारानी व्रजदासी जी की कविता में बड़ी रुचि थी। ये भागवत और प्रेम-सागर में कृष्ण भगवान की सारी कथायें पढ़ा करती थीं। इनके हृदय में भागवत के प्रति इतना अनुराग उत्पन्न हुआ कि इन्होंने संस्कृत श्लोकों का पद्यों में उल्था कर डाला, जो आज व्रजदासी भागवत के नाम से प्रसिद्ध है।

व्रजदासी कृत भागवत बड़ी सुन्दर पुस्तक है। भक्त लोग उसका बड़ा आदर करते हैं। उसकी कविता निर्दोष और भावपूर्ण है। इसमें दोहों और चौपाइयों का बाहुल्य है*। इसकी भाषा व्रजभाषा और बैसवाड़ी का मिश्रित रूप है। इसमें कहीं कहीं राजपूतानी भाषा के भी शब्द आ गये हैं। इनकी मृत्यु-सम्वत् का ठीक ठीक पता नहीं है। हम इनकी कुछ रचनायें उद्धृत करते हैं।

१

नमो नमो श्री हंस नमो सनकादि रूप हरि।
नमो नमो श्री नार्द देव ऋषि जग को सम सरि॥
नमो नमो श्री व्यास नमो शुकदेव सुस्वामी।
नमो परीक्षित राज ऋषिन में ज्ञानी नामी॥

---

* दोहों और चौपाइयों में प्रबन्ध-काव्य के लिखने की शैली जायसी ने प्रारंभ की थी। इसको प्रबलता महात्मा तुलसीदास ने दी। कृष्ण-काव्य में भी उसी शैली का प्रयोग किया गया है।

नमो नमो श्री सूत जू, नमो नमो सोनक सकल।
नमो नमो श्री भागवत, कृष्ण-रूप छिति में अटल ॥

२

श्री गुरु-पद बन्दन करूँ, प्रथमहिं करूँ उछाह।
दम्पति गुरु तिहुँ की कृपा, करो सकल मो चाह ॥
बारबार बन्दन करौं, श्रीवृषभानु कुँवारि।
जय जय श्री गोपाल जू, कीजै कृपा मुरारि ॥
बन्दौं नारद, व्यास, शुक, स्वामी श्रीधर संग।
भक्ति कृपा बन्दो सुखद, फलै मनोरथ रंग ॥
कियो प्रगट श्रीभागवत, व्यास-रूप भगवान।
यह कलिमल निरवार-हित, जगमगात ज्यों भान ॥
कह्यो चहत श्रीभागवत, भाषा बुद्धि प्रयान।
कर गहि मोहिं समर्थ हरि, देहैं कृपा-निधान ॥

३

व्यास भागवत आरँभ मौंही, प्रभु को आन हृदय सरसाहीं ॥
ऐसो बचन कहत सुनि आन, प्रभु सों परम प्रेम उर ठान ॥
परम प्रेम परमेश्वर स्वामी, हम तिहिं ध्यान धरत हिय मानी।
यहै त्रिविध झूठो संसारा, भांति भांति बहु विधि निरधारा ॥
अरु साँचों सो देत दिखाई, सो सत्यता प्रभुहिं की छाई।
जैसे रेत चमक मृग देखै, जल के भ्रम मन माहिं सपेखै ॥
जल-भ्रम झूठ रेत ही सत्य, भ्रम सों दीख परत जल छत्य।

जल-भ्रम कांच माहिं ज्यों होत, सो झूठो सति कांच उदोत ॥
यों झूठो सबही संसारा, साँचो हौ स्वामी करतारा।
प्रभु में नहिं माया सम्बन्ध, न्यारो हरि ते माया बंध।
उपजन, पालन, प्रलय सँसारा, होत सबै प्रभु से विस्तारा ॥
व्यापत ह्वै रह्यो प्रभु सब ठौर, जगमगात जग में जग-मौर।
सबहिं वस्तु को प्रभु ही ज्ञाता, आप प्रकाश रूप सुखदाता ॥
हृदय बीच विधि के जिन आय, दीने चारों वेद पढ़ाय।
जिन वेदन में बड़े पंडित, मोहित होइ रहे गुन मंडित ॥

४

अवै व्यास जू कहत हैं, यहै भागवत माँहि।
कर्म्म सबै निहकाम अब, वर्णन करि सुख पाँहि ॥



साईं

गिरधर कविराय हिन्दी के परम प्रसिद्ध कवि हो गये हैं। इनका जन्म लगभग सं० १७७० में माना जाता है। गिरधर कविराय ने नीति-व्यवहार की कुंडलियां बड़ी उत्तम बनाई हैं। कहा जाता है कि इन्होंने जितनी कुंडलियों के बनाने का संकल्प किया था उतनी बनाने के पूर्व ही इनकी मृत्यु हो गई। उनके इस संकल्प को पूरा करने के लिए उनकी स्त्री ने शेष कुंडलिया बनायीं। विद्वानों का कहना है कि जिन कुंडलियों के प्रारम्भ में 'साईं'' शब्द है वे गिरधर कविराय की स्त्री की बनाई हुई हैं। पता नहीं यह बात कहाँ तक सही है किन्तु तो भी यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि जिन कुंडलियों के प्रारम्भ में 'साईं'' शब्द है वे गिरधरजी की रचित नहीं हैं। क्योंकि गिरधर जी को साईं शब्द-युक्त तद् विहीन दो प्रकार की कविता बनाने की क्या आवश्यकता थी? इससे यही मानना पड़ता है कि ये कुंडलियाँ इनकी स्त्री की ही बनाई हुई हैं।※

※ कुंडलियाँ लिखने की पद्धति को प्रौढ़ता एवं प्रचुरता जिन कविवरों के द्वारा मिली है उनमें गिरधर जी का स्थान बहुत ही ऊँचा और माननीय है। उन्होंने केवल कुंडलियाँ ही लिखी हैं, और उसका प्रभाव इनकी स्त्री पर पड़ना अवश्यम्भावी था।

गिरधर कविराय और उनकी स्त्री की रचनायें बिल्कुल मिलती जुलती हैं। कविराय का जन्म जिस संवत् के लगभग माना जाता है उसी संवत् के दो-चार वर्ष बाद इनकी स्त्री का भी जन्म हुआ होगा।

इनका जन्मस्थान अवध का कोई गाँव जान पड़ता है क्योंकि कुंडलियों की भाषा में अधिकांश शब्द अवध के आस पास की बोल-चाल के हैं। इसकी रचनाओं से ऐसा मालूम होता है कि यह उर्दू और फ़ारसी भी अच्छी तरह जानती थीं। कुंडलियों का प्रचार ग्रामों में बहुत है। इनकी सैकड़ों कुंडलियाँ लोगों को कण्ठस्थ हैं। कुंडलियों में नीति-व्यवहार-कुशलता और विनोद की काफ़ी सामग्री विद्यमान है। हम यहाँ इनकी स्त्री की बनाई हुई कुछ चुनी हुई कुंडलियाँ उद्धृत करते हैं :—

१

साईं ! बेटा-बाप के बिगरे भयो अकाज।
हरिनाकस्यप कंस को गयउ दुहुन को राज॥
गयउ दुहुन को राज बाप बेटा में बिगरी।
दुश्मन दावागीर हँसे महिमण्डल नगरी॥
कह गिरधर कविराय युगन ते यह चलि आई।
पिता पुत्र के बैर नफ़ा कहु कौने पाई॥

२

साईं बैर न कीजिए गुरु पंडित कवि यार।
बेटा बनिता बौरिया यज्ञ-करावनहार॥

यज्ञ-करावनहार राज-मंत्री जो होई।
विप्र, परोसी, वैद्य आपकी तपै रसोई॥
कह गिरधर कविराय युगन ते यह चलि आई।
इन तेरह सों तरह दिये बनि आवे साईं॥

३

साईं ऐसे पुत्र ते बाँझ रहे बरु नारि।
बिगरे बेटा बाप से जाय रहे ससुरारि॥
जाय रहे ससुरारि नारि के हाथ बिकाने।
कुल के धर्म्म नसाय और परिवार नसाने॥
कह गिरधर कविराय मातु झंखे वहि ठाईं।
अस पुत्रनि नहिं होय बाँझ रहतिउँ बरु साईं॥

४

साईं पुरपाला पर्यो आसमान ते आय।
अंधहि पंगुहिं छोड़ि कै पुरजन चले पराय॥
पुरजन चले पराय अंध एक मंत्र विचार्यो।
पंगुहिं लीन्हेउँ कंध पीठ वाके पगु धार्यो॥
कह गिरधर कविराय सुमति ऐसी चलि आई।
बिना सुमति को रंक पंक रावन भो साईं॥

५

साईं सत्य न जानिए खेलि शत्रु सँगसार।
दाव परे नहिं चूकिये तुरत डारिये मार॥

तुरत डारिये मार नरद कच्ची करि दीजै।
कच्ची होय तो होय मार जग में जस लीजै॥
कह गिरधर कविराय युगन याही चलि आई।
कितनो मिलै घिघाय शत्रु को मारिय साईं॥

६

साईं तहाँ न जाइये जहाँ न आपु सुहाय।
बरन बिषै जानै नहीं गदहा दाखै खाय॥
गदहा दाखै खाय गऊ पर दागि लगावै।
सभा बैठि मुसुकाय यही सब नृप को भावै॥
कह गिरधर कविराय सुनो रे मेरे भाई।
तहाँ न करिये बास तुरत उठि आइय साईं॥

७

साईं सब संसार में मतलब को व्यवहार।
जब लगि पैसा गाँठ में तब लगि ताको यार॥
तब लगि ताको यार यार सँग ही सँग डोलै।
पैसा रहा न पास यार मुख ते नहिं बोलै।
कह गिरधर कविराय जगत यह लेखा भाई।
बिना बेगरजी प्रीति यार बिरला कोई साईं॥

८

साईं जग में योग करि युक्ति न जानै कोय।
जब नारी गौने चली चढ़ी पालकी रोय॥

चढ़ी पालकी रोय न जाने कोई जिय की।
रही सुरत तन छाय सुछतियाँ अपने हिय की।
कह गिरधर कविराय अरे! जनि होहु अनारी।
मुँह से कहै बनाय पेट में बिनवै नारी॥

९

साईं घोड़े अछत ही गदहन पायो राज।
कौआ लीजै हाथ में दूर कीजिए बाज॥
दूर कीजिए बाज राज पुनि ऐसो आयो।
सिंह कीजिए कैद स्यार गजराज चढ़ायो॥
कह गिरधर कविराय जहाँ यह चूकि बड़ाई।
तहाँ न कीजिय भोर साँझ उठि चलिये साईं॥

१०

साईं अवसर के परे को न सहे दुख द्वन्द।
जाय बिकाने डोम घर वे राजा हरिचन्द॥
वे राजा हरिचन्द करी मरघट रखवारी।
फिरे तपस्वी भेष धरे अर्जुन बलधारी॥
कह गिरधर कविराय तपे वह भीम रसोंईं।
को न करै घटि काम परे अवसर के साईं॥

११

साईं कोउ न विरोधियों छोट बड़ो इक भाय।
ऐसे भारी वृत्त को कुल्हरी देत गिराय॥

कुल्हरी देत गिराय मार के जमी गिराई।
टूक टूक के काटि समुद में देत वहाई॥
कह गिरधर कविराय फूटि जिहिं के घर जाई।
हरनाकुस अरु कंस गये वलि रावन साईं॥

१२

साईं अपने चित्त की भूलि न कहिए कोय।
तव लग मन में राखिये जब लग काज न होय॥
जव लग काज न होय भूलि कबहूँ नहिं कहिये।
दुर्जन तातो होय आप सियरे ह्वै रहिये॥
कह गिरधर कविराय वात चतुरन के ताईं।
करतूती कहि देत आप कहिए नहिं साईं॥

१३

साईं अपने भ्रात को कबहुँ न दीजै त्रास।
पलक दूर नहिं कीजिए सदा राखिये पास॥
सदा राखिये पास त्रास कबहूँ नहिं दीजै।
त्रास दिये लंकेस ताहि की गति सुन लीजै॥
कह गिरधर कविराय राम सों मिलियो जाई।
पाय विभीषण राज लंकापति वाज्यो साईं॥

१४

साईं नदी समुद्र को मिलि वड़प्पनि जानि।
जाति नास भो मिलत ही मान-महत की हानि॥

मान-महत की हानि कहो अब कैसी कीजै।
जल खारा होइ गयो ताहि कहु कैसे पीजै॥
कह गिरधर कविराय कच्छ औ मच्छ सकुचाई।
बड़ी फजीहत होय तबै नदियन की साईं॥

१५

साईं समय न चूकिये यथा शक्ति सनमान।
को जानै को आइ है तेरी पौरि प्रमान॥
तेरी पौरि प्रमान समय असमय तकि आवै।
ताको तू मन खोलि अंक भरि कंठ लगावै॥
कह गिरधर कविराय सबै यामें सधि जाई।
शीतल जल फल फूल समय जनि चूकौ साईं॥

१६

साईं ऐसी हरि करी बलि के द्वारे जाय।
पहिले हाथ पसारि कै बहुरि पसारे पाय॥
बहुरि पसारे पाय कहो राजा न बतायो।
भूमि सबै हरि लई बाँधि पाताल पठायो॥
कह गिरधर कविराय राम राजन के ताईं।
छल बल कर प्रभु मिलै ताहि को तुष्टे साईं॥

१७

साईं अगर उजार में जरत महा पछताय।
गुन गाहक कोऊ नहीं गीत सुबास सुहाय॥

गीत सुवास सुहाय सून बन कोऊ नाहीं।
कै गीदड़ कै हिरन सुतौ कछु जानत नाहीं॥
कह गिरधर कविराय बड़ा दुख यहै गुसाईं।
अगर आक की राख भई मिलि एकै साईं॥

१८

साईं हंसन आप ही बिनु जल सरवर दास।
निर्जल सरवर ते डरैं पच्छी पथिक उदास॥
पच्छी पथिक उदास छाँह विश्राम न पावैं।
जहाँ न फूलत कमल भौंर तहँ भूलि न आवैं॥
कह गिरधर कविराय जहाँ यह बूझि बड़ाई।
तहाँ न करिये साँझ प्रात ही चलिये साईं॥

१९

साईं लोक पुकार दे रे मन तू हो रिन्द।
यह यकीन दिल में धरो मैं सबको खाविन्द॥
मैं सबको खाविन्द एक खालक हकताला।
खिलकत है यह फना और हर से पर चाला॥
कह गिरिधर कविराय आपना दुखी दुखाई।
मन खुदाय ला जिसम वाँग हर दम दे साईं॥



प्रतापकुँवरि बाई

प्रतापकुँवरि बाई जी जाखण परगना जोधपुर के भाटी ठाकुर गोयंददासजी की पुत्री और मारवाड़ के महाराजा मानसिंह जी की रानी थीं। चंद्रवंश के यदुकुल क्षत्रियों की अनेक शाखाओं में से भाटी एक प्रबल और प्रसिद्ध शाखा है। भाटियों की भी कई शाखायें हैं। इनमें एक शाखा का नाम रावलोत है। रावलोत शाखा की भी दो शाखायें थीं। देरावरिया रावलोत और जैसलमेरिया रावलोत। श्रीमती प्रतापकुँवरि के पिता गोयंददास जी देरावरिया रावलोत भाटी थे। देरावरिया रावलोतों के मूल पुरुष रावल मालदेव थे। प्रतापकुँवरि के पिता आठवीं पीढ़ी में हुए थे।

महाराज मानसिंह के तेरह रानियाँ थीं जिनमें पांच रानियाँ भाटिया वंश की थीं। देरावरिया के रावल अपने घर की लड़कियों का विवाह राजा-महाराजों के यहाँ करते थे। क्योंकि भाटिया जाति की स्त्रियाँ सुन्दर और दृढ़ होती थीं। महाराजा मानसिंह की पाँच भाटिया रानियों में श्रीमती प्रतापकुँविर बाई तीसरी रानी थीं। प्रतापकुँवरि बाई जी के पिता गोयन्ददास के चार संताने थीं। तीन पुत्र गिरधरदास, अजब सिंह और लछमनसिंह चौथी कन्या श्रीमती प्रतापकुँवरि बाई थीं। किन्तु गिरधरदास जी के कोई संतान न थी। इससे

उन्होंने अपने भाई लक्ष्मणसिंह के बेटे केसरसिंह को गोद ले लिया। केसरसिंह के दो बहने थीं जो महाराजा प्रताप सिंह को ब्याही गईं थीं। एक का देहान्त सम्वत् १९६१ में हो गया और दूसरी रतनकुँवरि बाई थीं जो ईडर की महारानी थीं।

प्रतापकुँवरि जी बाल्यकाल ही से बड़ी प्रवीण और उन्नतिशीला दिखलाती थीं। इनके पिता इनका सम्बन्ध किसी बड़े घर में करने का उद्योग कर रहे थे। उसी समय रामसनेही साधुओं के महंत पूर्णदास जी कारण वश जाखण में आकर रहने लगे। पूर्णदास जी बड़े भक्त और भगवत्-रसिक महंत थे। महंत जी से और गोयंददास जी से बड़ी मित्रता हो गई। गोयंददास जी ने अपना मन्तव्य महंत पूर्णदास को सुनाया। पूर्णदास जी ने कहा कि बाई जी का भाग्य अति उत्तम है आप चिंता न कीजिए। पहले इनके पढ़ाने-लिखाने का प्रबन्ध कीजिए। महंत जी ने बाई जी के लिखाने-पढ़ाने का विशेष उद्योग किया। साधु-सत्संग में पड़ कर बाई जी भक्ति-भाव में लिप्त रहने लगीं। उन्होंने महंत पूर्णदास को अपना गुरु मान लिया और अंत तक अपने इस गुरु-भाव को निबाहती रहीं। बाई जी के उत्तम विचारों का अधिक श्रेय महंत पूर्णदास जी को ही है।

आपका विवाह मारवाड़ के महाराज मानसिंह के साथ हुआ। इनके कोई संतान नहीं थीं। महाराज मानसिंह का सं० १९०० में देहान्त हो गया। तभी से ये साधु-भाव से रहने लगीं और भगवद्भक्ति में अपना समय बिताने लगीं। महाराजा मानसिंह की मृत्यु के बाद

अहमदनगर के महाराजा तरवतसिंह राज सिंहासन पर विराजमान हुए। तरवतसिंह का व्यवहार प्रतापकुँवरि बाई जी के साथ बहुत उत्तम था।

प्रतापकुंवरि बाई जी को राज्य से कई बड़े बड़े गाँव मिले थे। उसकी सारी आमदनी इन्हीं को दी जाती थी। उस आमदनी से बाई जी अपना काम चलातीं तथा धर्म्म-पुण्य के लिए हज़ारों रुपया दान दिया करती थीं। इनकी कीर्ति इससे वहाँ बहुत हुई। ये श्री रामचंद्रजी की भक्त थीं। इन्होंने मारवाड़ में गुलाब सागर तालाब पर पक्का खिखर-बंध मन्दिर फाल्गुन वदी ६ सं१६०२ में बनवाया और उसमें श्री रामचंद्रजी की मूर्ति स्थापित कराई। पुष्कर में इन्होंने पक्का घाट बनवाया और अपने पतिदेव के इष्टदेव जालंधर जी का मन्दिर आषाढ सुदी १३ सं० १६०४ में बनवाया। जोधपुर के गोल मुहल्ले में एक बहुत बड़ा रामद्वारा अपने गुरुभाई दामोदरदास जी के लिये बनवाया जिनसे इनकी बड़ी प्रतिष्ठा हुई। गुलाब सागर का मन्दिर बहुत उत्तम बना है। इसके बनवाने में बाई जी ने लाखों रुपये खर्च किये थे। मन्दिर में सैकड़ों बहुमूल्य तस्वीरें जड़ी हुई हैं। दान-पुण्य में बाई जी अद्वितीय थीं। जब तक मारवाड़ में इनका बनवाया हुआ यह मन्दिर रहेगा तब तक बाई जी की भी कीर्ति अटल रहेगी।

व्रतों के दिनों में ये सहस्त्रों रुपये दान दे डालती थीं। वैतरणी एकादशी के उपलक्ष में २२००० ब्राह्मणों को दान देती थीं। चारणों और कविता कहने वाले भाटों को भी ये धन देती थीं। चारणों और

भाटों ने इन बाई जी की प्रशंसा में अनेकों कवितायें रची हैं। उनमें से एक दोहा यह है :—

कंजर दे उस कारणे, लाखाँ लाख पसाव।
यह रानी नृप मान री, हेरावरि दरियाव॥

सम्वत् १९२९ में महाराजा तखतसिंह का देहान्त हो गया। महाराज के देहान्त हो जाने पर बाई जी को बड़ा दुःख हुआ। अंत में इन्होंने संसार को असार समझकर श्रीरामचन्द्र जी की भक्ति में मन लगाया। जब इनकी अवस्था ७० वर्ष की हुई तो इन पर रोगों का प्रकोप होने लगा। इन्होंने अपना सारा धन दान देना प्रारम्भ कर दिया। इन्होंने अंत समय में कड़ोरों रुपया दान दे दिया। किन्तु भाग्यवश ये रोग से मुक्त न हो सकीं और अंत में माघ बदी १२ सम्वत् १९४३ में इनका देहान्त हो गया।

प्रतापकुंवरि बाई जी का जब से महंत पूर्णदास से सत्संग हुआ था तभी से इनकी प्रवृति कविता करने की ओर झुक गई थी। ये हिन्दी भाषा के पढ़ने-लिखने में अधिक मन लगाती थीं। इन्होंने अपने गुरुभाई दामोदर दास के कहने से कविता में बड़ी उत्तम पुस्तकें लिखीं। इनकी कविता भगवद्भक्ति से पूर्ण हैं। इनके सारे ग्रंथ ईडर की महारानी श्रीमती रतन कुंवरि बाई ने छपवाये हैं। इनकी पुस्तकों का विवरण इस प्रकार है :—

१. ज्ञान-सागर २. ज्ञान-प्रकाश ३. प्रताप-पचीसी ४. प्रेमसागर ५. रामचन्द्र-नाम-महिमा ६. रामगुण-सागर ७. रघुवर-स्नेह-लीला

८. राम-प्रेम-सुखसागर ९. राम-सुजस-पचीसी १०. पत्रिका सं० १९२३ चैत्र वदी ११ की ११. रघुनाथ जी के कवित्त १२. भजन पद हरजस १३. प्रताप-विनय १४. श्रीरामचन्द्र-विनय १५. हरिजस-गायन।

यद्यपि उस समय मारवाड़ और राजपूताने आदि में कृष्ण-भक्ति का ही प्राबल्य एवं प्राधान्य था तथापि बाई जी ने वैष्णव शाखा के रामानुजीय संप्रदाय की रामभक्ति का अनुसरण किया है। हिन्दी में रामभक्ति-काव्य बहुत कम कवियों ने लिखा। इसलिए हम इन्हें रामभक्ति-काव्यकारों में अच्छा स्थान देते हैं। इनकी कविता मधुर और प्रेम-पूर्ण है। हम इनकी कुछ चुनी हुई कवितायें इनके ग्रन्थों से यहाँ देते हैं :—

१

चौपाई

अब सुनिए चित धार सुजाना। रघुबर किरपा कहूँ बखाना॥
राम-रूप - हिरदै धर सुन्दर। बरनू ग्रन्थ हरन दुख दुन्दर॥
जदुकुल अति उत्तम सुखदाई। जामें कृष्ण प्रगट भे आई॥
तेहिं कुल में गोयँद मम ताता। प्रगटे जाण नगर विख्याता॥
सूरवीर रत धरम सुग्यानी। राजनीति जानत सुखदानी॥
रघुबर-चरन प्रीति नित करहीं। मग अनीति पग कबहुँ न धरहीं॥
तिन के तीन पुत्र भल कहिए। गिरधर, अजब सिंह पुनि लहिए॥
मात पिता नित मोहिं लड़ावहिं। हमकूँ देख परम सुख पावहिं॥
या पुत्री अति प्राण पियारी। इनके वर अब करो विचारी॥

नगर जोधपुर मान महीपा। सब राठौर वंश में दीपा॥
जेहिं सँग चलत सेन चतुरंगा। धवल महल झुक रहे दुरंगा॥
तेहिं नृप ते मैं कियो विवाहा। गावत मंगल अनत उछाहा॥
दासी दास तुरँग रथ भारी। दीयो दायज पिता अपारी॥
मान महीपति हम पति पाये। कारज सरे सबन मन भाये॥
ईस-स्वरूप जानि पति सांचा। सेवा कीन्ही मनसा वाचा॥
पति समान नहिं दूजा देवा। तातैं पति की कीजै सेवा॥
पति परमातम एक समाना। गावैं सब ही वेद पुराना॥
धरम अनेक कहे जग माहीं। तिय के पतिव्रत सम कछु नाहीं॥
देवहुती, अनुसुइया नारी। पतिव्रत ते हरि सुत अवतारी॥
ताते मैं पति सव समझाई। पति-सुमूर्ति हिरदै पधराई॥
यूँ करते कइ बरस बिताने। पति दरसन ते जात न जाने॥
सँवत अठारौ अंत उदासा। बरस सई को भादव मासा॥
सुदि बारस दिन मान नरेसा। तन तज सुरपुर कियो प्रवेसा॥
पति-वियोग दुख भयो अपारा। हुआ सकल सूना संसारा॥
कछु न सुहाय नैन वह नीरा। पति बिन कौन बँधावे धीरा॥
विकल भयो तन बचन न आये। हरे राम! दुख कौन गिराये॥
असन, वसन लागत दुखदाई। इक दिन एक बरस सम जाई॥
यह दुख करत गये दिन केते। जाने झूठ जगत सुख जेते॥
तखतसिंह सुत वाट विराजे। घर घर मंगल बाजे बाजे॥
देख देख सुत आज्ञाकारी। कछु इक दुख की वात बिसारी॥

सुनि सुनि कथा पुरान अपारा। सब झूठ्यो जान्यो संसारा॥
एक समय सपनो निसि आयो। रघुबर दरसन मोहिं दिखायो॥
मेघ वरन तन श्याम बिराजै। धनुष बाण प्रभु कर में छाजै॥
कर माथाए कस्यो सुखदाई। बनमाला कर में पधराई॥
सीस मुकुट कुण्डल छबि सोभै। पीताँबर ओढ़त मन लोभै॥
बीचै अंग जानकी माता। दरसन करत हरष भयो गाता॥
दोनों हाथ सीस मय वीने। बोले बचन कृपा रस भीने॥
सुन परतापकुँवरि कहुँ तोही। तू बल्लभ लागत अति मोही॥
झूठो जगत मोह नहिं करिये। मोकूँ भज भवसागर तरिए॥
मात-पिता - सुत संग न साथी। झूठो घर धन घोड़ा हाथी॥
आयो एक एक ही जासी। पाप पुन्न अपनो जिय दासी॥
ताते जगत मोह तज दीजै। हमरे हित एक मन्दिर कीजै॥
यो मूरति तामें पधराओ। कर उत्सव मन-प्रेम बढ़ाओ॥
सुनत वचन मम नींद उड़ाई। हरख भयो सो कह्यो न जाई॥
रघुवर किरपा कीन्हो भारी। तब मन्दिर की कीन्ह तयारी॥

दोहा

संवत उगणी सैतिये, चौथ चैत वदि जोय।
सर गुलाब के तीर पर, नीव दियाई सोय॥
अब मन्दिर रघुवीर को, तुरत भयो तैयार।
दरसन कर परसन भये, सब ही नर अरु नार॥
सरब देव अवतार सब, सब राजन के चित्र।

जहँ तहँ भीतिन पर लिखे, सोभित सदा विचित्र ॥
सनमुख साज सुहावणे, रघुवर रमण निवास ।
हौद भर्यो निरमल सुजल, सुधा-समान सुवास ॥
कथासाल[1] तिनमें सदा, कथा भागवत होय ।
प्रेम सहित नित प्रति सुनै, नर नारी सब कोय ॥

चौपाई

तुलसी रघुबर प्राण पियारी। ताकौ विड़ौ[2] सरद सुखकारी ॥
चौक वीच सोभित सरसाई। सीतापति नित चरण चढ़ाई ॥
रतन जड़ित हिंडोले साजै। मोतिन की झालरी बिराजै ॥
सुवरण खंभा सोभित भारी। तापर तोरण की छवि न्यारी ॥
तामें सीता सहित सदाई। सावन में झूलत रघुराई ॥
लोक नगर के दरसन करहीं। कर दरसन भवसागर तरहीं ॥
एकादशी दिवस जब होई। साधु विप्र आवत सब कोई ॥
नर नारी बहु होत समाजा। कथा कीरतन बाजत बाजा ॥
पाट उछव दिन आवत जबहीं। उच्छव अधिक होत है तबहीं ॥
नौवत झरत बजत सहनाई। जय जय सबद होत सुखदाई ॥
उच्छव राम नवमि दिन तैसे। जनम अष्टमी जानहु जैसे ॥
सरद आदि अनकूट अपारा। उच्छव होवत बरस मँझारा ॥
भांति भांति भोजन पकवाना। खीर खाँड घृत बिंजन नाना ॥

१ कथाशाला अर्थात् कथा कहने का स्थान। २ थाला।

सीरो लाडू पुरी पकोरी। घेयर केसर पाक कचौरी॥
पेड़ा दही इड़ी अरु पूवा। नुकती सेव जलेबी सूवा॥
औरहि भोजन विविध प्रकारा। भोग लगत रघुवर कै सारा॥

दोहा

मान महीपति मोहि पति, ज्ञानी-गुनी-उदार।
इष्ट जलंधर नाथ कौ, जानत सब संसार॥
तातें पति के प्रेम सों, मंदिर नाथ अनूप।
कीन्हो पुस्कर ऊपरै, हय हिरदै धर चूँप॥
मेरे मन तन बचन तें, लछमन सीताराम।
इष्ट आसरौ वाहिं बल, सकल सुधारन काम॥

२

श्री सिद्ध नगर वैकुंठ जान, उपमा जहँ अधिक विराजमान॥
जहँ अष्ट सिद्धि नव निधि निवास, कौवैर करत भंडार जास॥
विधि वेद उचारत बार बार, हाजरी करत निसि दिन हजार॥
शिव करत निरत तांडव अभंग, रघुवीर रिझावत लेत रंग॥
जहँ पंथ बुहारत पवन चाल, जल भरत इन्द्र लै मेघ-माल॥
दीवा[1] ससि सूरज सुभग दोय, जमराज जहाँ कुटवाल जोय॥
नित अंग रसोऊ तपत जास, दरवान खड़े जय विजयदास॥
मुकि कनक महल अद्भुत अनंत, उपमा न कहत मुख तैं वनंत॥

---

१ दीपक।

मणि जटित खंभ सुन्दर कपाट, देहली रची विद्रुम सुघाट ॥
भीतिन परमाणिक लगे लाल, चिल्लाय मनोकत वेलि-जाल ॥
बहु बरन बरन बंधे वितान, तोरण पताक धुज चमर जान ॥
सिंहासन अरु सज्जा अनूप, ऊपरनि विमलपय फैन रूप ॥
चहुँदिसा बिराजत विविध बाग, तामाहिं कलपतरु रहे लाग ॥
चंपा जु चमेली रामवेल, केवरौ केतकी दाख केल ॥
अंजीर जाँवु आँबा अनार, झुकि रहे भूमि फल-फूर भार ॥
चातक विहंग कोकिला मोर, शुक राजहंस पिक करत सोर ॥
नित भरे सरोवर विमल नीर, सोपान कनकमणि रचित तीर ॥
बहु कमल कुमोदनि रहे फूल, मदमत्त भरमता नाहिं भूल ॥
है सीतल मंद सुगंध पौन, भल भ्राज रह्यो बैकुंठ-भौन ॥
आवत विमान के झुंड झुंड, जिमि सावन सोभत कर घुमुंड ॥
नारद सनकादिक भक्तराज, नित बसत तहाँ प्रभु परस काज ॥
ऊँचौ सिंहासन अति अनूप, ता बीच विराजत ब्रह्म-रूप ॥
घट घट प्रति व्यापक एक गोत, पट तंतु जथामिलि ओतपोत ॥
इक[१] आदिपुरुष अणघड़ अलेख, नहिं लहत पार सारदा शेष ॥
कहँ नेति नेति नित चार वेद, सुर नर नहिं गावत जास भेद ॥
संसार सरब परगर करंत, सबही को पालत पुन हरंत ॥

---

१ बाई जी ने श्रीरामचन्द्र जी के नाम, भक्ति के आवेश में आकर एक पत्र कविता में लिखा था, उसी का यह एक अंश है।

आधार सरब रह निराधार, नहिं आदि अंत नहिं आरपार॥
पर तीन अवस्था गुणातीत, धर सगुण रूप निज भक्तप्रीत॥
गो विप्र साधु पालक कृपाल, देवाधिदेव दाता दयाल॥
राजाधिराज महराज राज, रघुवंश-मुकुट-मणि धरम साज॥
उपमा प्रभु की है अति अनंत, श्री श्री श्री श्री श्री रमाकंत॥
श्रीरामचन्द्र करुणा-निकेत, जानकी-नाथ लछिमन समेत॥
चरणारविंद प्रति लिखत आप, कायापुर सों कुँवरी प्रताप॥
डंडोत विनय मम बार बार, वाँचिये कृपानिधि सहित प्यार॥
तुम सदा कुसल-मूरति कहाय, दुख सोक न जाके निकट जाय॥
रम रहे सदा आनंद रूप, भगतन प्रतिपालक राम भूप॥
नित कृपादृष्टि राखियो राम, हमरे नहिं तुम बिन और श्याम॥
मो औगुण कबहुँ न चित्त धार, निज बिरद जान कीन्हों सँभार॥
हमरे तुम जीवन प्रान एक, मन वचन काम नहि तजूं टेक॥
मो मति मलीन कछु समझ नाहिं, अब अधिक लिखूं का पत्र माहिं॥
अपरंच अरज इक सुनो मोहिं, तुम सर्व जानि कह लिखूँ तोहिं॥
कायापुर मैं तो हुकुम पाय, मैं बास कियो प्रभु यहाँ आय॥
तुम आज्ञा हमको करी एह, मो चरन सरन कीजो सनेह॥
नित कथा हमारी सुनौ कान, हिरदै विच हमरो धरौ ध्यान॥
हाथन तें सूकृत सदा होय, नैनन तें दरसन करौ सोय।
पग ते नित तीरथ चलौ पंथ, रसना तें गावौं ज्ञान - ग्रंथ॥
आसा करि पाई ऐसि आप, मैं सिर पर धारन लगी छाप॥

इतनै सुनि कै यह समाचार, भोमिया दौड़ि आये अपार ॥
मद काम क्रोध अरु लोभ मोह, ईर्षारु बादि अज्ञान द्रोह ॥
भय मत्सर ममता अरु गुमान, आसा बड़ तृसना सोक जान ॥
मन क्रोध महा बलवंत जोय, ता सम नहिं जोधा और कोय ॥
सुर नर सबही को लिए जीत, नहिं कीन्ह कवौं ओछी अनीत ॥
मन मोह रेख को कामदार, सब सेना चाल ताहि लार ॥
सामंत सूर सब एक एक, जोधा ऐसे आए अनेक ॥

दोहा

संवत उमगी सौ बरस, तेई सौ निरधार।
चैत कृष्ण एकादशी, लिख्यो पत्र रविवार ॥

३

आस तो काहू की नाहिं मिटी जग में भये रावण से बड़ जोधा।
सावँत सूर सुयोधन से बल से नल से रत बादि बिरोधा ॥
केते भये नहिं जाय वखानत जूझ मुये सबही करि क्रोधा।
आस मिटे परताप कहै हरि-नाम जपेरु बिचारत बोधा ॥

४

धर ध्यान रटो रघुबीर सदा धनुधारी को ध्यान हिये धर रे।
पर पीर में जाय कै वेग परौ करतें सुभ सुक्रत* को कर रे ॥

---

*इस शब्द में 'कृ' को द्वित्व करके पढ़ना चाहिए; यद्यपि हिन्दी काव्य में इस प्रकार बहुत ही कम है। इस शब्द में 'कृ' को द्वित्व रूप में लिया जाता है।

तर रे भवसागर को भजि कै लजि कै अघ-अवगुण ते डर रे।
परताप कुँवारि कहै पद-पंकज पाव धरी मत बीसर रे॥

५

होरी खेलन की सत भारी।
नर-तन पाय अरे भज हरि को मास एक दिन चारी।
अरे अब चेत अनारी।
ज्ञान-गुलाल अबीर प्रेम करि, प्रीत तणी पिचकारी।
लास उसास राम रँग भर भर सुरत सरीरी नारी॥
खेल इन संग रचा री।
उलटो खेल सकल जग खेलै उलटो खेलै खिलारी।
सतगुर सीख धार सिर ऊपर सत संगत चल जारी॥
भरम सब दूर गुमारी।
ध्रुव प्रह्लाद विभीषण खेले मीरा करमा नारी।
कहै प्रतापकुँवरि इमि खेलै सो नहिं आवै हारी॥
साख सुन लीजै अनारी॥

६

होरिया रँग खेलन आओ।
इला पिंगला मुख मणि नारी ता सँग खेल खिलाओ॥
सुरत पिचकारी चलाओ।
काचो रंग जगत को छाँड़ौ साँचो रंग लगाओ।
बाहर भूल कबौं मत जाओ काया-नगर बसाओ॥

तबै निरभै पद पाओ।
पाँचौ उलट धरे घर भीतर अनहद नाद बजाओ।
सब बकवाद दूर तज दीजै ज्ञान-गीत नित गाओ॥
पिया के मन तबही भाओ।
तीनो ताप तीन गुण त्यागो, संसा सोक नसाओ।
कहै प्रतापकुँवरि हित चित सों फेर जनम नहिं पाओ॥
जोत में जोत मिलाओ।

७

अवध पुर घुमड़ि घटा रही छाय।
चलत सुमंद पवन पुरवाई नभ घनघोर मचाय॥
दादुर मोर पपीहा बोलत दामिनि दमकि दुराय।
भूमि निकुंज सघन तरुवर में लता रही लिपटाय॥
सरजू उमगत लेत हिलोरैं निरखत सिय रघुराय।
कहत प्रतापकुँवरि हरि ऊपर बारबार बलि जाय॥



सहजोबाई

सहजोबाई का जन्म सं० १८०० के लगभग राजपूताने के एक प्रसिद्ध ढूसर कुल में हुआ। ये महात्मा चरनदास की प्रसिद्ध चेलियों में से थीं। हिन्दी की प्रसिद्ध कवियित्री दयाबाई इनकी गुरु-बहन थीं। ये परम भक्त थीं। सहजोबाई अपने गुरु की भाँति साधुवृत्ति से रहती थीं। सहजोबाई ने चरणदास जी का जन्म-संवत् १७६० माना है। इससे पता चलता है कि इनका जन्म चरणदास के बाद हुआ होगा। इनकी बानी कोमल मधुर और हृदय प्रसन्न करने वाली होती थी। वह कोरी कविता ही नहीं है किन्तु प्रेम रसमयी सुधा-धार है। इनकी बानी से सब से बड़ी बात यह प्रगट होती है कि यह गुरू को भगवान से भी ऊँचा मानती थीं। इनका यह सिद्धान्त था कि बिना सतगुरु की कृपा से जीव किसी प्रकार संसार से मुक्ति नहीं पा सकता। इनकी कविताओं का एक संग्रह 'सहज-प्रकाश' बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग द्वारा संतबानी पुस्तक-माला में प्रकाशित हुआ है। 'सहज-प्रकाश' की कविता भक्ति-पूर्ण है। यहाँ इनकी कुछ कवितायें नीचे लिखी जाती हैं :—

१

दोहा

लख चौरासी यह कही, फेर फेर भुगतन्त।
जनम मरन छूटै नहीं, बिना सरन भगवन्त॥

जज्ञ, दान, तीरथ करै, पूजा भाँति अनेक।
मुक्ति न पावै सहजिया, बिना भक्ति हरि एक॥
इन्दर की पदवी मिलै, और ब्रह्म की आव।
आगे तौ भी मरन है, सहजो सकल बहाव॥
राम-नाम ले सहजिया, दीजै सर्व अकोर।
तीन लोक के राज लौं, अन्त जाहुगे छोर॥
बिना भक्ति थोथे सभी, जोग-जज्ञ-आचार।
राम-नाम हिरदै धरो, सहजो यही विचार॥
यह अवसर दुर्लभ मिलै, अचरज मनुषा देह।
लाभ यही सहजो कहै, हरि सुमिरन करि लेह॥
एक घड़ी का मोल ना, दिन का कहा बखान।
सहजो ताहि न खोइये, बिना भजन भगवान॥
पारस नाम अमोल है, धनवन्ते घर होय।
परख नहीं कंगाल कूँ, सहजो डारै खोय॥
सहजो जा घट नाम है, सो घट मंगल रूप।
राम बिना धिक्कार है, सुन्दर धनिया भूप॥
सहजो नौका नाम है, चढ़ि के उतरौ पार।
राम सुमिरि जान्यो नहीं, ते डूबे मँझधार॥
सहजो भवसागर बहै, तिमिर बरस घन घोर।
ता में नाम जहाज है, पार उतारै तोर॥
पावक नाम जलाइ है, पाप, ताप, दुख दुन्द।

राम सुमिर सहजो कहै, जो बिसरै सो अन्ध ॥
कनक-दान गज-दान दे, उनन्चास भू-दान ।
निस्चै करि सहजो कहै, ना हरि नाम समान ॥
मेह सहै सहजो कहै, सहै सीत औ घाम ।
पर्वत बैठो तप करै, तो भी अधिको नाम ॥
चरनदास हरि-नाम की, महिमा कही अपार ।
सो सहजो हिरदै धरी, अचल धारना धार ॥
सहजो सुमिरन कीजिये, हिरदै माहिं दुराय ।
होठ होठ सूँ ना हिलै, सकै नहीं कोइ पाय ॥
राम-नाम यों लीजिये, जानै सुमिरनहार ।
सहजो कै कर्तार ही, जानै ना सन्सार ॥
बैठे, लेटे, चालते, खान, पान, ब्योहार ।
जहाँ तहाँ सुमिरन करै, सहजो हिये निहार ॥
जागत में सुमिरन करै, सोवत में लौ लाय ।
सहजो इकरस ही रहै, तार टूटि नहिं जाय ॥
आठ पहर सुमिरन करै, बिसरै ना छिन एक ।
अष्टादस औ चार में, सहजो यही बिशेष ॥
सहजो सुमिरन सब करैं, सुमिरन माहिं बिबेक ।
सुमिरन कोई जानि है, कोटों मध्ये एक ॥
जन्म-मरन-बन्धन कटै, टूटै जम की फाँस ।
राम-नाम ले सहजिया, होय नहीं जग हाँस ॥

चौरासी के दुख कट, छप्पन नरक तिरास।
राम-नाम ले सहजिया, जमपुर मिलै न बास॥
गर्भ-बास संकट मिटै, जठर अगिन की आँच।
राम-नाम ले सहजिया, मुख सूँ बोलो साँच॥
सील, छिमा, संतोष गहि, पाँचो इन्द्री जीत।
राम-नाम ले सहजिया, मुक्ति होन की रीत॥
काम, क्रोध औ मोह मद, तजि भज हरि को नाम।
निस्चै सहजो मुक्ति है, लहै अमरपुर धाम॥
काम, क्रोध औ लोभ तन, लै सुमिरै हरि-नाम।
मुक्ति न पावै सहजिया, नहिं रीझेंगे राम॥
कामो मति भिष्टल सदा, चलै चाल विपरीत।
सील नहीं सहजो कहै, नैनन माहिं अनीत॥
सदा रहै चित भंग ही, हिरदे थिरता नाहिं।
राम-नाम के फल जिते, काम लहर बहि जाहिं॥
सहजो क्रोधी अति बुरो, उलटी समझै बात।
सब ही सूँ ऐंठो रहै, करै बचन की घात॥
कूकर ज्यों भूकत फिरै, तामस मिलवाँ बोल।
घर बाहर दुख रूप है, बुधि रह डाँवाडोल॥
मन मैला तन छीन है, हरि सूँ लगै न नेह।
दुखी रहै सहजो कहै, मोह बसै जा देह॥
मोह-मिरग काया बसै, कैसे उबरै खेत।

जो बोवै सोई चर, लगै न हरि सूँ हेत ॥
नीच लोभ जा घट बसै, झूठ कपट सूँ काम।
बौरायो चहुँ दिसि फिरै, सहजो कारन दाम ॥
द्रव्य हेत हरि कूँ भजै, धन ही की परतीति।
स्वारथ ले सब सूँ मिलै, अन्तर की नहिं प्रीति ॥
अभिमानी मुख धूर है, चहै बड़ाई आप।
डिंभ लिये फूली फिरै, करतो डरै न पाप ॥
प्रभुताई कूँ चहत है, प्रभु को चहै न कोइ।
अभिमानी घट नीच है, सहजो ऊँच न होय।

२

धन छोटापन सुख महा, धिरग बड़ाईख्त्रार।
सहजो नन्हा हूजिये, गुरु के बचन सम्हार ॥
सहजो तारे सब सुखी, गहैं चन्द औ सूर।
साधू चाहै दीनता, चहै बड़ाई कूर ॥
अभिमानी नाहर बड़ो, भरमत फिरत उजाड़।
सहजो नन्ही वाकरी, प्यार करै सन्सार ॥
सीस, कान, मुख, नासिका, ऊँचे ऊँचे नाँव।
सहजो नीचे कारने, सब कोउ पूजै पाँव ॥
नन्ही चींटी भवन में, जहाँ तहाँ रस लेह।
सहजो कुन्जर अति बड़ो, सिर पै डारे खेह ॥
सहजो चन्दा दूज का, दरस करै सब कोय।

नन्हे सूँ दिन दिन बढ़ै, अधिको चाँदन होय ॥
बड़ा भये आदर नहीं, सहजो आँखिन देख।
कला सभी घट जायगी, कछू न रहसी रेख ॥
सहजो नन्हा बालका, महल भूप के जाय।
नारी परदा ना करै, गोदहिं गोद खेलाय ॥
बड़ा न जाने पाइहै, साहब के दरबार।
द्वारे ही सूँ लागि है, सहजो मोटी मार ॥
बारे दीवे चाँदना, बड़ा भये अँधियार।
सहजो तृन हलका तिरै, डूबै पत्थर भार ॥
भली गरीबी नवनता, सकै नहीं कोइ मार।
सहजो रुई कपास को, काटै ना तरवार ॥
चरनदास सतगुरु कही, सहजो कूँ यह चाल।
सकौ तो छोटा हूजिये, छूटै सब जंजाल ॥
साहन कूँ तो भय घना, सहजो निरभय रंक।
कुंजर के पग बेड़ियाँ, चींटी फिरै निसंक ॥
ऊँचे उज्जल भाग सूँ, आय मिले गुरुदेव।
प्रेम-दिया नन्हा किया, पूरन पायो भेव ॥
सहजो पूरन भाग सूँ, पाय लिये सुखदान।
नखसिख आई दीनता, भजे बड़ाई मान ॥
सहजो पूरन भाग सूँ, पाय लिये सुखदैन।
गये कुलच्छन देह सूँ, सुलछन पायो चैन ॥

औगुन थे सो सब गये, राज करैं उनतीस।
प्रेम झिला प्रीतम मिला, सहजो वारा सीस॥

३

चरनदास सतगुरु दियो, प्रेम पिलाया पान।
सहजो मतवारे भये, तुरिया तत गलतान॥
प्रेम-दिवाने जो भये, मन भयो चकनाचूर।
छके रहैं घूमत रहैं, सहजो देख हजूर॥
प्रेम-दिवाने जो भये, प्रीतम के रँग माहिं।
सहजो सुधि-बुधि सब गई, तन की सोधी नाहिं॥
प्रेम-दिवाने जो भये, पलटि गयो सब रूप।
सहजो दृष्टि न आवई, कह रंक कह भूप॥
प्रेम-दिवाने जो भये, कहैं बहकते बैन।
सहजो मुख हाँसी छुटै, कबहूँ टपकै नैन॥
प्रेम-दिवाने जो भये, जाति बरन गइ छूट।
सहजो जग बौरा कहै, लोग गये सब फूट॥
प्रेम-दिवाने जो भये, धरम गयो सब खोय।
सहजो नर नारी हँसैं, वा मन आनन्द होय॥
प्रेम-दिवाने जो भये, सहजो डगमग देह।
पाँव पड़ै कितकै किती, हरि सम्हाल जब लेह॥
कबहूँ हकधक ह्वै रहै, उठै प्रेम हित गाय।
सहजो आंख मुँदी रहै, कबहूँ सुधि ह्वै जाय॥

मन में तो आनँद रहै, तन बौरा सब अंग।
ना काहू के संग है, सहजो ना कोइ संग॥
प्रेम-लटक दुरलभ महा, पावै गुरु के ध्यान।
अजपा सुमिरन कहत हूँ, उपजै केवल ज्ञान॥

४

सहजो कारज जगत के, गुरु बिन पूरे नाहिं।
हरि तो गुरु बिन क्यों मिलैं, समझ देख मन माहिं॥
परमेसर सूँ गुरु बड़े, गावत बेद पुरान।
सहजो हरि के मुक्ति है, गुरु के घर भगवान॥
अष्टादस औ चार षट, पढ़ि पढ़ि अर्थ कराहिं।
भेद न पाव गुरु बिना, सहजो सब भरमाहिं॥
सकल विकल सब छोड़कर, गुरु चरनन चित लाव।
सहजो निस्चै हरि जपो, बहुरि न ऐसो दाव॥
दीपक लै गुरु-ज्ञान को, जगत अँधेरे माहिं।
काम, क्रोध, मद, मोह में सहजो उरझै नाहिं॥
सहजो गुरु-परताप सूँ, होय समुन्दर पार।
बेद-अर्थ गूँगा कहै, बादी कितइक बार॥
सहजो सतगुरु के मिले, भये और सूँ और।
काग पलट गति हंस ह्वै, पाई भूली ठौर॥
सहजो यह मन सिलगता, काम क्रोध की आग।
भली भई गुरु ने दिया, सील छिमा का बाग॥

निस्चै यह मन डूबता, मोह, लोभ की धार।
चरनदास सतगुरु मिले, सहजो लई उबार॥
ज्ञान-दीप सतगुरु दियौ, राख्यौ काया-कोट।
साजन बसि दुर्जन भजे, निकस गई सब खोट॥
सहजो गुरु दीपक दियौ, रोम रोम उजियार।
तीन लोक दृष्टा भये, मिट्यौ भरम-अँधियार॥
सहजो गुरु दीपक दियौ, नैना भये अनन्त।
आदि अन्त मध एक ही, सूझि परै भगवन्त॥
सहजो गुरु दीपक दियौ, देख्यौ आतम रूप।
तिमिर गयो चादन भयौ, पायो परघट भूप॥
सहजो गुरु परसन्न ह्वै, मेट्यौ मन सन्देह।
रोम रोम सूँ प्रेम उठि, भाँज गई सब देह॥
सहजो गुरु परसन्न ह्वै, एक कह्यौ परसंग।
तन, मन तें पलटी गई, रँगी प्रेम के रंग॥
सहजो गुरु परसन्न ह्वै, मूँद लिये दोउ नैन।
फिर मो सूँ ऐसे कही, समझ लेइ यह सैन॥
सहजो गुरु किरपा करी, कहा कहूँ मैं खोल।
रोम रोम फूली भई, मुख नहिं आवै बोल॥
चिँउटी जहाँ न चढ़ि सकै, सरसों ना ठहराय।
सहजो कूँ वा देस में, सतगुरु दई बसाय॥
सिष पोधा नौधा अभी, गुरु किरपा की बाड़।

सहजो तरवर फैल बड़, सुफल फलै वह झाड़ ॥
सहजो सिष ऐसी भली, जैसे माटी मोय ।
आपा सौंपि कुम्हार कूँ, जो कछु होय सो होय ॥
सहजो सिष ऐसी भली, जैसे चकई डोर ।
गुरु फेरैं त्यौं ही फिरै, त्यागै आपन खोर ॥
सहजो गुरु ऐसा मिलै, जैसे धोबी होय ।
दै दै साबुन ज्ञान का, मलमल डारै धोय ॥
सहजो गुरु ऐसा मिलै, मेटै मन-सन्देह ।
नीच-ऊँच देखै नहीं, सब पर बरसै मेह ॥
सहजो गुरु ऐसा मिलै, जैसे सूरज धूप ।
सब जीवन कूँ चाँदना, कहा रंक कह भूप ॥
सहजो गुरु ऐसा मिलै, समदृष्टी निरलोभ ।
सिष कूँ प्रेम-समुद्र में, करदे झोबाझोब ॥
सहजो गुरु बहुतक फिरैं, ज्ञान ध्यान सुधि नाहिं ।
तार सकैं नहिं एक कूँ, गहैं बहुत की बाहिं ॥
ऐसे गुरु तो बहुत हैं, धूत धूत धन लेहिं ।
सहजो सतगुरु जो मिलैं, मुक्ति धाम फल देहिं ॥
कुटुँब जाल जित तित रुप्यो, पसु पंछी नर माहिं ।
सहजो गुरुबर्ती बचै, निगुरे अरुझत जाहिं ॥
बार बार नाते मिलैं, लख चौरासी माहिं ।
सहजो सतगुरु ना मिलैं, पकड़ निकासैं बाहिं ॥

जन्म जन्म हरि संग ही, मिलि रहु आठो जाम।
सहजो गुरु के बिन मिले, पायौ ना विसराम॥
सहजो गुरु पूरा मिलै, सिष मैला घट चित्त।
मेह बरस कालर जिमीं, खेत न उपजै छित्त॥
मलयागिरि के निकट जो, सब द्रुम चन्दन होहिं।
कीकर सीसों चीड़ तरु, हुए न कबहूँ होहिं॥
सिष माटी सिष पाथरा, सिष लकड़ी सम जोय।
सहजो गुरु पारस लगे, कैसे कंचन होय॥
सिष्य सराई तेल बिन, बाती भी नहिं माहिं।
सहजो गुरु दीपक मिलै, चाँदन होसी नाहिं॥
सहजो गुरु समरथ कला, सब देसी सब अंग।
कोइ कैसा ही सिष्य हो, सब पर गेरै रंग॥
सहजो गुरु रँगरेज सा, सब हीं कूँ रँग देत।
जैसा तैसा बसन है, जो कोइ आवै सेत॥
सहजो गुरु दरसन दियो, पूर रहे सब ठौर।
जहाँ तहाँ गुरु ही लखै, दृष्टि न आवै और॥
देखत ही आनँद भये, सतगुरु पहुँचे आय।
भवसागर दुख रूप सूँ, सहजो लई बचाय॥
चरनदास के चरन पर, सहजो वारै प्रान।
जगत ब्याध सूँ काढ़ि कर, राख्यो पद निरवान॥
सहजो गुरु महिमा कही, पढ़ सुनि हिया सिराय।

उपजै गुरु की भक्ति दृढ़, दुविधा दुरमति जाय ॥

५

सखीरी आज जनमे लीला-धारी।
तिमिर भजैगो भक्ति खिड़ैगी, पारायन नर नारी ॥
दरसन करतै आनँद उपजै, नाम लिये अघ नासै।
चरचा में सन्देह न रहसी, खुलि है प्रबल प्रगासै ॥
बहुतक जीव ठिकानो पैहैं, आवागवन न होई।
जम के दण्ड दहन पातक की, तिन कूँ मूल निकोई ॥
होइ है जोगी प्रेमी ज्ञानी, ब्रह्म रूप ह्वै जाई।
चरनदास परमारथ कारन, गावै सहजोबाई ॥

६

सखीरी आज जनम लियौ सुखदाई।
दूसर कुल में प्रगट हुए हैं, बाजत आनँद बधाई ॥
भादों तीज सुदी दिन मंगल, सात घड़ी दिन आये।
सम्वत सत्रहसाठ हुते तब, सुभ समयो सब पाये ॥
जैजैकार भयौ मधि गाऊँ, मात पिता मुख देखौ।
जानत नाहिंन कौन पुरुष हैं, आये हैं नर भेखौ ॥
संग चलावन अगम पन्थ कूँ, सूरज भक्ति उदय को।
आप गुपाल साध तन धार्यौ, निहचै मो मन ऐसो ॥
गुरु सुकदेव नाँव धरि दीन्ह्यौ, चरनदास उपकारी।
सहजोबाई तन मन वारै, नमो नमो बलिहारी ॥

झीमा

झीमा गाँगलू (बीकानेर राज्य) के बीठू नामक चारण की बहिन थी। यह बड़ी वाचाल और कवि थी। अब से कोई पाँच सौ वर्ष पहले की बात है कि यह नागरोद (कोटा राज्य) में माँगने-जाँचने गई। वहाँ से खीची राजा अचलदास के पूछने पर इसने अपने देश के राजा राव खीमसी जी की बेटी ऊमादे की बड़ी प्रशंसा की। राजा अचलदास ने प्रसन्न होकर झीमा को चार घोड़े दिये। झीमा ने राजा राव खीमसी की बेटी का विवाह राजा अचलदास जी से ठीक करवा दिया। विवाह हो गया। राजा अचलदास जी की पहली रानी का नाम लालादे था। जब अचलदास जी ऊमादे को लिवा कर अपने घर गये तो झीमा भी उनके साथ गई। वह ऊमादे की पुरानी सखी थी। वह प्रत्येक समय उसका मनोरंजन किया करती थी। लालादे अपने पति को अधिक प्रसन्न किए हुए थी। ऊमादे के ऐसे संकट के समय झीमा ही सहायक थी।

ऊमादे ने बहुत दिनों तक अपना समय दुःखमय विताया। झीमा उसकी बाल्यकाल की संगिनी थी। वह कभी दोहे और कभी गीत कह और गा कर उसका जी बहलाया करती थी। एक दिन ऊमादे ने झीमा से कहा की तुम इतना सुन्दर वीणा-बजाना और गाना जानती हो तब भी क्या तुम राजा को अपने संगीत से प्रसन्न नहीं कर सकतीं ? झीमा

ने कहा—हाँ सखी ! मैं कर क्यों नहीं सकती। किन्तु खेद है कि जब से मैं यहाँ आई हूँ तब से राजा साहब के दर्शन ही नहीं हुए। यदि कभी ऐसा अवसर मिले तो बहुत संभव है कि मेरी वीणा राजा साहब को मुग्ध करले।

दूसरे दिन झीमा ने यह प्रसिद्ध कर दिया कि ऊमादे के पास एक बड़ा सुन्दर हार है। यह समाचार पा कर लालादे ने ऊमादे से वह हार मँगा भेजा। ऊमादे ने कहा—यदि राव जी स्वयं ही लेने आवें तो मैं हार दे दूँ। लालादे ने इसे स्वीकार कर लिया। जब राव जी ऊमादे के महल में आने लगे तब लालादे ने राव जी से प्रतिज्ञा करा ली कि वहाँ जाकर वे हथियार न खोलें। अचलदास ऊमादे के महल में गये तो अस्त्र-शस्त्र बाँधे ही लेट गये। ऊमादे पैर दाबने लगी। झीमा ने वीणा लेकर असावरी राग में यह दोहे गाये:—

धिन[१] ऊमादे साँखली, तैं पिव लियो मुलाय[२]।
सात वरसरो वीछड्यो, तो किम[३] रैन विहाय॥
किरती[४] माथे ढल गई, हिरनी[५] लूँबा[६] खाय।
हार सटे[७] पिय आणियो[८], हँसे न सामो थाय[९]॥
चनण[१०] काठरो टालिया[११], किस्तूरियाँ[१२] अवास[१३]।

---

१. धन्य। २. मोल ले लिया ३. क्यों ४. कृतिका ५. मृगशिर ६. झाले ७. बदले ८. लाया गया ९. सन्मुख १०. चंदन ११. पलँग १२. करतूरी की १३. सुगन्धित स्थान।

धण[1] जागे पिय पोढयों[2], बाळू[3] औघर[4] बास ॥
लालाँ लाल मेवाड़ियाँ, उमा तीज बल[5] भार।
अचल ऐराक्याँ[6] ना चढ़ै, रोढ़ाँ[7] रो असवार॥
काले अचल मोलाविियो[8], गज घोड़ाँ रे मोल।
देखत ही पीतल हुओ, सो कड़ल्याँ[9] रे बोल॥
धिन्य दिहाड़ो[10] धिन घड़ी, मैं जाण्यो थो आज।
हार गयो पिव सो रह्यो, कोइ न सिरियो काज॥
निसि दिन गई पुकारताँ, कोइ न पूगी[11] दाँव।
सदा बिलखती धण रही, तोहि न चेत्यो राव॥
ओढ़न[12] झीणा[13] अंबरा[14], सूतो खूँटी ताण।
ना तो जाग्या वालमो, ना धन मूक्यो[15] माँण॥
तिलकन भागो[16] तरुणि को, मुखे न बोल्यो बैण।
माण कलड़ छूटी नहीं, आजेस[17] काजल नैण॥
खीची से चाँहे सखी, कोई खीची लेहु।
काल पचासाँ में लियो, आज पचीसाँ देहु॥
हार दियाँ छेदो[18] कियो, मूक्यो माण मरम्म।

---

१. स्त्री २. लेटा हुआ ३. जलाना ४. यह ५. ज़बरदस्त ६. घोड़े ७. छोटा घोड़ा ८. मोल लिया ९. सांकें १०. दिन ११. पहुँचा १२. ओढ़कर १३. महीन १४. कपड़े १५. छोड़ा १६. नष्ट हुआ १७. अभी तक १८. आधीनता, खुशामद।

ऊँमाँ पीवन चक्खियो, आडो लेख करम्म॥

ऐसे सरस दोहे सुनकर भी राव अचलसिंह ने अपनी कमर न खोली। प्रातःकाल होते ही जब लालादे की दासी राव जी को बुलाने आई तब उमादे ने कहाः—

माँग्या लाभे[1] जव चरण, मौजी लभे जुवार।
माँग्या साजन किमि मिले, गहली[2] मूढ़ गँवार॥
पहो[3] फाटी पगड़ो हुओ, विछुरण री है बार।
ले सकि थारो बालमो, उरदे म्हारो हार॥

झीमा यह सुनते ही वीणा फेंक, झुँझला कर उठी और राव जी को जगाने लगी। राव जी ने कहा—तुमने "हार सहे पिव आणियों" क्यों कहा? इसका क्या अभिप्राय है? तब चारिणी झीमा ने कहा—राव साहब! आप को तो लालादे ने बेंच दिया है और हमने एक हार के बदले तुम्हें मोल ले लिया है। यदि तुम भी चले जाओगे और हार भी हमारा चला जाएगा तो फिर हमारा काम कैसे होगा? राव जी ने झीमा से सारा हाल पूछा। झीमा ने सब वृत्तान्त सुना कर यह दोहा पढ़ाः—

लाला मेवाड़ी करे बीजो[4] करे न काय।
गायो झीमा चारिणी, ऊमा लियो गुलाय[5]॥

---

१. मिले २. पागल, बावली ३. प्रातःकाल ४. दूसरा ५. मोल

पगे बजाऊँ गूधरा, हाथ बजाऊँ तंत्र[1]
ऊमा अचल मुलावियो, ज्यूँ सावन की लुंव[2] ॥
आसावरी अलापियो, धिनु झीमा धण जाण ।
धिण आजूणे[3] दीहने,[4] मनावणे[5] महिराण ॥

झीमा के उपर्युक्त दोहों और वार्तालाप को सुनकर राव राजा अचल-सिंह ने रोष पूर्वक कहा—अच्छा लालादे ने हमको बेंच दिया है ? उसने हार को हमसे अधिक मूल्यवान समझा ? अब मैं लालादे के पास न जाने की शपथ करता हूँ । ऊमादे तुरन्त बोल उठी—नहीं महाराज, आप लालादे को आने का वचन देकर आये हैं । आप वहाँ जाइये जिससे कि आपका वचन भंग न हो । जब मैं आपको बुलाऊँगी तब यह कह कर चले आइयेगा कि तुमने तो हमें हार के बदले ऊमादे के हाथ बेंच दिया है ।

कई दिन बीत गये । एक दिन रात्रि को राव अचलसिंह जी लालादे के साथ चौपड़ खेल रहे थे । उसी समय ऊमादे की सखी झीमा राव साहब को बुलाने आई । एक बाजी भी पूरी न हो पाई थी कि राव साहब ऊमादे के पास चलने को तय्यार हो गये । लालादे ने कहा—यह क्या, कहाँ जाते हो ? राव साहब ने कहा—तुमने तो हमें एक हार के बदले उमादे के हाथों बेंच दिया है । इसलिए मैं ऊमादे का

---

१. बीणा २. बरसने वाली बदली ३. आज ४. दिन ५. राजा को मनाना ।

गुलाम हूँ। मैं यहाँ कदापि नहीं रुक सकता। ऐसा कह कर राव साहब झीमा के पास चले गये। लालादे झीमा और ऊमादे पर अति कुपित हुई। वह झीमा से अत्यन्त नाराज़ हुई क्योंकि उसे मालूम था कि यह करतूत इसी चारिणी की है।

इस प्रकार झीमा चारिणी ने अपनी वचन-चातुरी और सजीव कविता से अपनी सखी ऊमादे का सारा संकठ दूर कर दिया। झीमा के समय का अभी कुछ निश्चय नहीं हो सका। किन्तु कोटा के राजा अचलसिंह को हुये आज लगभग ५२५ वर्ष हुये होंगे। इसलिये झीमा चारिणी का समय भी ५२५ वर्ष पूर्व होना माना जा सकता है।

झीमा बड़ी वीर रमणी थी। इसने कई लड़ाइयों में भी चारिणी का अच्छा काम किया था। वीणा बजाने में तो यह अत्यन्त कुशल थी ही इसी कारण इसने एक बार लड़ाई में अपने विपक्षी राजा को भी फँसा लिया था। इसको कई लड़ायियों में विजय प्राप्त होने के कारण घोड़े, हाथी और हज़ारों रुपये इनाम में मिलते थे।

मारवाड़ में आज भी इस प्रसिद्ध चारिणी का गुण गान किया जाता है। इसके छंद भी मारवाड़ में गौरव की दृष्टि से पढ़े और गाये जाते हैं। स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसाद के पुस्तकालय में भी इसके गीतों का कोई खास संग्रह नहीं है। हाँ मुंशी जी को इसके संबंध में अनेक किंबदंतियाँ मालूम थीं। ऊमादे और झीमा में अत्यन्त गाढ़ी मैत्री थी। कहते हैं कि ऊमादे और झीमा की मृत्यु एक ही दिन के अंतर से हुई थी।

सुन्दरकुँवरि बाई

सुन्दरकुँवरि बाई जी रूपनगर तथा कृष्णगढ़ के राठौर क्षत्रिय वंशी महाराजा राजसिंह जी की बेटी थीं। इनका जन्म कार्तिक सुदी ६ सम्वत १७६१ में दिल्ली में हुआ था। इनकी माता का नाम महारानी बाँकावती था, जो एक प्रसिद्ध कवियित्री और भक्त थीं। इनके सगे भाई का नाम वीरसिंह था।

महाराज राजसिंह का सम्वत् १८०५ में देहान्त हो जाने से इनके घराने में राज्य सम्बन्धी कई झगड़े खड़े हो गये। इससे उस समय सुन्दरकुँवरि जी का विवाह न हो सका। ये तरुणावस्था में भी अपने घर के झंझटों में पड़ी रहीं और अनेक बाधाओं का सामना करती रहीं जिससे ३१ वर्ष की अवस्था तक ये कुँवारी रहीं।

सम्वत् १८२२ में इनके भतीजे महाराजा सरदारसिंह ने इनका विवाह रूपनगर में राघोगढ़ के खीची महाराजा बलभद्रसिंह के कुँवर बलवंतसिंह जी से कर दिया। विवाह हो जाने पर सुन्दरकुँवरि बाई जी राघोगढ़ गईं और वहाँ उन्होंने "रस-पुंज" नामक एक ग्रन्थ सम्वत् १८३४ में बनाया। विवाह के बाद भी बाई जी को अनेक दुःखों का सामना करना पड़ा। पीहर में ये भाइयों के विरोध और मरहठों के आक्रमण से घोर संकट में पड़ गई थीं। जब कर लेने के लिए इनके पति से पहले होल्कर ने लड़ाई ठानी तब इन्होंने छबड़ा और गूगोर

परगना देकर सुलह कर ली। किन्तु और राज्यों की निगाह भी इनपर लगी हुई थी। अंत में सेंधिया के सरदारों ने बलवंतसिंह जी को पकड़ कर ग्वालियर में क़ैद कर दिया और राघवगढ़ का किला ले लिया।

अंत में बलवंतसिंह जी ने जयपुर, जोधपुर और अपने कुटुंबी खीची सरदार शेरसिंह की सहायता से फिर राघोगढ़ को प्राप्त किया। बलवंतसिंह की मृत्यु के पश्चात उनके कुँवर जयसिंह राघोगढ़ के राजा हुए किंतु सेंधिया ने फिर राघोगढ़ ले लिया। जब सेंधिया से लड़ते लड़ते जयसिंह की भी मृत्यु हो गई तब जयसिंह की रानी ने अजीतसिंह को गोद लिया। फिर अँग्रेजी गवर्नमेन्ट ने महाराज दौलतराव सेंधिया से कह कर राघोगढ़ कुँवर अजीतसिंह को दिला दिया।

सुन्दरकुँवरि बाई के सम्बन्ध में अधिक बातों का पता नहीं लगता। राज्य के झगड़े के समय शायद ये सलेमाबाद में रही होंगी। क्योंकि वहीं इनके कुल का गुरुद्वारा है। इनके मृत्यु के सम्बन्ध में ठीक पता नहीं चलता। मुंशी देवीप्रसाद जी भी इनका पता नहीं लगा सके। उनका यही कहना है कि—"इनके अंतिम ग्रंथ का निर्माण-काल सम्वत् १८५३ है जब कि उनकी अवस्था ६३ वर्षकी हो गई थी। इसके पीछे ही वे किसी वर्ष महाराजा प्रतापसिंह के समय में स्वर्ग-धाम को प्राप्त हुई होगीं।"

बाई जी में बाल्यकाल ही से कविता के सुनने तथा पढ़ने का चाव था। जिस राजकुल में बाई जी का जन्म हुआ था, वह सदा से अच्छे

अच्छे कवियों का आश्रय-दाता रहा था। इनके पिता राजसिंह स्वयं अच्छे कवि थे। इनके भाई नागरीदास जी तो हिन्दी के बड़े ही प्रसिद्ध कवि थे। इनकी माता बाँकावती उपनाम व्रजदासी जी स्वयं भक्त और सुकवि थीं। इनकी भतीजी छत्रकुँवरि वाई जी पदों के बनाने में कुशल थीं। यही नहीं वल्कि इनके घराने की दासियाँ तक कविता करने में कुशल थीं। भक्त नागरीदास जी की दासी बनीठनी जी (रसिकबिहारी) भी भक्त कवि थीं। जिस कुल में इतनी कुशल और प्रवीण कवि और कवि-कान्तायें हो गई हैं, उसी कुल में सुन्दरकुँवरि वाई जी जन्म-ग्रहण कर क्यों न सुकवि और विद्वत्ता में प्रवीण होतीं। इन्होंने अत्यन्त भक्तिमयी ललित कविता की है।

इनके रचे हुए ११ ग्रन्थ पाये जाते हैं। पता नहीं इनके और भी कोई ग्रन्थ हैं या नहीं। मुंशी देवीप्रसाद जी का कहना है कि इनके ग्रन्थों का एक वड़ा संग्रह कृष्णगढ़ के महाराजा प्रतापसिंह जी की राजकुमारी के पास था। जब उनका विवाह बूँदी के महाराजा विष्णुसिंह जी के साथ हुआ तब वे इस संग्रह को अपने साथ बूंदी ले गईं। फिर उन्होंने उसे अपने पुत्र महाराज रामसिंह जी को दिया। उनके पीछे महाराज रघुवीरसिंह जी वहादुर जी० सी० एस० आई० की माँजी साहब को प्राप्त हुआ। बूँदी में चंद्रकला बाई एक कवियित्री हो गई हैं। उन्होंने माँजी से प्रार्थना की कि वे सुन्दरकुँवरि वाई जी के ग्रन्थों को छपवा दें। चंद्रकला वाई की प्रार्थना स्वीकार करके माँजी ने सुन्दरकुँवरि जी के सारे ग्रन्थों को प्रकाशित करवा के मुफ़्त बँटवाया।

सुन्दरकुँवरि बाई की रचना बड़ी ही मधुर और भक्तिरस से पूर्ण है। इन्होंने अपनी पुस्तकों में कृष्ण-लीला, भगवद्भक्ति का (निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुसार) बड़े प्रेम से वर्णन किया है। इनकी कविता बड़ी मधुर और आत्मा को शान्ति दिलाने वाली है। काव्य-गुणों की दृष्टि से इनकी कविता बड़े ऊँचे दर्जे की है। उसमें प्रसाद-गुण-प्रवाह की अधिकता है। हमारी राय में अच्छे सुकवियों से इनकी कविता टक्कर ले सकती है। इनकी रचित पुस्तकों के नाम इस प्रकार हैं:—

१. नेहनिधि-रचना (सम्वत् १८१७ भादों सुदी १३ रविवार रूपनगर में) २. वृन्दावन गोपी महात्म (रचना सम्वत् १८२३) ३. संकेत युगल ४. रस-पुंज ५. प्रेम-संपुट ६. सार संग्रह ७. रङ्गभर ८. गोपी-महात्म ९. भावना-प्रकाश १०. राम-रहस्य ११. पद तथा स्फुट कवित्त। हम इनकी पुस्तकों से यहाँ चुनी हुई कुछ रचनायें उद्धृत करते हैं:—

१

आज्ञा लहि घनश्याम की चली सखी वहि कुंज।*
जहाँ विराजत मानिनी श्री राधा-सुख पुंज॥
श्री राधा सुख-पुंज कुंज तिहि आई सहचरि।
वह कन्या को संग लिये प्रेमातुर मद भरि॥

---

*यह दूसरी देवी जी हैं जिन्होंने कुंडलिया छंद में आदि वाले शब्द का अंत में उपयोग नहीं किया और इस प्रकार कुंडलिया में रूपान्तर उपस्थित किया।

कहत भई करजोर निहोरन बात सयानिनि।
तजहु मान अब मान मान मो राखहु मानिनि॥

२

प्रिय के प्रान समान हो सीखी कहाँ सुभाय।
चख-चकोर आतुर चतुर चंदानन दरसाय॥
चंदानन दरसाय अरी हा! हा! है तोसों।
वृथा मान यह छोड़ि कही पिय की सुनि मोसों।
सूधै दृष्टि निहारि प्रिया सुनि प्रेम पहेली।
जल बिन झष अहि-मणि जु हीन इन गति उन पेली।

३

कहत श्याम मेरे नहीं तुम बिन कोऊ आन।
प्रानहु है प्यारी प्रिया काहि करत हो मान।
काहि करत हो मान चलहु पिय संग बिहारो।
राधा राधा मंत्र नाम वे रटत तिहारो॥
नायक नन्दकुमार सकल सुभ गुन के सागर।
तिनसों मान निवार बहुत बिनवत सुनि नागर॥

४

उतै अकेले कुंज मैं बैठे नन्दकिसोर।
तेरे हित सज्जा रचत विविध कुसुम दल जोर॥
विविध कुसुम दल-जोर तलप निज हाथ बनावत।

करि करि तेरो ध्यान कठिन सों छिनन बिहावत ॥
जाके सब आधीन सुतो आधीनो तेरे।
जिहिं मुख लखि व्रज जियत वहै तो मुख रुख हेरे ॥

५

श्री व्रजराज कुँवार वै सब व्रज-प्रान अधार।
सो कह जानत घर बसी तेरे चितहिं विचार ॥
तेरे चितहिं बिचार कहा कछु मानत नाहीं।
वे रस बस आधीन दीन ज्यों रहत सदाहीं ॥
यह अमान है मान ताहि तजि प्रान-पियारी।
उठि चलि मिल पिय संग दुचित ह्वै रहैं बिहारी ॥

६

लखि सनेह तुम दुहुँन को मेरो जीवन होहिं।
जन्म सफल मानहुँ तबै विहरत देखहुँ तोहिं ॥
बिहरत देखहुँ तोहिं तबै मो नैन सिरावैं।
तुम दुहुँ बिछुरत छिनहिं प्रान मेरे अकुलावैं ॥
तो सनेह के प्रेम-रसामृत छक्यो पियारो।
विरह विकल ह्वै रहे नेक चल दशा निहारो ॥

७

सब सुभ गुननिधि हो प्रिया पारंगता प्रवीन।
नखसिख तें माधुर्य्यता अद्‌भुत भरी नवीन ॥

अद्भुत भरी नवीन रूप गुन चातुरताई।
नहिं तोसी तिहुँलोक कहूँ प्यारी सुखदाई॥
तोहिं बुलावत अति अधीर पिय आतुर मोहन।
बैठे हैं वहि कुंज लग्यो चित्त तेरे गोहन॥

८

ऐसी पिय की प्रीति है तूही देख बिचार।
तान मान यों ही वृथा काहे करत अबार॥
काहे करत अवार बेगि उठि चल चन्दानन।
अद्भुत सोभावन्त देखि कैसो बृन्दावन॥
बल्लभ प्रान समान पीय आतुर हित तेरी।
तू हठि बैठी कहा कहै यह रसना मेरी॥

९

गति सौं मटकि चलै छबि सौं लटकि चालु,
उर बनमाल है विशाल लहकारी जू।
करकी किरन कटि ग्रीव की मुरनि दृग,
उझकि दुरनि भौहैं भाव भरी भारी जू॥
नाचत सुलफ नटनागर रकिस छैल,
लखि रिझवारी सब जात वारी वारी जू।
चित्र की लिखी सी राधे बिबस छकीसी रही,
आँखिन की पाँखें बाँधी या खिन विहारी जू॥

१०

स्याम रूप-सागर में नैर वार पारथ के,
नचत तरंग अंग अंग रगमगी है।
गाजन गहर धुनि बाजन मधुर बैन,
नागिन अलक जुग सोधै सगमगी है॥
भँवर त्रिभंगताई पान पै लुनाई तामैं,
मोती मणि जालन की जोति जगमगी है।
काम पौन प्रबल धुकाव लोपी पाज तातैं,
आज राधे लाज की जहाज डगमगी है॥

११

गागरि गिरी हैं कोऊ सीस उघरी हैं कोऊ,
सुध बिसरी हैं ते लगी हैं द्रुम डारि कै।
डगमग ह्वै कै भुजधारी गर द्वै के काहू,
बैठि गई कोऊ सीस मटकी उतारि कै॥
मैन-सर-पागी कोऊ घूमन हैं लागी कोऊ,
मोती मणि भूषन उतारैं डारैं वारि कै।
ऐसी गति हेरि इन्हैं ग्वार कहैं टेरि टेरि,
मदन दुहाई जीति मदन मुरारि कै॥

१२

मन रिझवार ये तो घायल सुभाव बिन,
सुभट करारे ज्यों सँभार को सँभारि कै।

ललिता कहत अरे ! सुनहु गँवार ग्वार,
करत उभार काहे ऐसे गाल मारि कै ॥
आछे जयवार देखे मदन मुरारि जू को,
रहौ रे लबार गिरिवान मुँह डारि कै ।
नाचत नचाय लीन्हें कैसे मनमाने कीन्हें,
जीत है हमारी बृषभानु की कुँवारि कै ॥

१३

श्री बृषभानु-सुता मन-मोहन जीवन प्रान अधार पियारी ।
चन्द्रमुखी सुनिहारन आतुर चातुर चित्त चकोर बिहारी ॥
जा पद-पंकज के अलि लोचन स्याम के लोभित सोभित भारी ।
हौं बलिहारी सदा पग पै नवनेह नबेली सदा मतवारी ॥

१४

सुन्दर स्याम मनोहर मूरति श्री ब्रजराज कुँवार बिहारी ।
मोरपखा सिर गुंज हरा बनमाल गरे कर बंसिका धारी ॥
भूषन अंग के संग सुशोभित लोभित होत लखैं ब्रजनारी ।
राधिका-वल्लभ मो दृग-गेह बसौ नवनेह रहौं मतवारी ॥

१५

बोलि कै जिठानी दिवरानी श्री ब्रजेसुरी जू,
गोपिन कुँवारी औ दुलारी सब संग लै ।
आँगन उदार ठौर ठौरहिं विविध झूलैं,
झूलत झुलावत लड़ावत उमंग लै ॥

हँसहिं, हँसावैं सब मोद सरसावैं, अति,
चुहुल मचावैं छवि छावैं यहि वंग लै।
रहस रचावैं, पिया नवहिं, नवावैं तहां,
झुकि झुँझलावैं मुसकावैं कहैं रंग लै॥

१६

जित तित झूलैं सब गोपिका समूह झुंड,
झमकि झकोरन की सोभा सरसावहीं।
पटुरी की डोरन हिलोरन द्रुमन मानौं,
अछुरी दै घटा भौंर ओट घन आवहीं॥
कोऊ चवपालन चलन सुर-रमनी ज्यों,
रीझती जू रमन विमानन पै धावहीं।
फिरकी कै फेरे लौं फिरत दृग-संग मन,
रूप-जाल-चक्र परि फिरन न पावहीं॥

१७

मोतिन की बेली सी मुरानी सकुचान भरी,
आनन फिरानी कर कानन धरत है।
चकित चितौन ह्वै अजान मुसुकान दाबै,
फाबै भाव भरी भौंहैं चित मैं भरत है॥
मैन मधुवान सजे मुक्तन लता पै चंद,
घूँघट के कोट मानो मृगया करत है।

सारँग सुजान स्याम धाय घट घूमैं अंग,
महर उमंग मन मोहिनी परत है॥

१८

लोने दृग कोने पलकानन छुवत चलि,
झीने पट देखि पिय दृग गति पंग है।
पौन के परस होत हलचल घूँघट ज्यों,
त्योंही त्यों बिबस छकि साँवरे को अंग है॥
आन कान लागि मन जान कहै प्राणप्यारी,
कैसे ये कहाँ ते लरो अचरज ढंग है।
मुख के दुकूल झूल झूलन झुलानैं उर,
सबहि न जानैं नर एतहुँ फिरंग हैं॥

१९

मन-मोहन के दृग की गति तौ मन संग लै घूँघट की ठगइ।
लखि सास लखात किशोरी लजात सु भौंहैं कछू इतरान ठई॥
इतरानहिं की ललचान इतै लगि छूटन नैनन आव पई।
रहि कान का लाजहिं रीझि गई इनहूँ ते वहै रिझवारि भई॥

२०

कचकच खण्ड है ब्रह्मण्ड कोटि कोटि तेरे,
मेरे रोम-कूप ज्यों पैं अघ उफनात है।
तेरे लच्छ विरद अपार मेरे अपलच्छ,
तेरे सर्व सक्त मेरे अक्त तिलमात है॥

औगुनहि एही जग मेरे स्वामी गुनग्राही,
तेरे आसरे तें गनिकाहू गति पात है।
गरीब नेवाज तैं गरीब मैं निवाजे क्यों न,
लाख लाख बातन की सूधी एक बात है॥

२१

त्राहि त्राहि वृषभानु-नंदिनी तोकों मेरी लाज।
मन-मलाह के परी भरोसे बूड़त जन्म-जहाज॥
उदधि अथाह थाह नहिं पइयत प्रबल पवन की सोप।
काम, क्रोध, मद, लोभ भयानक लहरन को अति कोप॥
ग्रसन पसारि रहे सुख तामहिं कोटि ग्राह से जेते।
बीच धार तहँ नाव पुरानी तामहिं धोखे केते॥
जो लगि सुभ मग करै पार यहि सो केवट मति नीच।
वही बात अति ही बौरानो चहत डुबोवन बीच॥
याको कछु उपचार न लागत हिय हीनत है मेरो।
सुन्दरकुँवरि बाँह गहि स्वामिनि एक भरोसो तेरो॥

२२

तजौ चोरी की घात अयान की।
नंदराय के लला लड़ौहै सुनलो बात सयान की॥
कीरति पठई दुलहा देखन तिय आई बरसान की।
सुन्दरकुँवरि सुलच्छन गुननिध ब्याहोगे वृषभान की॥
आई है ते जाय कहेगी बात रावरे बान की।

सास कहेगी चोर कुँवर को जैहै वह प्रिय प्रान की ॥
इक तो कारो चोर भयो फिर दइया छाप लजान की ।
सुनि हँसिहैं चंदाननि दुलहो जिहँ उपमा न समान की ॥

२३

मेरी प्रान-सजीवन राधा ।
कब तो बदन सुधाधर दरसै यों अँखियन हरै बाधा ॥
ठमकि ठमकि लरिकौहीं चालत आव सामुहे मेरे ।
रस के बचन पियूष पोष के कर गहि बैठहु मेरे ॥
रहसि रंग की भरी उमंगनि ले चल संग लगाय ।
निभृत नवल निकुंज विनोदन विलसत सुख-दरसाय ॥
रंगमहल संकेत सुगल कै टहलिन करतु सहेली ।
आज्ञा लहौं रहौं तहँ तटपर बोलत प्रेम-पहेली ॥
मन-मंजरी जु कीन्हों किंकरि अपनावहु किन बेग ।
सुन्दरकुँवरि स्वामिनी राधा हिय की हरो उदेग ॥

२४

चतुरंग चमू अति छबि विराज, मणि कनक साजि गजराज बाज ।
पुनि दुरद पीठ राजै निसान, धुनि होत दुंदुभी घन लजान ॥
केउ चलै गजन पर गुनी नाम, गावैं जु कीर्ति कीनी सुदाम ।
पुनि चढ़े अश्व सोभित अपार, छत्रैत सुभट साजे सिँगार ॥
पखरैत किते हय पै सवार, जिन जिरह टोप आपै अपार ।
राजे अनंत सौंवत सुढंग, कर गहै चाप कटि कसि निषंग ॥

सुन्दर स्वर की शोभा अनूप, सुरगन विमान नहिं लगत जूप।
कसि कमर अमर से चले वीर, अति भई बाहिनी की जु भीर।
पैदल दल शोभा के समूह, लखि चकित रहत सुर विवध गूह।
है कितौं कटक नाहिन प्रमान, सोभा-समुद्र मनो उमड़ आन॥

२५

बाजत नगारे अरु गाजत गयंद भारे,
भयमान अरी की नरीन गही डरी हैं।
दल पारावार को अपार रव रह्यो छाय,
भाजैं राज राव उर उठैं धरधरी हैं॥
बाँधत जे वान सुर ताके तेऊ थहराने,
केऊ नजराने दै पुरी की रच्छा करी हैं।
अलका मैं अलकनि मेरु माहिं पलकन,
सूर की बधू कै हू चमू की रज भरी हैं॥

२६

घन की घटा सी चढ़ी धूर सैन पायन की,
दामिनि झमक छबि तामैं बरछान कै।
पीठ गजराजहिं निसान फहरान पीत,
बिवधे मणिन दण्ड इन्दु धनुवान कै॥
धाय रवि छादित अराम मग छाँह चलैं,
प्रेम के विनोदी रामरंग सरसान कै।

जानहु सुजान भान-कुल के बड़े के कान,
छायो मानो रज को वितान आसमान कै ॥

२७

चारु चमूँ जु अपार लसैं गजराज को पीठ पै होत नगारो।
नीकी अनीकिनि पीत निशान यों सोहत है छवि नैन निहारो॥
साँवरे रंग अनूपम अंग अनंगहु तौ सम नाहिं बिचारो।
आयव हे सखि औध को रावसु पाहन पौव उड़ावन हारो॥



चंपादे

चंपादे जैसलमेर के रात्र लहरराज की पुत्री और बीकानेर के राजा राजसिंह के भाई पृथ्वीराज की रानी थीं। सं० १८१० के आस-पास पृथ्वीराज का समय माना जाता है। ये एक सुप्रसिद्ध और निपुण कवि थे। डिंगल (राजस्थानी) और पिंगल (व्रजभाषा) दोनों ही भाषाओं पर इनका पूरा अधिकार था। डिंगल भाषा में 'प्रेम-दीपका' नामक पुस्तक आपकी उच्च कोटि की रचना है।

महाराज पृथ्वीराज एक बड़े ही प्रतिभावान और रसज्ञ कवि थे। इनकी प्रथम स्त्री का नाम लीलादे था। जो इनके अनुकूल ही सुन्दर, रसीली और प्रवीण स्त्री थी। लीलादे के समान स्त्री-रत्न पाकर महाराज फूले न समाते थे। किन्तु काल-चक्र की गति बड़ी ही विचित्र है। अंत में महाराज पृथ्वीराज पर भी वज्रपात हुआ। रानी लीलादे का युवावस्था में ही एक साधारण बीमारी से ही देहान्त हो गया। इस आकस्मिक दुर्घटना के कारण महाराज को बड़ा दुःख हुआ। जब उन्होंने लीलादे का सुन्दर, सुकुमार शरीर आग में जलते हुए देखा तो अति व्याकुल होकर निम्नलिखित दोहा कहा :—

तो राँध्यो नहिं खाव[1]स्याँ रे, बास दे निसड्ड[2]।
मों देखत तू बालिया,[3] लील रहंद्रा हड्ड[4]॥

---

१. खाऊंगा २. अग्नि ३. जला दिया ४. हड्डी।

अर्थात्—ऐ अग्नि! तुझसे पका हुआ भोजन मैं आज से कदापि न करूँगा। क्योंकि तूने मेरे देखते देखते लीलादे को जला डाला। अब केवल हड्डियाँ ही शेष रह गईं।

संतति के कारण इन्हें लोगों के आग्रह से वाध्य होकर अपना विवाह फिर करना पड़ा। इस बार इनका विवाह चंपादे के साथ हुआ। चंपादे रूप-लावण्य, गुण-योवन में लीलादे से भी बढ़ कर निकली। इसने आते ही पृथ्वीराज की उदासीनता को दूर कर दिया। थोड़े ही दिन में यह हाल हुआ कि चंपादे को देखे बिना महाराज को पल भर भी कल नहीं पड़ती थी। चंपादे पर मुग्ध होकर पृथ्वीराज ने उसकी प्रशंसा में कुछ दोहे बनाये थे। जिनमें से एक यह है :—

चाँपा तू हररा जसी, हँस कर वदन दिखाय।
मो मन पात* कुपात ज्यों, कबहूँ तृप्त न जाय॥

पति की संगति से चंपादे भी कवि हो गई। एक दिन महाराज पृथ्वीराज 'रुक्मिणी-वेष' में महाराज भीष्म के विलास-भवनों का वर्णन लिख रहे थे। एक स्थान पर—'चंदन-पाट'—शब्द से आगे का शब्द नहीं सूझता था। वे बार बार 'चंदन-पाट' 'चंदन-पाट' कह रहे थे। चंपादे पास ही बैठी हुई महाराज की इन शब्दावली

*पात-कुपात—उस चारण कवि को कहते हैं जो दान के धन से कभी तृप्त नहीं होता।

पर विचार कर रही थी। आखिरकार वह बोल उठी :— "कपाटहि चंदन।" बस :—

"चंदन पाट कपाटहि चंदन"

पूरा चरण बन गया। महाराज पृथ्वीराज अपनी प्रिय रानी की कवित्व-शक्ति देख कर बहुत ही प्रसन्न हुए।

चंपादे जितनी सुन्दर और सुशील थी उससे अधिक वह भावुक और सहृदया थी। वह मौके पर कभी नहीं चूकती थी। एक दिन महाराज पृथ्वीराज दर्पण सामने रख कर कंघे द्वारा बाल सँवार रहे थे कि उन्हें अपनी दाढ़ी में एक सफ़ेद बाल दिखाई पड़ा। उसे उन्होंने उखाड़ कर दूर फेंक दिया। यह लीला चंपादे देख रही थी। वह मुँह फेर कर कुछ मुस्कुराने लगी। महाराज ने दर्पण में उसका प्रतिबिम्ब देख कर पीछे देखा। उन्होंने लज्जित होकर निम्नलिखित दोहे कहे :—

पीथल[1] धोला आवियाँ,[2] बहुली लग्गी खोड़[3]।
पूरे जोबन मदमणी, ऊभी[4] मूँह मरोड़[5]॥
पीथल पली टमुक्कियाँ, बहुली लग गइ खोड़।
सामीनी हाँसा करे, ताली दे मुख मोड़॥
पीथल पली टमुक्कियाँ, बहुली लागी खोड़।
मरवण मत्त गयन्द ज्यों, ऊभी मुख्ख मरोड़॥

---

१. सफ़ेद २. आगये ३. ऐब ४. खड़ी है ५. फेरकर।

चंपादे ने उनकी मानसिक ग्लानि मिटाने के लिए मधुर-मंद-हास्य पूर्वक कहा—नहीं साहिब जी ! यों नहीं यों समझिये :—

प्यारी कहे पीथल[1] सुनौ, धोलाँ दिस मत जोय।
नराँ नाहराँ डिगमराँ,[2] पाकाँ[3] ही रस होय॥
खेड़ज[4] पक्काँ धोरियाँ,[5] पंथज[6] गउघाँ[7] पाव।
नराँ तुरंगाँ बनफलाँ, पक्काँ पक्काँ साव॥

हम नहीं कह सकते कि इन दोहों से महाराज पृथ्वीराज की मानसिक ग्लानि दूर हुई वा नहीं।

चंपादे राजपूताने की वीर रमणी थी। यह कितनी ही लड़ाइयों में महाराज पृथ्वीराज के साथ भी गई थी। इसने लड़ाइयों में बड़ी बहादुरी से काम किया था। महाराज पृथ्वीराज संवत् १८१० में मौजूद थे। इसलिए चंपादे का भी यही समय माना जा सकता है। चंपादे का जन्म-संवत् का ठीक ठीक पता नहीं चलता।

यह वही इतिहास प्रसिद्ध चंपादे रानी है जो नौरोज के जल्सों में बादशाह अकबर के चंगुल में फँस गई थी और सतीत्व-रक्षा का कोई अन्य उपाय न देख कर कटार निकाल बादशाह की छाती पर चढ़ बैठी थी। रानी की वीरता ने लम्पट अकबर को हर तरह लाचार कर दिया।

---

१. प्रीतम २. नर नाहर तथा दिगम्बर (जोगी आदि) के बहु वचन। ३. पक्का ४. खेती ५. बैल ६. रास्ता ७. ऊँट।

उसने मज़बूर होकर आयंदा भले घरों की बहू-बेटियों को मीना बाज़ार में बुलाने की कसम खाई और माता कह रानी चंपादे से क्षमा प्रार्थना की, तब उसके प्राण बचे। इस वीर रानी ने इस प्रकार अनेक रमणियों का सतीत्व, जो भविष्य में अकबर द्वारा नष्ट होता, अपनी अलौकिक वीरता से बचाकर भारत-माता का मुखोज्ज्वल किया।



विरंजोकुँवरि

श्रीमती विरंजीकुँवरि जी जौनपुर के गढ़वाल नामक गाँव की रहने वाली थीं। आपके पति का नाम साहिबदीन था। साहिबदीन सिंह दुर्गवंशी ठाकुर अमरसिंह के पुत्र थे। विरंजीकुँवरि की बाल्यकाल से ही कविता करने की रुचि हो गई थी। अपनी कवितायें प्रायः ये अपने पति को सुनाया करतीं थीं। जौनपुर में पूछ-ताछ करने पर हमें यह पता चला है कि अंत में ये सन्यासिन हो गईं थीं और स्थान-स्थान पर साधुओं की संगति में भी रहा करतीं थीं।

इनकी मृत्यु कब हुई और जन्म कब हुआ, इस सम्बन्ध में अभी ठीक ठीक पता नहीं चल सका। इन्होंने संवत १९०५ में 'सती-विलास' नामका एक ग्रन्थ बनाया है। 'सती-विलास' में स्त्रियों के सम्बन्ध की बातें लिखी गई हैं। 'सती-विलास' में इन्होंने अपने कुटुम्ब का इस प्रकार परिचय दिया है :—

दोहा

सूर्य्यवंश में रघु भये, रघुवंशी श्रीराम।
तासु तनय लवकुश भये, द्वीखित पूरन काम॥
द्वीखित वंश उदित भये, दुर्गवंश महराज।
तिलक जुक्त सुभ सोभिजे, सत्य धर्म्म कर साज॥
आदि सलख ते अलिल भे, तेहि ते भे निरँकार।

ताहि निरंजन सुत भयो, तेहि ते ब्रह्म उदार ॥
सहससीस को विधि भये, तेहि ते भे सत सीस।
अष्ट सीस ताके भये, कमलनाभि प्रजनीस ॥
जो बरनौ यहि भांति से, बाढ़े ग्रन्थ अपार।
ताही ते कछु स्वल्प करि, कहव वंस विस्तार ॥
आदि अलख अरु सूर्य्य त, पुस्त इगारह जान।
पुस्त अठावन फिर गये, भे रघु परम सुजान ॥
आठ पुस्त रघुबंस गे, तव जनमे द्दगसेन।
रामचंद्र जू को छनति, द्वीखिन वंशन सेन ॥
प्रथम सेन पद द्वित गये, जुग सत पुस्त प्रमान।
पाछे साढ़े तीन से, पाल सो पदवी जान ॥
साहि देव औ सिंह पद, पुस्त सहस गे बीत।
ताके पीछे समन नृप, निज पद पुर करि प्रीति ॥
समन हुते फिर बानवे, गई पुस्त यहि भांति।
गरिबसाहि राजा भये, दुर्गदास जेहिं नात ॥
दुर्गदास बल-बुद्धि से, बसि लीन्हें मड़वार।
महातेज ताको जगे, शत्रु भये संहार ॥
ताके तेरही पुस्त भे, अमरसिंह हरिभक्त।
तासु तनय मम कंत है, जानत हैं तेहिं भक्त ॥
जैसे बासन कोटि सों, बास सो लघु नर होय।
कितनो दिन जो बीतई, बाँस कहावे सोय ॥

त्योंहीं विधि महराज के, बंस-प्रसिद्ध उदार।
ताते सब नर कहत हैं, श्री महराज कुमार॥

सोरठा

रामचंद्र कर दास, अमरसिंह मन बचन तें।
पुत्र होन की आस, सेयो हरि-पद-कमल दृढ़॥

दोहा

सेवत वंश गोपाल के, तेहिं सुत साहिबदीन।
सो प्रभु तत्व विचारि के, रहत ब्रह्म में लीन॥

यह परिचय इन्होंने अपनी ससुरालवालों का दिया है। उक्त दोहों से प्रगट होता है कि इनके पति स्वयं भगवद्भक्त थे और ईश्वर की आराधना में लीन रहते थे। इन्होंने 'सती-विलास' में अपने नैहर का भी ज़िक्र किया है। वह इस प्रकार है :--

दोहा

अब भाखौं माइक अचल, काशी शुभ अस्थान।
जाके दरसन हेत हित, देव करहिं प्रस्थान॥
विमल वंश रघुवंश के, बहै बयार सरोह।
ग्राम नेवादा में विदित, मम पितु सीतलसींह॥

इन दोहों से प्रगट होता है कि इनका नैहर बनारस ज़िले के नेवादा ग्राम में था। इनके पिता का नाम शीतलसिंह था। 'सती-विलास' ग्रन्थ इनका प्रकाशित हो गया है। हमारे पास यह पुस्तक है। इनकी कविता साधारण दर्जे की है। लेकिन तो भी स्त्री होने से ये कविता

साधारणतया अच्छी कर लेती थीं। 'सती-विलास' में पातिव्रत-धर्म्म आदि स्त्रियोचित बातों पर प्रकाश डाला गया है। हम इनकी कुछ कवितायें नीचे उद्धृत हैं :—

१

जिले जौनपुर में गड़वारा। दुर्गवंश तहँ बसहिं उदारा ॥
कोल्हा ग्राम कुटी तृन साला। तहँ बसि कंत बितावत काला ॥
तहाँ ज्ञान अनुभव तम पाये। सो करि प्रगट ग्रन्थ हम गाये ॥
बान सून्य अरु अंक मिलाई। तापर चन्द देहु पुनि भाई ॥*
शून्य सप्त मुनि इन्दु बखानो। यथा अंक साके पहचानो ॥†
सावन सित पूनव जब आई। तब मेरे मन हुलसत भाई ॥
जाँचेउ धर्म्म पतिव्रत केरा। जाते करूँ सब धर्म बसेरा ॥
का पतिव्रता का व्यवहारू। कवन धर्म्म तिय सुगति सिँगारू ॥
कवन वर्त पति के पिय भाखौ। जेहिं हित जीय देह में राखौ ॥
अब पिय निरनय देहु बताई। मैं गँवारि कछु जानि न पाई ॥
धरौं सदा पति पद कर पूजा। जानौ देव अवर नहिं दूजा ॥
पढ़ौं सुनौं पति संग पुराना। बूझौं वेद-शास्त्र कर ज्ञाना ॥
आतम-ज्ञान अरु तत्त्व विभेदा। ब्रह्म-ज्ञान कछु भावित वेदा ॥
सो सब सुनत रहौं दिन राती। एक लालसा मो मति माती ॥
जोरि दुओ कर पति सन पूछा। यह तो धर्म्म तियन कर छूछा ॥

---

* संवत् १८०५। † संवत् १७७५।

कहौं धर्म्म पतिवर्त विचारा। जेहिं सुनि नारि होहिं भव-पारा।।
किमि कर रहे चरन मँह सेवी। जेहिते धर्म्म-नारि होइ देवी।।

२

तीरथ सों कछु नेम नहीं,
अरु जानों नहीं कछु देव पुजारी।
चाल कुचाल हमें नहिं मालुम,
यातें कहैं सब लोग गँवारी।।
ज्ञान विवेक कहा लहे नारि,
सदा जेहिं निर्धन संत विचारी।
तातें 'बिरंजी' विचारि कहै,
मोहि देहु सियापति कंत सों यारी।।

३

होइ मलीन कुरूप भयावनि,
जाहि निहारि घिनात हैं लोगू।
सोऊ भजे पति के पद-पंकज,
जाइ करे सति लोक में भोगू।।
ताहि सराहत हैं त्रिधि शेष,
महेश बखानै बिसारि के जोगू।
यातें "बिरंजी" विचारि कहै,
पति के पद की तिय किंकरि होगू।।

रत्नकुँवरि बीबी

बीबी रत्नकुँवरि का जन्म मुर्शिदाबाद के प्रसिद्ध जगत सेठ के घराने में हुआ था। इनका जीवन बड़ा आनन्दमय था। इन्होंने वृद्धावस्था तक अपने पुत्र-पौत्रों के साथ अपना जीवन सुखपूर्वक व्यतीत किया। ये बड़ी पंडिता और विदुषी थीं। राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' इनके पौत्र थे। इनका स्वभ.व सरल और आचरण प्रशंनीय था। ये वृद्धावस्था में योगियों की भाँति रहा करती थीं। राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' ने इनका परिचय इस प्रकार दिया है :—

"वह संस्कृत में बड़ी पंडिता थीं, छहों शास्त्र की वेत्ता, फारसी भाषा भी इतनी जानतीं थीं कि मौलाना रूम की मसनवी और दीवान शम्स तबरेज़ जब कभी हमारे पिता पढ़कर सुनाते तो उसका सम्पूर्ण आशय समझ लेतीं थीं। गाने-बजाने में अत्यन्त निपुण थीं। चिकित्सा यूनानी और हिन्दुस्तानी दोनो प्रकार की जानती थीं। योगाभ्यास में परिपक्व थी। यम-नियम और वृत्ति ऋषियों और मुनियों की सी थी। सत्तर वर्ष की अवस्था में भी बाल काले थे तथा आखों में ज्योति बालकों की सी थी। वह हमारी दादी थीं। इससे हमको अब उनकी अधिक प्रशंसा लिखने में लाज आती है। परन्तु जो साधु संत और पण्डित लोग उस समय के उनके जानने वाले काशी में वर्तमान हैं, वे उनके गुणों को अद्यावधि स्मरण करते हैं।"

उपरोक्त कथानक से यह मालूम होता है कि बीबी रत्नकुँवरि वास्तव में बड़ी योग्य और साधु रमणी थीं। शायद उन्होंने अपना अंतिम काल काशी में ही बिताया था।

इनका एक ग्रंथ 'प्रेम-रत्न' राजा शिवप्रसाद 'सितारे-हिन्द' ने संवत् १६४५ में प्रकाशित कराया था। यह ग्रंथ हमारे पास मौजूद है। इस पुस्तक में "श्रीकृष्ण व्रजचंद आनंद-कंद की लीलाओं का उल्लेख कविता में परम प्रेम और प्रचुर प्रीति से किया गया है।" पुस्तक में कुल ७६ पृष्ठ हैं। सारा वर्णन दोहा और चौपाई छंदों में किया गया है।* इस पुस्तक की भाषा और भाव को देख कर यह प्रकट होता है कि रत्नकुँवरि बीबी भाषा में भी काफ़ी दखल रखती थीं। कविता इनकी अच्छी है। पता नहीं इन्होंने और कोई ग्रन्थ बनाया है या नहीं। हमारे देखने में इनका और कोई अन्य ग्रंथ नहीं आया। 'प्रेम-रत्न' से कुछ छंद यहाँ उद्धृत किये जाते हैं:—

चौपाई

भक्ताधीन विरद प्रभु केरे। गावत वाणी वेद घनेरे।
संतत रहत भक्त के पासा। पुरवत हैं प्रभु तिनकी आसा॥
जे सप्रेम हरि सों मन लावैं। तिनको कबहूँ नहिं बिसरावैं॥
ग्राह-ग्रसित गजराज छुड़ाये। गरुड़ छाँड़ि तहँ आतुर धाये॥

*यह दूसरी देवी हैं जिन्होंने प्रबंध-काव्योचित दोहा-चौपाई वाली शैली में कृष्ण-काव्य लिखा है।

पुनि प्रभु पाण्डव जरत बचायो । द्रुपद-सुता को बसन बढ़ायो ॥
अजामील यम ते रखि लीन्हों । भजन प्रताप ध्रुवहिं वर दीन्हों ॥
जन प्रहलाद अभय करि थाप्यो । ताही बार न बारहि व्याप्यो ॥
जो जन मन ते ध्यावहिं जैसे । ताकहुँ प्रभु फल देते वैसे ॥
अग जग सकल विश्व के स्वामी । सर्वमयी सब अन्तरयामी ॥
प्रेम-युक्त व्रज-जन मन ध्यायो । ताते प्रेम हृदय हरि छायो ॥
प्रभु के मन यह रहत सदाहीं । व्रज-बासिन तें भेंट्यो नाहीं ॥
एक दिन दिनकर-ग्रहण भयो जब । बहु नर-नारी जात चले तब ॥
जानि परम कुरुखेतहि पावन । सकल चले तहँ ग्रहण नहावन ॥
यह सुनि यदुनन्दन मन मानी । एक पंथ द्वै कारज ठानी ॥
कह्यो यदुवपति यदुकुल केतू । हम सब चलों चले कुरुखेतू ॥
जेते अरु पुरजन पुरवासी । तिनहुँ कहहु यह बात प्रकासी ॥
ग्रहण नहाहु सकल तहँ जाई । सुनि आयसु सब शीश चढ़ाई ॥
मुदित सकल आँनद रस पागे । गवन साज साजन कहँ लागे ॥
अधिकारिन सब काज सँवारे । नाना बाहन सुभग सिँगारे ॥
सुनत परसपर सब नर नारी । घर-घर निज-निज सौंज सँवारी ॥
द्वारावति के जिते निवासू । चले जात सब परम हुलासू ॥
क.ढ्यो कटक अति परम विशाला । चले संग अगणित भूपाला ॥
कारे करिवर गरजन लागे । सावन घन जनु लखि अनुरागे ॥
अगणित तुरँग चले हिहिनावत । खच्चर बसह ऊँट अररावत ॥
अपित भीर मग परत न पायो । धूरि धुंध नभ-मंडल छायो ॥

मग में होत कोलाहल भारी। मुदित करत कौतुक नर-नारी ॥
यों पहुँचे कुरुखेतहिं जाई। परि गो कटक तहाँ छिति छाई ॥
हाट बजार दुकाना सुहाई। तहँ सब वस्तु मिलत मन भाई ॥
देश देश के यात्री आये। भये तहाँ मिलि अनँद बधाये ॥

दोहा

बरन बरन वर तंबुवन, दीन्हो तान वितान।
अति फूले फूले फिरत, डेरा परत न जान ॥
जबते मथुरा तन चितै, तजि ब्रज-जन यदुनाथ।
विरह विथा वृज में बढ़ी, तहँ सब भये अनाथ ॥
प्रिय तीरथ कुरुखेत सब, आये ग्रहण नहान।
यदुपति राधा गोप गण, नन्दादिक वृषभान ॥
गोप एक नट-भेष सजि, आयो बीच बजार।
तहँ खरभर लशकर पर्यो, सो अति रह्यो निहार ॥
इक यादव हँसिके कह्यो, कहाँ तुम्हारो बास।
अति सुन्दर तन छवि बनी, नाम कहहु परकास ॥
तब उनहू कहि तुम कहहु, काके सँग कित ठाउँ।
द्वारावति-पति कटक यह, कह्यो यदुव निज नाउँ ॥
सुनत द्वारका नाम तिहि, लियो विरह उर छाय।
हा नँद-नंदन कन्त कहि, गयो ग्वाल मुरझाय ॥

चौपाई

इक गोपाल संग मम जाई। बस्यो नृपति ह्वै सोइ पुर छाई ॥

हम कहँ छाँड़ि भयो सो न्यारे। ताही बिनु सब भये दुखारे॥
तुम लशकरिये भूप उदारा। कत पूछत हम जात गँवारा॥
सुनि यादव कछु मन बिहँसाना। तुम ब्रजबासी हौ हम जाना॥
जिनको तुम भाषत गोपाला। उनहीं को यह कटक रिसाला॥
अब दुख मेटहु भेंटहु तिनते। गयो ग्वाल हरि-कटकहि सुनते॥
तिनकहँ आगम सगुन जनायो। कछु अनंद ह्वै है मन आयो॥
ग्वालहिं आवत रहे निहारी। गद्गद् कंठ न सकत सँभारी॥
दूरहिं ते बोल्यो गोपाला। मनमोहन आये नँदलाला॥
जिन बिन सब ब्रज भये दुखारे। ते आये इहँ प्रान-पियारे॥
सुनि गोपिन नहिं परत पत्यारो। कहँ ऐसो है पुण्य हमारो॥
सुनत नंद-नैनन जल छाये। ऐसे भाग कहाँ हम पाये॥
लोग लोग सब पूछत सारे। कहँ उतरे प्राणन के प्यारे॥
सुनतहिं यशुमति ह्वै गई बौरी। ता ग्वालहिं पूछत उठि दौरी॥
आये श्याम सत्य कहु भैया। मोहिं दिखावहु नेक कन्हैया॥
निज लालन को कंठ लगाऊँ। दुसह विरह को ताप नसाऊँ॥
कह अब गहरु करत बेकाजहि। भेंटहु बेगि सकल ब्रजराजहि॥
तब ऐसे भाष्यो नँदराई। अब हरि होंहिं न ब्रज की नाईं॥
मणिन खचित बैठत सिंहासन। चँवर छत्र कर गहे खवासन॥
अतिहि भीर नृप वास न पावें। द्वारहि ते वहु फिरि फिरि जावें॥
छत्रपतिहि छरियन बिलगावत। तहँ हमसब की कौन चलावत॥
छपन कोटि यदु छांड़ि सगाते। क्यों मानै धायन के नाते॥

कोउ कह ऐसे कैसे जैहैं। हमकहुँ लखि हरिमनहिं लजैहैं ॥
कोउ कह मणि आभूषण पहिरे। अंबर वर विचित्र रँग गहिरे ॥
कोउ कह हम तो ऐसहि जाहीं। अब तो कछु बनिआवत नाहीं ॥
हरि को देखि परम सुख पैहैं। ता अनुचर कर मारहु खैहैं ॥
कोउ कह हम नीके भुज परि हैं। भे राजा तो का धौं करि हैं ॥
करत मनोरथ कोउ मन माहीं। कोऊ खोज लेन उठि जाहीं ॥
कहत परस्पर मुदित गुवाला। अब तो फिरि आये गोपाला ॥
इक कह अब गोकुल लै जैहैं। हमते बहुरि जान कहँ पैहैं ॥
कोउ नाचत है दै कर तारी। बहुविधि करत कुलाहल भारी ॥
एक एकन ते देत बधाई। मानहुँ सबन गई निधि पाई ॥

दोहा

भये मगन सब प्रेम रस, भूलि गए निज देह।
लघु दीरघ बै नारि नर, सुमिरत श्याम-सनेह ॥
कहत परस्पर युवति मिलि, लै लै कर अँकवार।
प्रीतम आये का सखी, तन साजहु शृंगार ॥
इक आई आनँद उमंगि, प्यारिहिं देत बधाय।
प्राणनाथ सुखदैन इहँ, मोहन उतरे आय ॥
तहँ राधा को कछु दशा, वर्णत आवे नाहिं।
मलिन वेश भूषण रहित, बिवस रहित तन माहिं ॥
कबहुँ झुरावत विरह-वश, पीत वरण ह्वै जाय।
कबहूँ व्यापत अरुणता, प्रेम-मगन मुद छाय ॥

कान्ह कान्ह कबहूँ कहत, कबहुँ रटत निज नाम।
मौन साधि रहि जात जब, श्रमित होत अति बाम॥
चख चितवत जित तित हरी, श्रवण मुरलि धुनि-लीन।
श्याम बास बसि नाक मणि, रूप-पयोनिधि मीन॥
तन मध धन गृह जनन की, नेकहु सुधि तिहिं नाहिं।
चितवत काहू नहिं दृगन, लगन लगी उर माहिं॥



प्रतापबाला

श्री प्रतापबाला का जन्म गुजरात अन्तर्गत जामनगर राज्य में संवत १८६१ में हुआ। इनके पिता का नाम रिड़मल जी था। इनका विवाह संवत् १६०८ में जोधपुर के महाराजा तख़्त सिंह के साथ हुआ। इनके विवाह में इनके भाई जाम वीभा जी ने लाखों रुपये खर्च किये थे।

महाराज तख़्तसिंह के बहुत सी रानियाँ थीं किन्तु इनका विशेष आदर होता था। क्योंकि ये बहुत सुशीला और बुद्धिमती थीं। अपने राज्य-काज के कामों में भी ये दिलचस्पी लेती थीं। इनकी दान-शीलता भी अत्यन्त सराहनीय थी। एक बार मारवाड़ में सम्वत् १६२५ में अकाल पड़ा। सैकड़ों लोग भूखों मरने लगे। जाम-सुता श्री प्रतापबाला जी की उदारता उसी समय प्रगट हुई। इन्होने अपनी प्रजा के लिए लाखों रुपये का अन्न वितरण करवाया। राजपूताने की रिपोर्ट में लिखा है—"मारवाड़ में जब संवत् १६२५ में अकाल पड़ा तब अधिक दान देने की उदारता श्री जामसुता रानी प्रतापबाला ने दिखाया। वे प्रति ७ मन पका हुआ भोजन गरीबों को बाँटती थीं। उच्च और भले घर के लोगों के यहाँ वे स्वयं कितना ही सामान उनके घर पहुँचा दिया करती थीं।" इससे प्रगट होता है कि ये दान देने में भी अद्वितीय थीं। ये

कवियों का भी अधिक आदर करती थीं। मारवाड़ के अकाल में जो सहायता इन्होंने ग़रीबों को दी उससे सरकार में भी इनकी काफ़ी ख्याति हो गई। "प्रतापकुँवरि-रत्नावली" के अंत में लिखा है :—
"विलायत से जो खलीता आया था उसमें लिखा था कि जिस समय में माता अपनी संतान का पालन कर सकी उसी समय में महारानी जी ने प्रजा का पालन करके उसे अकाल मृत्यु से बचाया।"

संवत् १९२९ में महाराजा तख़्तसिंह का देहान्त हो गया। ये विधवा हो गईं। इनके प्रथम पुत्र श्री० बहादुरसिंह महाराज तख़्तसिंह के बाद सिंहासन के अधिकारी हुए। यही प्रतापबाला जी के जीवनाधार थे। किन्तु महाराज बहादुरसिंह जी भी अधिक मद्य-व्यसनी होने के कारण संवत् १९३६ में स्वर्ग-धाम सिधार गये। इनके द्वितीय पुत्र का भी संवत् १९४८ में स्वर्गवास हो गया। महारानी प्रतापबाला जी इस समय बहुत दुखी हुईं क्योंकि इनके पुत्रों का असमय में ही देहान्त हो गया।

पति और पुत्रों के मृत्यु के पश्चात् इनका हृदय परोपकार की ओर झुक गया। ईश्वर की भक्ति भी इनके हृदय में बहुत बढ़ गई। इन्होंने अनेक स्थानों पर कितने ही तालाब और कुँये खुदवाये। एकादशी और पूर्णिमा को साधुओं और ब्राह्मणों के लिये सदाव्रत बँटवाया। कितने ही देव-मन्दिर बनवाये। मारवाड़ में "आसापुर देवी का मन्दिर" "राम होल्ला" (साधुओं की धर्मशाला) आदि कितने ही पुण्य के स्थान हैं जो इनकी दान-वीरता का अच्छा परिचय देते हैं।

जामसुता श्री प्रतापबाला भगवान कृष्ण की बड़ी भक्त थीं। श्रीमद्भागवत का पाठ इन्हें अत्यन्त प्रिय था। 'सूर-सागर' पढ़ते पढ़ते इन्हें कविता करने का शौक उत्पन्न हो गया था। ये भगवान कृष्ण के ध्यान में मग्न होकर बहुत से पद और स्तुति बनाया करती थीं। इनके बहुत से पद "प्रतापकुँवरि-रत्नावली" नामक पुस्तक में छपे हैं।

"प्रतापकुँवरि-रत्नावली" नामक पुस्तक अच्छी है। इसमें प्रतापबाला जी के सिवा और भी कई कवियों की रचनायें संग्रहीत हैं। जोधपुर निवासी छगनीराय व्यास और श्याम कवि (जामनगर निवासी) की कवितायें उक्त पुस्तक में अधिक संग्रहीत हैं। प्रतापबाला की कविता अच्छी है। इनकी कविता में राजपूताने की बोली भी आ गई है। कृष्ण-भक्ति की छटा इसमें अच्छी तरह झलकती है। इनका कविता-काल संवत् १९४० के लगभग माना जा सकता है। "प्रतापकुँवरि-रत्नावली" मे हम यहाँ कुछ रचनायें उद्धृत करते हैं:—

१

वारी थारा मुखड़ारी श्याम सुजान।
मन्द मन्द मुख हास्य बिराजै कोटिक काम लजान।
अनियारी अँखियाँ रसभीनी बाँकी भौंह कमान॥
दाड़िम दसन अधर अरुणारे बचन सुधा सुख-खान।
जामसुता प्रभु सों कर जोरे मेरे जीवन-प्रान॥

२

लगन म्हाँरी लागी चतुरभुज राम !
श्याम सनेही जीवन ये ही औरन सों का काम।
नैन निहारूँ पल न बिसारूँ सुमिरूँ निसि-दिन श्याम॥
हरि सुमिरन ते सब दुख जाये मन पाये बिसराम।
तन मन धन न्योछावर कीजै कहत दुलारी जाम॥

३

चतुरभुज झूलत श्याम हिंडोरे।
कंचन खंभ लगे मणि-मानिक रेसम की रँग डोरें।
उमड़ि घुमड़ि घन बरसत चहुँदिसि नदिया लेत हिलोरें॥
हरि हरि भूमि-लता लपटाई बोलत कोकिल मोरें।
बाजत बीन पखावज बंसी गान होत चहुँ ओर॥
जामसुता छबि निरख अनोखी वारूँ काम किरोरें।

४

प्रीतम हमारो प्यारो श्याम गिरधारी है।
मोहन अनाथ नाथ, संतन के डोलें साथ,
वेद गुण गावे गाथ, गोकुल विहारी है!
कमल विसाल नैन, निपट रसीले बैन,
दीनन को सुख-दैन, चारभुजा धारी है॥
केशव कृपा निधान, वाही सो हमारो ध्यान,
तन मन वारूँ प्रान, जीवन मुरारी है।

सुमिरूँ मैं साँझ भोर, बारबार हाथ जोर,
कहत प्रताप कोंर, जाम की दुलारी है॥

५

प्रीतम प्यारो चतुरभुज वारो री।
हिय तें होत न न्यारो मेरे जीवन नन्ददुलारो री।
जामसुता को है सुखकारो, साँचो श्याम हमारो री॥

६

भजु मन नन्द-नन्दन गिरधारी।
सुख-सागर करुणा को आगर भक्त-बछल बनवारी।
मीरा, करमा, कुबरी, सबरी, तारी गौतम-नारी॥
वेद पुरानन में जस गायो, ध्याये होवत प्यारी।
जामसुता को श्याम चतुरभुज लेगा खबर हमारी॥

७

सखिरी चतुर श्यामसुन्दर सों,
मोरी लगन लगी री।
लाख कहो अब एक न मानूँ,
उनके प्रीति पगी री॥
जा दिन दरस भयो ता दिन तें,
दुविधा दूर भगी री।
जामसुता कहे उर बिच उनकी,
भगती आन जगी री॥

८

मो मन परी है यह बान।
चतुरभुज के चरण परिहरि ना चहूँ कछु आन॥
कमल नैन बिसाल सुन्दर मन्द मुख मुसुकान।
सुभग मुकुट सुहावनो सिर, लसे कुण्डल कान॥
प्रगट भाल बिसाल राजत, भौंह मनहुँ कमान।
अंग अंग अनंग की छवि, पीत पट फहरान॥
कृष्ण-रूप अनूप को मैं, धरूं निसि-दिन ध्यान।
जामसुत परताप के भुजवार जीवन प्रान॥*



* देवी जी ने इस रचना में विशेष रूप से कृष्ण-काव्य की पद-रचना-शैली का ही उपयोग किया है और व्रजभाषा का अच्छा रूप दिया है।

बाघेली विष्णुप्रसाद कुँवरि

श्रीमती बाघेली विष्णुप्रसाद कुँवरि जी रीवां के विख्यात महाराजा रघुराज सिंह जी की सुपुत्री थीं। महाराजा रघुराज सिंह हिन्दी के प्रसिद्ध कवि, अनेकों कवियों के आश्रय-दाता और वैष्णव भक्त थे। आपका जन्म संवत् १६०३ में और विवाह संवत् १६२१ में जोधपुर के महाराजा श्री जसवंतसिंह जी के छोटे भाई श्री किशोरसिंह जी से हुआ था। आप बड़ी भगवद्भक्त थीं। इनमें कविता करने की अच्छी प्रतिभा थी। ये अपना हस्ताक्षर 'दीनानाथ' के नाम से करती थीं। वैष्णवमतानुयायिनी थीं। इन्होंने दीनानाथ का एक मन्दिर जोधपुर में संवत् १६४७ वैसाख सुदी १२ को बनवाया था। अकस्मात सं० १६५५ में इनके पति श्री० किशोरसिंह जी का स्वर्गवास हो गया। पति के परलोकवासी हो जाने पर इन्हे बड़ा दुःख हुआ। उसी समय से ये कृष्ण-प्रेम के रँग में रंग गई और कविता करने लगीं।

आपने दो ग्रंथों की रचना की है। १. अवध-विलास २. कृष्ण-विलास। तीसरा ग्रंथ भी इनका मिला है इसका नाम है राधा-रास-विलास। हमारे पास 'राधा-रास-विलास' और 'अवध-विलास' दोनों ग्रंथ मौजूद हैं। अवध-विलास दोहे और चौपैया छंदों में लिखा गया है। इसमें श्री रामचन्द्र जी का चरित्र-वर्णन किया गया है। 'राधा-

रास-विलास' में गद्य-पद्य दोनों लिखा गया है। ग्रंथों को देखने से मालूम होता है कि इनकी कविता सुन्दर, भगवद्भक्ति से परिपूर्ण होती थी। कानपुर से प्रकाशित होने वाले पुराने पत्र 'रसिक-मित्र' में इनकी कवितायें प्रायः छपा करती थीं। हम इनके कुछ पद्य उद्धृत करते हैं :—

१

आये प्रागराज में प्रभुवर, मुनिन कीन्ह परनामा।
चित्रकूट में फेर विराजे, निरख अनेक सुनामा॥
बन में बसे प्रभू लछिमन सँग, कैसा था वह देसा।
तहाँ सुपनखा आई छलकूँ, सुन्दर निरख रमेसा।
आई कही राम की ओरा, भूल गई-मन मोरा॥
रहूँ तुम्हारे घर में प्यारे, सुनो अवध-चित-चोरा।
हँसे प्रभू सीता को लख के, बोले बैन गँभीरा।
हमरे नारी बड़ी सुन्दरी, जाओ लछिमन ओरा॥
जाके नारि नहीं है वाके, जाय घरे तुम रहहू।
कुँवर बड़ो है रसिक लाडिली, मुदित मना हो रहहू॥
चली सुपनखा लछिमन ओरा, कहे बचन मुसुकाई।
राखो हमसो नारि सुन्दरो, हिल हिल रहो सदाई॥

बालि प्रसंग—

घर तें सुकढ़ि बालि तब आवा, नारि पकड़ समुझाई।

मीच विबस नहिं सुनी बात वह, चला लड़न को धाई* ॥
परा विकल महि सर के लागे, सर साधे रघुनाथा।
पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगे, गहे धनुष सर हाथा† ॥
धर्म हेत अवतरेहु जगत में, क्यों मोहि मारेउ नाथा।
समदरसी सब कहैं तुमहिं तो, बड़ी तुम्हारी गाथा ॥
प्रभु समुझाय गती दै ताको, कै सुग्रीव को राजा।
अंगद को युवराज बनायो, विपिन बीच सुख-साजा।
आई वर्षा ऋतु वरनन कर, आगे कपिन समाजा ॥
जामवंत नल-नील भालु बानर, सब साजे साजा।
दै बीरा हनुमान पठाये, सीता खोज कराई ॥
चारों दिशि जाओ सब कोई, यूथ अनेक सजाई।
ह्वां रावन निसिचरी संग लै, त्रास दिखावहि जाई।
अति लघुरूप केसरी-नंदन, धरा कथा बतलाई ॥
फेर मुद्रिका सिय को दीन्हों, वरनन गुन तब लागा।

---

* परा विकल महि सर के लागे।
पुनि उठि बैठि देखि प्रभु आगे ॥

—तुलसीदास

† तुलसी-कृत रामायण के इसी प्रसंग की चौपाइयों से मिलाइये और देखिये कि देवी जी ने अपने काव्य को उस पर कितना आधारित किया है।

सुनतै मन में मोद समायो, सीता को दुःख भागा ॥
राम-दूत मैं मातु जानकी, सत्य शपथ करुना की।
यह मुद्रिका दियो सहदानी, वरन अनूपम या की ॥
सीता वर कूँ दियो भयो, गद्गद् भे हनुमत बीरा।
बड़ो सरीर दिखाय सिया को, खाये फल वन-तीरा ॥
रावन भेज्यो मेघनाद कूँ, कपिन बाँध लै आऊ।
राम-काज हित आप बँधाये, दुख पायो कपिराऊ ॥
('अवध-विलास' से)

२

निरमोही कैसो जिय तरसावै।
पहले झलक दिखाय हमै कूँ अब क्यों वेग न आवै ॥
कब सों तलफत मैं री सजनी वाको दरद न आवै।
विष्णुकुँवरि दिल में आकर के ऐसो पीर मिटावै ॥*

३

रूप परस्पर दोऊ लुभाने।
नैन वैन सब माँहिं रहे हैं सब हैं हाथ बिकाने।
अधिक पिया प्यारी के छवि पर करत न कछु अनुमाने ॥

---

* मालूम होता है कि आपने यह काव्य जोधपुर ही में लिखा था। क्योंकि आपकी बुंदेली भाषा में जोधपुरी भाषा का भी कुछ प्रभाव प्रतीत होता है।

प्रिया हुलस प्रीतम-अंग लागे बहुत उचक ललचाने।
विष्णुकुँवरि सखियाँ सब बोलीं मन मेरो उँमगाने॥

४

नैन कू प्यारे करि राख्यो श्याम।
प्यारी के वारने जाउ मैं नैन सों मेरो काम।
व्रजसुन्दरी कहो मेरी मानो प्राण ते प्यारी वाम॥
छैल की प्यारी सुनो राधेरानी तुम्हें देख नहिं काम।
विष्णुकुँवरि रीझो पिय बोली छोड़ नैन कू नाम॥

५

जमुना-तट रंग की कीच वही।
प्यारे जी के. प्रेम-लुभानी आनंद रंग सुरंग चही॥
फूलन-हार गुथे सब सजनी युगल मदन-आनन्द लही।
तन मन सुन्दरि भरमति विह्वल विष्णुकुँवरि है लेत सही॥

६

श्याम सों होरी खेलन आई।
रँग गुलाल की झोरि लिए सब नवला सज-सज आई।
वाके नैन चपल चल रीझै प्रियतम पै टकटकी लगाई॥
होड़ा-होड़ी देखा-देखी होरी की रँग छाई।
उतै सखन सँग आय विराजे सुन्दर त्रिभुवनराई॥
इतै सखिन सँग होरी खेलन राधे जू चलि आई।
बारंबार अबीर उड़ावै हार कृष्ण-अँग धाई॥

दाऊ जी पिचकारि चलावै सुन्दरि मारि हटाई।
मधुर मधुर मुसुकात जाय पकड़े हलधर को भाई॥
राधे जू के नवल वदन से साड़ी देय हटाई।
निरखि अनूपम होरी खेलन सबहीं हँसे ठठाई॥
विष्णुकुँवरि सखियाँ सब छोड़ी हलधर भे सुखदाई।

७

वृन्दाबन-पावस छायो।
चहुँ दिसि कारे अम्बर छाये नील मणी प्रिय मुख छायो॥
कोमल कूक सुमन कोमल के कालिन्दी कल कूल सुहायो।
विष्णुकुँवरि जग श्याम रँग छयो श्यामहि सिंधु समायो॥

८

क्यों वृथा दोष पिय को लगावत।
तों हित चंद्रमुखी चातक बन परसन कूँ नित चाहत॥
हैं बहु नारि रसीली ब्रज में वातो तुम कोइ चाहत।
तों हित वृन्दाबन राधे सब सखियन रास दिखावत॥
तेरो रूप हिये में धारत नित निरखत सुख पावत।
विष्णुकुँवरि तव राधे चरनन हाथ जोड़ सिर नावत॥

९

अबै मत जाओ प्राणपियारे!
तुम्हें देख मन भयो उमँग में मेरो चित्त चुरायो रे॥

कहा कहूँ या छवि बलिहारी नैनन में ठहरायो रे।
विष्णुकुँवारि पकड़ि चरनन को बरबस हृदय लगायो रे॥

१०

अब ही आये श्याम रे।
मोह मन सब वाय प्यारो हो गई बिन काम रे।
बोल वंशी हरत मन है बार बार मुदाम रे॥
बैठ अधरा पै गबीली लसत अनुपम वाम रे।
श्याम के मुख सुभग सोभित विष्णु तन है छाम रे॥

११

बाजैरी बँसुरिया मन-भावन की।
तुम हो रसिक रसीली वंशी अति सुन्दर या मन की।
या मुख ले वाको रस पीवे अँग अँग सुखमा तन की॥
या मुख की मैं दासि चरन रज दोउ सुख उपजावन की।
शोभा निरखत सखी सबै मिलि विष्णुकुँवरि सुख पावन की॥

१२

छोड़ि कुल कानि और आनि गुरु लोगन की,
जीवन सु एक निज जाति हित मानी है।
दरस उपासो प्रेम-रस की पियासी वाके,
पद की सुदासी दया-दीठि की बिकानी है॥
श्रीमुख-मयंक की चकोरी ये सुखोरी बीच,
ब्रज की फिरत है ह्वै भोरी दुखसानी है।

जिन्हें अतिमानी चख-पूतरी सी जानी,
हम सों ते रारि ठानी अब कूबरी मिठानी है ॥

१३

सुन्दर सुरंग अंग अंग पै अनंग वारो,
जाके पद-पंकज में पंकज दुखारो है। *
पीत पटवारो मुख मुरली सँवारो प्यारो,
कुण्डल झलक मुख मोर पंख-धारो है ॥
कोटिन सुधाकर की सुखमा सुहात जाके,
मुख माँ लुभाती रमा रंभा सी हजारो है।
नन्द को दुलारो श्री यशोदा को पियारो,
जौन भक्त सुख सारो सो हमारो रखवारो है ॥

('राधा-रास-विलास' से)

---

* सुन्दर सुरंग-रंग शोभित अनंग-अंग,
अंग-अंग फैलत तरंग परिमल के।

—पदमाकर

रत्नकुँवरि बाई

महारानी रत्नकुँवरि बाई जी जाखन के ठाकुर लक्ष्मणसिंह की सुपुत्री थीं। इनका विवाह १५ वर्ष की अवस्था में ईडर (शेखावत) के महाराज प्रतापसिंह के साथ हुआ। इनका विवाह इनकी फूफी श्रीमती प्रतापकुँवरि बाई जी ने किया था।

श्रीमती प्रतापकुँवरि बाई जी कृष्ण-भक्त और ऊँचे दर्जे की कवियित्री हो गई हैं। उन्हें कविता से भी बड़ा प्रेम था। रत्नकुँवरि बाई जी भी उन्हीं की संगति से कविता करना सीख गई थीं। ये भी कृष्ण-भक्ति और भगवत्-चर्चा में ही अपना समय बिताने का उद्योग करती थीं। इन्होंने कुछ कृष्ण-भक्ति सम्बन्धी रचनायें भी रची हैं; जिनमें से कुछ नीचे लिखी जाती हैं :—

१

सियावर तेरी सूरत पै हूँ वारी रे।
सीस-मुकुट की लटक मनोहर मंजु लगत है प्यारी रे॥
या छवि निरखन को मो नैना जोवत वाट तिहारी रे।
रतनकुँवरि कहे मों ढिग आके झलक दिखा धनुधारी रे॥

२

मेरो मन मोह्यो रँगीले राम।
उनकी छवि निरखत ही मेरो बिसर गयो सब काम।

आठों पहर हृदय बिच मेरे आन कियो निज धाम ॥
रतनकुँवरि कहै वाके पलपल ध्यान धरूँ नित साम ॥

३

रघुवर म्हाँरा रे मैकूँ दरस दिखा जा रे।
तो देखन की चाह घनी है टुक इक झलक दिखा जा रे ॥
लाग रही तेरी केते दिन की मीठी बैन सुना जा रे।
रतनकुँवरि तोसों यह बिनती एक बेर ढिग आजा रे ॥

४

रघुवर प्यारो रे।
दसरथराज-दुलारो रे ॥
सीस मुकुट पर छत्र विराजत कानन कुँडलवारो रे।
बाँको अदा दिखाय रसीली मोह लियो मन म्हाँरो रे ॥
रतनकुँवरि कहै राम रँगीलो रूप गुनन आगारो रे ॥

५

थारी छूँ जी म्हाँरा प्यारा राम, कीजो म्हाँसू दिलदाड़ी बात।
मिल बिछुड़ण नहिं कीजै साँवरा, राखो जी चरणारी साथ ॥
ध्यान धरूँ हिरदय बिच तुमको, याद करूँ दिन रात।
रतनकुँवरि पर महर करो अब, निज कर पकरो हाथ ॥



चंद्रकला बाई

चंद्रकला बाई का जन्म बूँदी राज्य में हुआ था। कविराज गुलाबसिंह जी बूँदी के प्रसिद्ध कवि और दीवान थे। चंद्रकला बाई गुलाबसिंह जी की दासी की पुत्री थीं। इनका जन्म सं० १९२३ के लगभग और मृत्यु संवत् १९६० और १९६५ के बीच में हुई थी। हमने इनकी जीवनी के लिए बूँदी के वर्तमान कविराज राव रामनाथसिंह जी से पूछताछ की थी। राव रामनाथसिंह जी ने जो पत्र हमारे पास भेजा था उसकी प्रतिलिपि इस प्रकार है :—

"सेवा में निवेदन है कि गोलोक-निवासी कविराज राव जी साहिब श्री गुलाबसिंह जी मेरे पिता थे। कुँवर माधवसिंह मेरा सत्पुत्र था। संवत् १९६७ में इक्कीस वर्ष की अवस्था में अंतकाल हो गया। चंद्रकला हमारे घर की दासी थी। बाल्यावस्था में ही विद्याभ्यास कराने से कविता करने में निपुण हो गई थी। उसका भी अंतकाल हो गया। मलमिति कार्तिक सुदी ७ सं० १९८२।"

राव रामनाथसिंह

कविराज गुलाबसिंह जी स्वयं एक अच्छे कवि थे। चंद्रकला बाई जी ने उन्हीं की सत्संगति से कविता बनाना सीखा था। अंत में कविता करने में ये अत्यन्त निपुण हो गई थीं। ये भारत के प्रसिद्ध कविसमाजों की ओर से निकलने वाली समस्याओं की पूर्तियाँ किया करती थीं।

काशी-कविमण्डल, रसिक-मित्र, काव्य-सुधार, कवि और चित्रकार आदि पत्रों में इसकी पूर्तियाँ प्रायः छपा करती थीं। इनको अनेक कवि-सभाओं से मान-पत्र और उपाधियाँ भी मिली थीं। ३० जून सन् १८६८ ई० में गाँव बिसवाँ जिला सीतापुर (अवध) के कवि-मण्डल से 'वसुन्धरा-रत्न' की पदवी भी मिली थी।

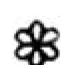
बाई जी बड़ी सहृदया थीं। इनका उस समय के कई कवियों से पत्र-व्यवहार भी था। बिसवाँ-कवि-मंडल ने इनको बहुत प्रोत्साहित किया था। प्रतापगढ़ (अवध) के अधीश्वर राजा प्रतापबहादुर सिंह के राजकवि; बल्देवनगर जिला सीतापुर निवासी पं० बलदेवप्रसाद अवस्थी उपनाम 'द्विज बलदेव' जी से भी इनका पत्र-व्यवहार था। द्विज बलदेव जी भी उस समय अनेक पत्रों में समस्या-पूर्तियाँ किया करते थे। उनकी रचना पर चंद्रकला बाई जी मुग्ध हो गई थीं। एक बार उन्होंने एक पत्र द्विज बलदेव जी के पास भेजा और उनसे बूँदी आने के लिए अनुरोध किया। बाई जी ने उसी पत्र के साथ बलदेव जी के पास एक कविता भी लिख भेजी थी; वह इस प्रकार है :—

दीन-दयाल दया कै मिलो,
दरसे बिनु बीतत हैं समय सोचन।
सुद्ध सतोगुण ही के सने ते,
विशंकित सूल सनेह सकोचन॥
तोरि दियो तरु धीर-कगार के,
ह्वै सरिता मनो बारि विमोचन।

चंद्रकला के बने बलदेव जी,
बावरे से महा लालची-लोचन ॥

बलदेव जी के कई मित्रों ने उन्हें बूँदी जाने के लिए कहा किन्तु वे नहीं गये। उक्त कविता पर मुग्ध होकर बलदेव जी ने "चंद्रकला" नामक एक सुन्दर काव्य-पुस्तक की रचना कर डाली। इस पुस्तक के प्रायः प्रत्येक छंद में चंद्रकला शब्द का प्रयोग किया गया है। यह पुस्तक संवत् १६५३ में बनी है। इसमें २० पृष्ठ हैं। इस पुस्तक की दो-एक कवितायें इस प्रकार हैं :—

खुर्द घटै बढ़ै राहु गसै बिरही हियरे घने घाय घला है।
सो तौ कलंकित त्यों विषबंधु निसाचर बारिज बारि बला है॥
प्रेम-समुद्र बढ़ै बलदेव के चित्त चकोर को चोप चला है।
काव्य-सुधा बरसै निकलंक उदै जससी तुही चंद्रकला है॥

कहा ह्वैहै कछू नहिं जानि परै सब अंग अनंग सों जोरि जरे।
उतै बीथिन में बलदेव अचानक दीठि प्रकाशक प्रेम परे॥
हँसि कै गे अयान दया न दई है सयान सबै हियरे के हरे।
चले कौन ये जात लिए मन मो सिर मोर की चंद्रकला को धरे॥

इस प्रकार अवस्थी जी ने चंद्रकला बाई की प्रशंसा में बहुत उत्तमोत्तम कवितायें लिखी हैं। बाई जी दो एक बार बिसवाँ-कवि-मंडल में भी आई थीं। वहाँ उनका बड़ा सम्मान और आदर हुआ था।

गोस्वामी तुलसीदास की जन्मभूमि राजापुर-निवासी पं० मंगलदीन

उपाध्याय से भी इनका पत्र व्यवहार था। चंद्रकला बाई जी ने एक वार उन्हें एक पत्र में यह छंद लिखा था :—

बरस पंच—दश की बय मेरी।
कवि गुलाब को हूँ मैं चेरी।
वालहिं तें कवि-संगति पाई।
ताते तुक जोरन मोहिं आई॥

उस समय हिन्दी संसार में बाई जी की काफ़ी शोहरत थी। एक बार विसवाँ-कविमंडल से प्रकाशित होने वाले 'काव्य-सुधाधर' पत्र में 'चंद्रकला' नाम की समस्या दी गई। अनेकोंकवियों ने इसकी पूर्ति बड़ी वढ़िया की थी। वर्तमान प्रसिद्ध महाकवि पं० नाथूराम शंकर शर्मा की पूर्ति सर्वश्रेष्ठ थी। मिश्रबंधुओं के बँहदोई पं० भैरवप्रसाद बाजपेयी 'विशाल' कवि बड़े मज़ाकपसन्द कवि थे। उन्होंने भी 'चंद्रकला' समस्या की पूर्ति की। कविदत्त जी 'काव्यसुधार' के सम्पादक थे। 'विशाल' जी ने दत्त जी को संबोधित करके कविता में एक प्रश्न किया। और "चंद्रकला" समस्या पर विशाल जी की पूर्ति इस प्रकार की :—

एक वास करै नित शंभु के शीश पै दूजी है अम्बर में विमला।
पुनि तीजी बघम्बर बूँदी के बीच है जो बलदेव की प्रेम-पला।
अब हाल 'विशाल' कृपा करिके कवि दत्त जी मोको बताओ भला।
इनमें विसवाँ कवि मंडल में यह कौन सी राजति चंद्रकला॥

चंद्रकला बाई जी बड़ी अच्छी कविता करती थीं। इन्होंने कई ग्रंथ बनाये हैं। जिनमें करुणा-शतक, रामचरित्र, पदवी-प्रकाश और

महोत्सव-प्रकाश मुख्य हैं। इनकी कविताओं को यदि हम समालोचना की कसौटी पर कसते हैं तो उतनी खरी नहीं उतरतीं जितनी को होनी चाहिएँ। तो भी रचना रुचिर और अच्छी जान पड़ती है। खास कर बिसवाँ की कवि-मंडली ने इन्हें उत्साह और बढ़ावा देकर इनके नाम का महत्व बढ़ा दिया था। हमारे पास इनके १००० छंद विद्यमान हैं जो बहुत ही उत्तम और भाषा-भाव से परिपूर्ण हैं। हमारा विचार है कि चंद्रकला बाई जी की जीवनी और इनकी कविताओं का एक संग्रह अलग पुस्तकाकार-रूप में प्रकाशित किया जाय। हम बाई जी की कुछ कवितायें नीचे उद्धृत करते हैं :—

१

घन हैं न कारे कारे भारे गजराज हैं री,
बगुला न स्यन्दन समूहन की राजी है।
जुगुनू न सायुध चमकदार वीर ये हैं,
चातक न बोलिया जकीबन ने साजी है॥
'चंद्रकला' चपला न चमक असिन की है,
गरज न रोष भरी सेना घोर गाजी है।
मानिनि के मामन विदारिबे के दौरत हैं,
धुरवा नहीं ये प्यारी मैन भूप बाजी है॥

२

ऐहो ब्रजराज कत्त बैठे हो निकुंज माँहि,
कीन्हो तुम मान ताकी सुधि कछु पाई है।

तातें व्रषभानुजा सिँगार साजि नीकि भाँति,
सखियाँ सयानी संग लेय सुखदाई है ॥
'चंद्रकला' लाल अवलोको ओर मारग की,
भारी भय-दायिनी अपार भीर छाई है।
रावरो गुमान अति बल अति भट मानि,
जोबन को फौज लैके मारिबे को धाई है ॥

३

नेकौ एक केश की न समता सुकेशी लहै,
नैनन के आगे लगै कमल रुमालची।
तिल सी तिलोत्तमाहू रति हू रती सी लगै,
सनमुख ठाढ़ रहै लाल छिन लालची ॥
'चंद्रकला' दान आगे दीन कल्पवृक्ष लागै,
वैभव के आगे लागै सुरप कुदालची।
धन्य धन्य राधे वृषभानु को दुलारी तोहिं,
जाके रूप आगे लगे चंद्रमा मसालची ॥

४

बैठे हैं गुपाल लाल प्यारो बर बालन में,
करत कलोल महा मोद मन भरिगे।
ताही समय आती राधिका को दूरही तें देखि,
सौतिन के सकल गुमान गुन जरिगे ॥

'चंद्रकला' सारस से तिरछी चितोनिवारे,
नैन अनियारे नैकु पी की ओर ढरिगे।
नेह नहें नायक के ऊपर ततच्छन हो,
तीच्छन मनोभव के पाँचो बान झरिगे॥

५

नख तें सिख लौं सब साजि सिँगार,
छटा छवि की कहि जात नहीं।
सँग लाय अली न लली—
ललचाय चली पिय पास महा उमही॥
कहि 'चंद्रकला' मग आवत ही,
लखि दौरि तिया पिय बांह गही।
नहिं बोल सकी सरमाय लली
हरषाय हिये मुसकाय चली॥

६

बाजत ताल मृदंग उमंग उमंग भरी सखियाँ रँग बोरी।
साथ लिए पिचकी कर मांहि फिरैं चहुँघा भरि केसर घोरी॥
'चंद्रकला' छिरकैं रँग अंगन आपस माँहि करै चित चोरी।
श्री वृषभानु महीपति-मंदिर लाल-लली मिलि खेलत होरी॥

७

बाल वियोग परी मुरझाय हुती थित आलिन में सिर नाय के।
मोहन के गुनगान अपार बखानत ही सखियाँ भल भाय के॥

'चन्द्रकला' तब ही प्रिय आगम आय कह्यो सखि ने समझाय के।
आवत दूरहिं ते लखि दौरि रही पिय के हिय सों लपटाय के॥

८

जो अति दुलभ देवन को तनु मानुष सो निज पुण्यन पावै।
इन्द्रिन के सुख में लय होय जु ईश्वर ओर न नेकु लखावै॥
'चन्द्रकला' धिक है तिहिं जीवन नारि सुतादिक में मन लावै।
है मतिहीन प्रवीन बन्यो वह कांच के लालच लाल गमावै॥

९

कुसुम समूह खिले विटप लतान माँहि,
सोई ताहि लागि रही भट बलवन्त की।
पल्लव नवीन लिए कर बिन म्यान असि,
कोकिल अवाज ध्वनि दुन्दुभी अनंत की॥
'चंद्रकला' चारों ओर भँवर नकीब फिरैं,
आली देखि देत ये दुहाई रति-कंत की।
बिन घनश्याम मोहिं कदन करनवारी,
जम की सवारी फुलवारी है बसन्त की॥

१०

पावस की मावस की निसि अँधियारी माँहि,
बरसत बारि की फुहारैं फहराति है।
गरजत घोर घन चारों ओर जोर भरे,
दमकत दामिनी विशेष दरसाति है॥

'चंद्रकला' ताही समै पाछे लाय राधिका की,
गमने गुपाल मग पूरी छपि छाति है।
चंद्रमा तें चारि गुनो राधे-मुख चंद्रमा की,
प्यारे ब्रजचंद्र पै उज्यारी चली जाति है॥

११

राति कहीं रमि कै प्रभात प्रान-प्यारी पास,
आये घनश्याम स्याम सारी धारि आन की।
अधर अनूप माँहिं काजर की रेख धारि,
लाल लाल लोचन पै लाली पीक-पान की॥
'चंद्रकला' द्विकल कलाधर अनेक धरे,
लखि उर गाढ़ बोली बेटी वृषभान की।
इन्द्रजाल ढालो गल घालो कौन बाल आज,
आउन रसाल लाल माल मुकतान की॥

१२

बिन अपराध मनमोहन को दोष थामि,
काहे मनमान धारि प्यारी दुख पावै है।
चलि री निकुंज माहिं मिलि री पिया सों वेगि,
मन वच काय लाय तो ही धरि ध्यावै है॥
'चन्द्रकला' तेरे ही सनेह सने एक पाय,
ठाढ़े है जमुन तीन पीर सरसावै है।

लै लै नाम तेरो ही बखानै तोहिं प्रान प्यारी,
सुनि री गुपाल लाल बाँसुरी बजावै है ॥

१३

नटवर वेष साजि मदन लजाने लाल,
मन हरि लीनो हाल नारिन के जाल को।
अमित स्वरूप धारि नखसिख सोभा सनी,
राख्यो गहि हाथ हाथ भिन्न भिन्न बाल को ॥
'चन्द्रकला' गाय गीत भ्रमत सनेह सने,
बरनत नारदादि जस जनपाल को।
सुमन समूह बरसावत त्रिमान चढ़े,
देखि देखि देव रास-मण्डल गोपाल को ॥

१४

सीतहि लेहि महाधन देय कह्यो हित राम रमेश हरी है।
जो नहिं मानहुगे मति मोर तु आपति भाँति अथाह भरी है ॥
'चंद्रकला' तुमही न कछू उन बालि महाबल मृत्यु करी है।
रावण नारि कहै पिय सों सिय ह्वै त्रिष-बेलि प्रचंड परी है ॥

१५

कपिनाथ महाबल बालि न साथ कर्‌यो कपिराज सुकंठ सुभाती।
दल बानर भालुन को संग लेय गये निरखी अति लंक कपाती ॥
कहि 'चंद्रकला' हनि रावन को बुलवाय लई सिय ही हरषाती।
मुसुकावत बाल विनोद भरी जबही जब राम लगावत छाती ॥

१६

ध्यान धरै तुम्हरो निसिवासर नाम तुम्हार रटै बिसरै ना।
गावत है गुन प्रेम-पगी मन जोवत है छिन दीठि टरै ना॥
'चंद्रकला' वृषभानु-सुता अति छीन भई तन देखि परै ना।
वेगि चलो न बिलंब करो अति व्याकुल है वह धीर धरै ना॥

पहेलियाँ

१७

आधो दरजी और बजाज, राखत हैं अपने हित काज।
आधो आवै जाके हाथ, रहैं सकल जन ताके साथ॥
सगरो जाके सदन रहाय, महा प्रतापी पुरुष कहाय।
है कारो दृढ़ कहो बिचारि, चंद्रकला नतु मानो हारि॥

गजराज

१८

कारो है पै काग न होय, भारो है पै वैल न सोय।
करे नाक सौं कर का कार, अर्थ करो कै मानो हार॥

गज



जुगलप्रिया

बुंदेलखंड में ओरछा राज्य सदा से प्रसिद्ध चला आता है। इस राज्य में एक से एक वीर, नीतिज्ञ और भगवद्भक्त नरेश हुए हैं। परमभक्त महाराज मधुकरशाह और उनकी रानी श्रीमती गनेसकुँवरि यहीं हुईं। वीरपुंगव वीरसिंह देव इसी भूमि के रत्न थे। प्रातःस्मरणीय कुंवर हरदौल इसी आँगन में खेले थे। इस राज्य की धाक सारे देश में जमी थी। वीर केसरी छत्रसाल भी इसी वंश में जनमे थे। काल-चक्र में पड़कर इस राज्य को अपनी राजधानी, ओरछा से हटाकर, टीकम-गढ़ में स्थापित करनी पड़ी। यहाँ के वर्त्तमान नरेश श्रीमान् महेन्द्र महाराजा प्रतापसिंह जू देव बहादुर हैं। यही श्रीमती कमल-कुमारी देवी के पिता हैं। श्रीमती जी की माता रानी वृष-भानु कुंवरि देवी भक्त-संसार में काफ़ी प्रसिद्ध हैं। अयोध्या में सुवि-ख्यात कनक-भवन आप ही का बनवाया हुआ है।

श्रीमतीजी का जन्म लगभग सं० १९२८ में हुआ था। आप अपनी माता की पहली ही संतान थीं। माता-पिता का आप पर अगाध स्नेह था। आपके पिता तो आप को वात्सल्य-स्नेह-वश "भैया" कह कर पुकारा करते थे। जिस दिन आप का प्रादुर्भाव हुआ कहते हैं, उसी दिन से टीकमगढ़ राज्य में दिन दूनी रात चौगुनी समृद्धि होने लगी। आपकी माता एक आदर्श भक्त थीं। उनका सम्बन्ध

वैष्णव संप्रदाय से था। श्रीसीताराम जी के नाम और ध्यान में वे आठ पहर डूबी रहती थीं। उन्होंने यही शिक्षा अपनी पुत्री को देनी आरम्भ की। नित्य प्रातःकाल रामनाम की पाँच मालाएँ जप लेने के बाद इन्हें कलेवा मिला करता था। एकादशी का व्रत भी आठ ही वर्ष की अवस्था से रखना शुरू कर दिया था। आपके पिता जी तो प्रायः अपनी धर्मपत्नी से ताना मार कर कहा करते थे कि 'क्या बेटी को भी अपनी ही तरह 'वैरागिन' बनाना चाहती हो?'

छतरपुर राज्य के वर्त्तमान नरेश श्रीमान् विश्वनाथसिंह जू देव के साथ आपका पाणिग्रहण कराया गया। विवाह हो जाने पर भगवद्भक्ति की ओर से आप की रुचि कम नहीं हुई, प्रत्युत और भी बढ़ने लगी।

पहले आप अयोध्या में श्रीवैष्णव संप्रदाय में दीक्षित हुई थीं, किन्तु पीछे वृन्दावन में श्रीकृष्ण-लीला की अनुगामिनी हो गईं। एक प्रकार से तो आप का सम्बन्ध चारों संप्रदाय से था। यही नहीं, वरन् शंकर-संप्रदाय से भी आप सहानुभूति रखती थीं। तात्पर्य यह कि आप के उदार हृदय में सभी सम्प्रदायों के लिये प्रेमपूर्ण स्थान था। प्रत्येक सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का आप ने इतना सूक्ष्म अनुशीलन किया था कि वाद-विवाद में अच्छे-अच्छे पंडितों को दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती थी। कई लोग तो इन्हें चार सम्प्रदाय का 'महंत' कहा करते थे।

नित्य प्रातःकाल चार बजे मंगलमूर्त्ति जनार्दन का ध्यान करती हुई आप उठा करती थीं। नित्य-कर्म के बाद संध्यापूजा पर बैठ जाती

थीं। सात घंटे के लगभग आप भगवत्सेवा में संलग्न रहती थीं। भोजन बिल्कुल साधारण था। अंतिम सात वर्ष से फलाहार करती थीं। भोजनानन्तर धार्मिक पुस्तकों का अवलोकन अथवा किसी संत के साथ सत्संग होता था। इसके बाद घंटा आध घंटा राज्य-सम्बन्धी व्यवहारिक बातचीत भी कर लेती थीं। संध्या से ९-१० बजे तक फिर वही भगवत्सेवा, हरिकीर्त्तन या सत्संग हुआ करता था। निद्रा अधिक से अधिक चार घंटे की थी। यही आप की दिनचर्य्या थी।

आपके जीवन के अधिकांश दिन प्रायः तीर्थाटन में ही बीते। कामदनाथ, गोबर्द्धन, वेंकटाद्रि, ब्रह्माचल आदि बीहड़ और कंटकाकीर्ण पर्वतों की परिक्रमा आपने कई बार पैदल की थी। गरमी-जाड़ा, धूप-वर्षा, भूख-प्यास आदि पर आप का पूरा अधिकार था। प्रत्येक एकादशी व्रत निर्जला ही करती थीं। स्वयं तो अत्यंत साधारण भोजन करती थीं, पर दूसरों को बड़े प्रेम से नाना प्रकार की चीजें बना बना कर खिलाया करती थीं। बालकों के खिलाते समय तो आप का मातृस्नेह देखते ही बनता था।

दुःखपूर्ण जीवन रहते हुए भी धार्मिक उत्सवों को आप बड़े ही आनन्द से मनाया करती थीं। प्राचीन महात्माओं की बानियाँ आप को कंठाग्र थीं। किसी किसी पद के कहते समय तो आप भाव में डूब जाती थीं और नेत्रों से प्रेमाश्रु-धारा बहने लगती थी।

आपका स्वभाव बड़ा ही सरल, प्रेममय और गंभीर था। तितिक्षा की तो मूर्त्ति ही थीं। परनिन्दा और असत्य से बहुत बचती थीं।

सादगी इतनी थी कि देख कर आश्चर्य होता था। यद्यपि तपस्या के कारण शरीर एकदम कृश हो गया था, मानसिक वेदनाओं के मारे हृदय छिन्न-भिन्न सा रहता था और राजसी भी सदा के लिये ठुकरा दी थी, फिर भी मुखमंडल पर एक अपूर्व ब्रह्मतेज झलकता था, भजन का प्रताप प्रत्यक्ष दिखाई देता था। दूसरों का दुख तो आप पल भर भी नहीं देख सकती थीं। परोपकार और भगवद्भजन आप के दो अपूर्व आदर्श थे। आजन्म परोपकार और भगवद्भजन करती हुई सं० १९७८ वि० चैत्र शुक्ला ७ की रात्रि को, टीकमगढ़ में, आप गोलोक सिधार गयीं।

हिन्दी के मर्मज्ञ श्रीयुत वियोगीहरिजी आप के शिष्य हैं। श्रीमतीजी कभी कभी प्रेमावेश में जो पद लिखा करती थीं, उनका संग्रह श्री वियोगी हरि जी ने पुस्तकाकार प्रकाशित करा दिया है। श्रीमती जी अपने पदों में 'जुगलप्रिया' की छाप देती थीं। अतएव उस संग्रह का नाम 'जुगलप्रिया-पदावली' रक्खा गया है। हरी जी ने 'श्री गुरु पुष्पाञ्जलि' नामक एक पुस्तक भी आपके स्वर्गवास के अनंतर लिखी थी। आपके कुछ चुने पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं :—

१

चरन चलौ श्रीवृन्दावन मग, जहँ मुनि अलि पिक कीर।
कर तुम करौ करम कृष्णार्पण, अहंकार तजि धीर॥
मस्तक नवियौ हरि-भक्तन कों, छाँड़ि कपट को चीर।
श्रवन सदा सुनियौ हरि जसरस, कथा भागवत हीर॥

नैना तरसि तरसि जल ढरियो, पिय-मग जाय अधीर।
नासा तब लौं स्वाँसा मारियौ, सुरति राखि पिय तीर॥
रसना चखियो महाप्रसादै, तजि विषया विष नीर।
सुधि बुधि बढ़े प्रेम चरनन, ज्यों तृष्ना बढ़े शरीर॥
चित्त चितेरे, लिखियो पियकी, मूरति हृदय-कुटीर।
इन्द्रिय मन तन भजौ श्याम कों, बढ़ै बिरह की पीर।
'जुगलप्रिया' आसा जिय धरियो, मिलि हैं श्री बलबीर॥

२

नैन सलौने खंजन मीन।
चंचल तारे अति अनियारे, मतवारे रसलीन॥
सेत स्याम रतनारे बाँके, कजरारे रँग भीन।
रेसम डोरे ललित लजीले, ढीले प्रेम अधीन॥
अलसौहैं तिरछौहैं भौहैं नागरि नारि नवीन।
'जुगलप्रिया' चितवनि में घायल होवै छिन छिन छीन॥

३

साँवलिया की चेरी कहौ री।
चाहे मारौ चहै जिवावौ जनम जनम नहिं टेक तजौ री॥
कर गहि लियौ कहति हौं सांची नहिं मानै तो तेरी सौं री।
जो त्रिभुवन ऐश्वर्य्य लुभावै तिनको लौं हौं सो समुझौं री॥
'जुगलप्रिया' सुनि मेरी सजनी, प्रगट भई अब नाहिंन चोरी।

४

दृग, तुम चपलता तजि देहु ।
गुञ्जरहु चरनारविन्दनि होय मधुप सनेहु ॥
दसहुँ दिसि जित तित फिरहु किन सकल जग रस लेहु ।
पै न मिलिहै अमित सुख कहुँ जो मिलै या गेहु ॥
गहौ प्रीति प्रतीति दृढ़ ज्यों रटत चातक मेहु ।
बनो चारु चकोर पिय मुख-चंद्र छबि रस एहु ॥

५

व्रजमण्डल अमरत बरसैरी ।
जसुदा नंद गोप गोपिन को सुख सुहाग उँमगै सरसै री ॥
बाढ़ी लहर अंग अंगन में जमुना तीर नीर उछरै री ।
बरसत कुसुम देव अंबर तें सुरतिय दरसन हित तरसै री ॥
कदली बंदनवार बँधावें तोरन धुज सँथिया दरसै री ।
हरद दूध दधि रोचन साजैं मंगल-कलस देखि हरसै री ॥
नाचैं गाव रंग बढ़ावें जो जाके मन में भावै री ।
सुभ सहनाई बजत रात दिन चहुँदिस आनँद घन छावै री ॥
ठाढ़ी ढाढ़िन नाचि रिझावें जो चाहैगो सो पावै री ।
पलना ललना झूल रही हैं जसुदा मंगल गुन गावै री ॥
करै निछावर तन मन सरबस, जो नँद नंदन को जावै री ।
'जुगलप्रिया' यह नंद महोत्सव दिन प्रति वा व्रज में होवै री ॥

६

राधाचरन की हूँ सरन।
छत्र चक्र सुपद्म राजत सुफल मनसा करन॥
उर्ध्व रेखा जब धुजादुति सकल सोभा धरन।
वाम पद गद शक्ति कुंडल मीन सुबरन बरन॥
अष्ट कोन सुवेदिका रथ प्रेम आनँद भरन।
कमल-पद के आसरे नित रहत राधा-रमन॥
काम दुख संताप भंजन विरह-सागर तरन।
कलित कोमल सुभग सीतल हरत जिय की जरन॥
जयति जय नव नागरी पद सफल भवभय हरन।
'जुगलप्यारी' नैन निरमल होत लख लख किरन॥

७

जय श्री जमुने कल-मल हारिनि।
करु करुना प्रीतम की प्यारी भँवर तरंग मनोहर धारिनि॥
पुलिन बेलि कुसुमित सोभित अति कंचन चंचरीक गुंजारिनि।
विहरत जीव जंतु पसु पंछी स्याम रूप रस रंग विहारिनि॥
जे जन मज्जन करत विमल जल तिनको सब सुख मंगल कारिनि।
'जुगलप्रिया' ह्वै कृपालु अब दीजै कृष्ण भक्ति अनपायिन॥

८

नीर प्रिय लागै जमुना तेरो।
जा दिन दरस परस ना पाऊँ विकल होय जिय मेरो॥

नित्य नहाऊँ तब सुख पाऊँ होत अलिन सों मेरो।
'जुगुलप्रिया' घट भरि कर लीन्हें रहै सदा चित चेरो ॥

९

भूलति हैं नागरि नागरनट।
नव पावस सुख सरस सुहाई जमुना पुलिन सभा बंसीबट।
मुरली अति घनघोर सोर करि सप्त सुरन सों पूरि रही रट ॥
प्यारी अंग सुरंग चूनरी सखि गन राजति धारि लाल पट।
प्यारे पीताम्बर तन धारैं सीस रही पँचरँग पगिया डट ॥
चितवत हँसत परस्पर दोऊ भूलत झुकत मोरि ग्रीवा चट।
झोका आवत कुंज दौर लौं झपकत चख लचकत केहरि कट ॥
भूलत लूम बढ़ाय रसिक वर कुण्डल में उरझी स्यामल लट।
उरझे रहो न सुरझौ कबहूँ 'जुगलप्रिय' बलि बोल उठी झट ॥

१०

बगुला-भक्तन सों डरिये री।
इक पग ठाढ़े ध्यान धरत हैं दीन-मीन लों किमि बचिये री।
ऊपर तें उज्जल रँग दीखत हिए कपट हिंसक लखिये री ॥
इनते दूरहि रहे भलाई निकट गये फंदनि फँसिये री।
'जुगलप्रिया' मायावी पूरे भूलि न इन सँग पल बसिये री ॥

११

नाथ अनाथन की सब जानै।
ठाढ़ी द्वार पुकार करति हौं स्रवन सुनत नहिं कहा रिसानै ॥

की बहु खोट जानि जिय मेरी की कछु स्वारथ हित अरगाने ॥
दीनबंधु मनसा के दाता गुन औगुन कैधौं मन आने।
आप एक हम पतित अनेकन यही देखि को मन सकुचाने ॥
झूँठो अपनो नाम धरायो समझ रहे हैं हमहिं सयाने।
तजो टेक मनमोहन मेरे 'जगलप्रिया' दीजै रस दाने ॥

१२

मन तुम मलिनता तजि देहु।
सरन गहु गोविन्द की अब करत कासों नेहु ॥
कौन अपने आप को के परे माया सेहु।
आज दिन लौं कहा पायो कहा पैहो खेहु ॥
विपिन वृन्दा वास करु जो सब सुखनि को गेहु।
नाम मुख में ध्यान हिय में नैन दरसन लेहु ॥
छांडि कपट कलंक जग में सार साँचो एहु।
'जुगलप्रिय' बन चित्त-चातक स्याम स्वाँती येहु ॥

१३

नैन मोहन रूप छके री।
सेत स्याम रतनारे प्यारे ललित सलोने रंग रँगे री ॥
बाँकी चितवनि चंचल तारे मनो कंज पै खंज अरे री।
'जुगलप्रिया' जाके उर भाये अधिक बावरे सोइ भये री ॥

१४

'जुगल-छबि' कब नैनन में आवै।

मोर मुकुट की लटक चन्द्रिका सटकारी लट भावै ।।
गर गुंजा गजरा फूलन के फूल से बैन सुनावै ।
नील दुकूल पीत पट भूषण मनभावन दरसावै ।।
कटि किंकिनि कंकन कर कमलनि क्वनित मधुर धुन छावै ।
'जुगलप्रिया' पद-पदुम परसि कै अनत नहीं सच पावै ।।

१५

माई मोकों जुगल नाम निधि भाई ।
सुख संपदा जगत की झूठी आई संग न जाई ।।
लोभी को धन काम न आवै अंत काल दुखदाई ।
जो जोरे धन अधम करम तें सर्वस चलै नसाई ।।
कुल के धरम कहा लै कीजै भक्ति न मन में आई ।
'जुगलप्रिया' सब तजौ भजौ हरि चरन कमल मन लाई ।।

१६

सखी मेरी नैननि नींद दुरी ।
पिय सों नहिं मेरो बस कछु री ।।
तलफि तलफि यों ही निसि बीतति नीर बिना मछुरी ।।
उड़ि उड़ि जात प्रान-पंछी तहँ वजत जहाँ बँसुरी ।
'जुगलप्रिय' पिया कैसे पाऊँ प्रगट सुप्रीति जुरी ।।

१७

वृन्दावन-रस काहि न भावै ।
विटप बल्लरी हरी हरी त्यों गिरिवर जमुना क्यों न सुहावै ।।

खग-मृग पुंज-कुंज कुंजनि में श्रीराधा बल्लभ गुन गावै।
पै हिंसक वंचक रंचक यह सुख सपने में लेस न पावै॥
धनि ब्रजरज धनि वृन्दावन धनि रसिक अनन्य जुगल बपु ध्यावै।
'जुगलप्रिया' जीवन ब्रज साँचों नतरु वादि मृगजल को धावै॥

१८

जय गंगे जय तारन-तरनी।
भंवर तरंग उमंगनि लहरी मंजुल रेनु-विमल बुधि करनी॥
पुलिन पुनीत मंद मारुत बह निर्मल धार धवल छवि धरनी।
जेते जंतु जीव जल थल नभ सबकी तीन ताप तम हरनी॥
हरि-चरनार-बिन्द तें प्रगटो ब्रह्म कमण्डल सिर आ भरनी।
शंकर सीस सौत गिरिजा की भागीरथ रथ की अनुचरनी॥
गिरिवर नगर ग्राम बन बेधित प्रवल वेग बारिध वर बरनी।
दरस परस मज्जन सुपान तें दूर होंय दुख दारिद दरनी॥
सुलभ त्रिवर्ग स्वर्ग अपवर्गहु कामधेनु सुख सफल वितरनी।
जय श्री सुरसरि हरि रति दीजै 'जुगलप्रिया' की असरन सरनी॥

१९

प्रीतम रूप दिखाय लुभावै।
यातें जियरा अति अकुलावै॥
जो कीजत सो तौ भल कीजत अब काहे तरसावै।
सीखी कहाँ निठुरता एती दीपक पीर न लावै॥
गिरि के मरत पतंग जोति है ऐसेहु खेल सुहावै।

सुन लीजै बे-दरद मोहना जिनि अब मोहिं सतावै ॥
हमरी हाय बुरी या जग में जिन विरहाग जरावै ।
'जुगलप्रिया' मिलिबो अनमिलिबो एकहि भाँति लखावै ॥

२०

जय श्री तुलसी हरि की प्यारी ।
पिय सिर सोहै अति छवि वारी ॥
कोमल पत्र मंजुरी मंजुल कमला प्रिया पुन्य व्रत धारी ।
पूजत वंदत दुख सब भाजैं जहँ तहँ प्रगट प्रभा उजियारी ॥
महिमा अमित तुम्हारी स्वामिनि नहिं जानै सनकादि पुरारी ।
'जुगलप्रिया' को बन विहार में देहु मिलाय श्याम गिरिधारी ॥

२१

यह तन इकदिन होय जु छारा ।
नाम निशान न रहिहैं रंचहु भूलि जायगो सब संसारा ।
कालघरी पूजी जब ह्वै है लगै न छिन छाँड़त भ्रम जारा ॥
या माया-नटिनी के बस में भूलि गयौ सुख-सिंधु अपारा ।
'जुगलप्रिया' अजहूँ किन चेतत मिलिहैं प्रीतम प्यारा ॥

२२

जयति रसिकिनी राधिका जयति रसिक नँद-नंद ।
जयति चारु चंद्रावली जय वृन्दावन-चंद ॥
जय ब्रज-रज जय जमुन-जल जय गिरिवर नँद-ग्राम ।
बरसानों वृन्दाविपिन नित्य केलि के धाम ॥

जयति माध्व मत माधुरी जयति कृष्ण चैतन्य।
जयति सदा हरि वंस हित व्यास सुरसिकानन्य॥
करो कृपा सब रसिक जन मों अनाथ पै आय।
दीजै मोहि मिलाय श्री राधावर जदुराय॥
नहिं धन की नहिं मान की नहिं विद्या की चाह।
'जुगलप्रिया' चाहै सदा जुगल स्वरूप अथाह॥

२३

बीर अबीर न डारौ।
आँखिया रूप रंग रस छाकीं इनकी ओर निहारौ॥
अंतर होत जो अवलोकन कों हित की वात बिचारौ।
'जुगलप्रिया' मन जीवन जी को जापट ओट उचारौ॥

२४

बाँकी तेरी चाल सुचितवनि बाँको।
जबहीं आवत जिहिं मारग हो झुमक झुमक झुकि झाँकी॥
छिप छिप जात न आवत सन्मुख लखि लीनी छवि छाकी।
'जुगलप्रिया' तेरे छल बल तें हौं सब हा विधि थाकी॥

२५

मंगल आरति प्रिय प्रीतम की।
मंगल प्रीति रीति दोउन की॥
मंगल कान्ति हँसनि दसनन की।
मंगल मुरली बीना धुन की॥

मङ्गल बनिक त्रिभंगी हरि की।
मङ्गल सेवा सब सहचरि की॥
मङ्गल सिर चंद्रिका मुकुट की।
मङ्गल छवि नैननि में अटकी॥
मङ्गल छटा फबी अँग अँग की।
मङ्गल गौर श्याम रस रँग की॥
मङ्गल अति कटि पियरे पट की।
मङ्गल चितवनि नागर नट की॥
मङ्गल शोभा कमल नैन की।
मङ्गल माधुरि मृदुल बैन की॥
मङ्गल वृन्दावन मग अटकी।
मङ्गल क्रीड़न जमुना तट की॥
मङ्गल चरन अरुन तरुवन की।
मङ्गल करनि भक्ति हरि जन की॥
मङ्गल 'जुगलप्रिया' भावन की।
मङ्गल श्री राधा जीवन की॥



रामप्रिया

श्रीमती महारानी रघुराजकुँवरि उपनाम 'रामप्रिया' का जन्म लगभग सं० १९४० में हुआ था। आप अवध प्रदेश के अन्तर्गत स्थित जिला प्रतापगढ़ के राजा सर प्रतापबहादुर सिंह सी० आई० ई० की रानी थीं। एक बार ये प्रतापगढ़ाधीश के साथ सप्तम एडवर्ड के तिलकोत्सव के अवसर पर इंग्लैण्ड गई थीं। वहाँ आपने महारानी तथा सम्राट से भेंट की थी। आप बड़ी विदुषी और स्त्री-शिक्षा की प्रेमिका थीं। प्रायः स्त्रियों की जहाँ कहीं सभा-सोसाइटी होती थी, उसमें आप भाग लेती थीं और उनकी सहायता भी करतीं थीं। आप राम-कृष्ण की बड़ी भक्त थीं। आपने भक्तिरस की बड़ी सुन्दर सुन्दर कवितायें लिखी हैं। आपकी रचनाओं का एक संग्रह 'रामप्रिया-विलास' के नाम से प्रकाशित हुआ है। ग्रंथ पढ़ने से यह पता चलता है कि आप बड़ी ही शान्तिप्रिय और सुयोग्या थीं। तिथि त्योहारों में आप विशेष रूप से दान-पुण्य किया करती थीं। प्रतापगढ़ के लोग आज भी आप के पुराने गुणों का स्मरण किया करते हैं। आपकी कविता सुन्दर मधुर और आनन्द-प्रद हुई है। आपका स्वर्गवास संवत् १९७१ वैसाख मास में हुआ। आपकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं:—



स्वर्गीय रानी साहबा रामप्रिया (प्रतापगढ़)

१

मुख-चंद अभाव में चंद लखैं, अरविन्दन तें सुख नैन रही री।
द्विति देखि दिवाकर ध्यान धरूँ, छवि सीय बनो दृढ़ चित चही री॥
मुसुकाय के बंक विलोकत वै, हिय 'रामप्रिया' में समाय रही री।
विधना दिन-रैन विचार्‌यो करूँ, सुनु वे बतियाँ सपनेहु नहीं री॥

२

गज एकहिं बार पुकार कर्‌यो, तब जाय पिया तेहि ग्राह गही री।
द्रुपदी के अकास निहारत ही, दुरजोधन की ममता न रही री॥
प्रहलाद अजामिल गृद्ध लौं क्या, जहाँ दीन पुकार्‌यो गयो तितहीं री।
अब 'रामप्रिया' के पुकारिबे में, प्रभु वे बतियाँ सपनेहु नहीं री॥

३

कहि 'रामप्रिया' गुण गावै जो राम के,छंद रचे जो हुलासन सों।
सुअलंकृत छंद विचार्‌यो करै, नित बैठ्यो रहै दृढ़ आसन सों॥
फल चारिहु पावै बिना श्रम के, भय ताहि कहा यम-पाशन सों।
फिर अंतहु स्वर्ग-पयान करें, कवि बैठ्यो विमान हुताशन सों॥

४

जय जयति जय रघुवंश-भूषण, राम राजिवलोचनम्।
त्रैताप-खंडन जगत-मंडन, ध्यान गम्य अगोचरम्॥
अद्वैत अविनाशी अनंदित, मोक्षदा अरि-गंजनम्।
तव शरण भव-निधि पार-दात्री, अन्य जगत विडम्बनम्॥

दुख दीन-दारिद के विदारक दयासिंधु कृपाकरम्।
त्वं 'रामप्रिय' के राम जीवन-मूरि मंगल-मंगलम्॥

५

जय जयति जय मिथिलेश-नंदिनि, जयति जय जय दामिनी।
अवनी गगन्मंडितकरी, जगदीश्वरी जल-शायिनी॥
नित्या, निराधारी, निरूपा, निर्गुणा, नारायणी।
दुख-नाशिनी, दीप्ता दया, सुख-सौख्य निर्मल-दायिनी॥
माया, महालक्ष्मी, महाकाली, सुमुनि-मन-ध्यायिनी।
पुरुषा, परायण, पतिव्रत, प्रिय, पुरुष त्रास परायिनी॥
त्वं 'रामप्रिय' राम-प्रिया की, परम पद-की दायिनी॥

६

जयति जय जयति श्री हनुमान।
भुजदंड चण्ड प्रचण्ड वारे स्वामि शैल समान।
नख वज्र अरुण प्रदीप्त तन बल बुद्धि भक्ति-निधान॥
नव उदधि मन खंडन निशाचर दहन तरन गुमान।
'राम-प्रिया' तव चरण चितधरि करत गुण-गन-गान॥

७

जोई जल व्यापक जहान को जननहार,
जाको ध्यान केते जग-जाल सों निबटिगो।
जोई दल्यो दानव दिखायो नरसिंह-रूप,
उदित दिगन्त सों दुहाई देत हटिगो॥

'रामप्रिया' सोई औध-महल को चित्र देखि,
धाय घबराय मणि-खंभ सों लपटिगो।
जू जू कहिबो को तुतराय आय दू दू कहि,
अतिहिं सकाय माय अंक सों छपटिगो॥

८

कहैं कोऊ दिनमणि दिवानिसि तेजवारो,
नृप सुत जाये याते अति हरखाती है।
कोऊ कहैं मुदते दिवाकर न जैहैं कहूँ,
ह्वै हैं न विछोह याते हिय न सकाती है॥
'रामप्रिया' मेरे जान जानत जरूर हैं ये,
हेमराज गिरि ना रहेंगे सुख पाती है।
दानी अवधेश दान देहैं द्विजराजन को,
याही चक्रवाकी उड़ि उड़ि रहि जाती है॥

९

नंगा अरधंगा शीश-गंगा चंद्रभाल वारो,
बैल पै सवार विष-भोजन कर्यो करै।
व्याल-मुंड-माल प्रेम-डमरू त्रिशूल-धारी,
महा बिकराल चिता-भसम धर्यो करै॥
योग-रंग-रंगा चारु चाखत धतूर अंगा,
अद्भुत कुढंगा देखि बालक डर्यो करै।

'रामप्रिया' अजब तमासे चलु देखु देखु,
ऐसो एक योगी राम-पायन पर्यो करै ॥

१०

रघुकुल-चंद आज अनन्द ।
लखि वाटिका मन लेन वारी,
मुदित माधव-मान-हारी,
ललित लतन लवंग संयुत,
भ्रमत भ्रमर सुढंग ॥ रघुकुल० ॥
लखि युगल राजकिशोर निरखत,
बहुरि सिय-तन देखि हरखत,
चलत चंचल चंचला सम,
सुभग वसन सुरंग ॥ रघुकुल० ॥
लखि 'रामप्रिय' जोरी मनोहर,
मुदित मन हिय सों मनावै;
धनुष-खंडन यज्ञ-मंडन,
होहि दसरथनन्द ॥ रघुकुल० ॥

११

जब किंकिनि धुनि कान परी री ।
लख ललचाय लखन सों लालन हँसि यह बात कही री ।
मानहु मान महान महादल कै दुन्दुभि की सान चली री ॥

विश्व-विजय अब कीन्ह्यो चाहत मम दृढ़ता लखि भाजि भली री।
'रामप्रिया' के रामलला को आजु लली मन छीनि चली री॥

१२

मृग-मन हारे मीन खंजन निहारि वारे,
प्यारे रतनारे कजरारे अनियारे हैं।
पैन सर धारे कारी भृकुटि धनुष-वारे,
सुठि सुकुमारे शोभा सुभग सुढारे हैं॥
कैधौं हैं जलज कारे कैधों ये त्रिगुण युक्त,
चंद्रमा पै चंचला के चपल सितारे हैं।
'रामप्रिया' राम मन रमन अगारे कैधौं,
जनक-किशोरी बाँके लोचन तिहारे हैं॥

१३

हरषित अंग भरे हृदय उमंग भरे,
रघुवर आयौ मुद चारों दिसि ब्वै गयो।
सुन्दर सलोने सुभ्र सुखद सिँहासन पै,
जनक सप्रेम जाय आसन जबै दयो॥
'रामप्रिया' जानकी को देखत अनूप सुख,
पंकज कुमुद सम दूजे नृप ह्वै गयो।
मानो मणि-मंडित शिखर पै मयंक तापै,
मंजु दिनकर प्रात प्राची सों उदय भयो॥

१४

फिंसुक गुलाब कचनार औ अनारन के,
विकसे प्रसून न मलिन्द छवि धावै री*।
बेली बाग बीथिन बसंत की बहारैं देखि,
'रामप्रिया' सिया-राम सुख उपजावै री॥
जनक-किशोरी युग करतें गुलाल रोरी,
कीन्हें बरजोरी प्यारे मुख पै लगावै री।
मानों रूप-सर ते निकसि अरविन्द युग,
निकसि मयंक मकरंद धरि लावै री॥

१५

जामा जेवदार ये बसन्ती कैधों ऋतु सब,
मंजुकर कान्ति कैधों पंकज सनाल की।
गावत धमार ताल कैधों कोकिला की कूक,
प्यारी छवि चंपकी कै दशरथ-लाल की॥

---

* हिन्दी साहित्य में कवियों ने राधिका और कृष्ण की होली बहुत खिलाई है किन्तु राम और सीता की होली नहीं खिलाई गई। रानी साहबा ने राम और सीता की भी होली खिलाई है। शायद यह राधा-कृष्ण की होली का अनुकरण है। शैली नई है किन्तु रामभक्त वैष्णव सिद्धान्तानुसार ठीक नहीं है।

'रामप्रिया' हिय हुलसावै कै लगावै रंग,
प्रेम-मदमाती कै कै गई लाज बाल की।
कैधों पंचवाण निज पञ्चवाण मार्यो ताकि,
कैधों पिचकारी मारी भरि के गुलाल की॥

१६

तू न नवत सब तोहिं तजेंगे।
जा हित जग-जंजाल उठावत तोहीं छाँड़ि भजेंगे॥
जा कहँ करत पियार प्राण-सम जो तोहिं प्राण कहेंगे।
सोऊ तोकहँ जात देखि के देखे देह डरेंगे॥
देह मेह अरु नेह नाह तें नातो नहिं निबहेंगे।
जा बस है निज जन्म गँवावत कोऊ सँग न रहेंगे॥
कोऊ सुख जम-दुख-विहीन नहिं नहिं कोउ संग करेंगे।
'रामप्रिया' बिनु रामलाल के भव-भय कोउ न हरेंगे॥

१७

मानु मानु मन मानु रे अब जनि करसि गुमान।
'रामप्रिया' सब काम तजि रामचरित्र-बखान॥
'रामप्रिया' रट राम को रहै रैन दिन लागि।
रातिहु दिन के रगर तें तृन तें उपजै आगि॥
'रामप्रिया' की इल्तिजा सुनिये करुणासिंधु।
माफ करो करतार प्रभु मेरे दीनाबंधु॥

१८

सिय-मुखचंद त्याग दूजो चंद मंद कहौं,
कौन गुण जानि समता में अवलोकों मैं।
मुख अकलंकी सकलंसी तू प्रसिद्ध जग,
काहि समझाऊँ कैसे वाको जाय रोकों मैं॥
दिवा द्युति-हीन घन समय मलीन-खीन,
'रामप्रिया' जानै तोहिं जन सब लोकों मैं।
लली-मुख-लालिमा गुलाल सों लखात जैसे,
तैसी दरसावो तो सराहौं तब तोकों मैं॥



रणछोर कुँवरि

बाघेली श्री रणछोर कुँवरि जी का जन्म रींवा में लगभग संवत् १६४६ में हुआ था। इनके पिता का नाम श्रीमान् बलभद्रसिंह था। श्रीमान् बलभद्रसिंह जी रीवाँ के स्वर्गीय महाराजा श्रीमान् विश्वनाथसिंह जी के भाई थे। जब ये छोटी थीं, तभी इनके पिता की मृत्यु हो गई। इनके चचेरे भाई महाराजा रघुराजसिंह जी ने इनका विवाह संवत् १६६१ में जोधपुर के महाराजा श्रीमान् तख्तसिंह जी के साथ कर दिया था। इनके पिता जी राधाकृष्ण के बड़े भक्त थे। इनके पास पिता की प्यारी एक पीतल की मूर्ति थी जिसे श्रीमती जी ने जोधपुर में एक मंदिर बनवा कर स्थापित करा दिया है। कहते हैं कि एक बार कृष्ण जी ने इन्हें स्वप्न दिखाया कि हमारी एक सुन्दर मूर्ति जयपुर से अमुक सुनार के मकान में है, तुम उसे मँगा लो। इन्होंने उस मूर्ति को जयपुर से मँगवाई। ये अंत तक बड़े प्रेम से उस मूर्ति की पूजा करती रहीं। आप बड़ी धर्मात्मा और स्वावलम्बिनी थीं। आपको भागवत से बड़ा प्रेम था। आप कृष्ण-प्रेम में रँग कर कविता भी लिखती थीं। इनकी कविता सरस और भक्तिपूर्ण होती थी। कुछ चुने हुए पदों के नमूने यहाँ दिये जाते हैं :—

१

गोविन्द तुम हमारे, दुख-राशि से उबारे।
मैं सरन हूँ तिहारे, तुम काष्ट-कटक टारे॥

२

तुम प्रीतम हो प्यारे, सिर क्रीट मुकुट वारे।
छोनी छटा पसारे, मोरी सुरत बिसारे॥

३

कोटिन पतित उधारे, सब लग गए किनारे।
मैं हूँ सरन तिहारे, बिगड़ी दसा सुधारे॥

४

गोविन्द के पास आओ मन में विचार लाओ,
पाप कट जाय जाय दरसन पाये ते।
ध्यान लाओ मन में श्रवण में उसे रमाओ,
मन मिल जाय वाहि गुन-गुन गाये ते॥
गुरू के भजन प्यारे गोविन्द सुभाव ही से,
दिलहू में प्रेम बढ़े वाकी छवि छाये ते।
चरन में सीस नाओ भगती में रम जाओ,
कलिहू के पार जाओ भक्ति उपजाये ते॥

गिरिराज कुँवरि

श्रीमती महारानी गिरिराज कुँवरि जी भरतपुर की राजमाता थीं। आपका जन्म लगभग संवत् १६२० और देहांत संवत् १६८० मे हुआ। जहाँ आप समाज और राजनीति की ओर ध्यान देतीं थीं वहाँ आप में साहित्य-प्रेम भी अटूट था। श्रीमती जी ने सं० १६६१ में "श्री ब्रजराज-विलास" के नाम का कविता-ग्रन्थ लिखा जो बम्बई के श्री वेंकटेश्वर प्रेस में छपा है। हिन्दी को भरतपुर राज्य में अच्छा पद मिलना श्रीमती जी की कृपा का ही फल है। आपने आयुर्वेद का प्रचार राज्य में किया है। स्त्री-शिक्षा की बड़ी सहायता करती थीं। समाज-सुधार को बहुत पसंद करती थीं। विवाह आदि अवसरों पर जो निर्लज्जता पूर्ण गारी आदि गाई जाती हैं, उनके स्थान पर सुन्दर-शिक्षा पूर्ण गाने गाया जाना आप अच्छा समझती थीं। "श्री ब्रजराज-विलास" में श्रीमती जी ने ऐसे ही गीतों का संग्रह किया है। उक्त ग्रंथ की भूमिका में आप लिखती हैं:—

"मैं इस पुस्तक में कविता नहीं दिखलाती, न मैं कविता जानती ही हूँ। दो बातों ने मुझको इन भजनों के लिखने की प्रेरणा की है। प्रथम श्री गोपाल जी की कृपा और दूसरे मैं देखती हूँ कि बहुधा यहाँ की स्त्रियों में लज्जित गान करने की रिवाज बढ़ती जाती है। बड़े शोक की बात है कि जिन बातों को अच्छे स्त्री-पुरुष सुनने से शरमाते हैं उन्हीं को

स्त्रियाँ-- जिनका लज्जा ही उत्तम भूषण है—पुकार पुकार और गा गा कर कहें। स्त्रियाँ पुरुषों के नाम ले ले कर अह्लाद पूर्वक ऐसे गीत गाती हैं कि जिनको दृष्टान्त-रूप से भी हम यहाँ लिख नहीं सकतीं। समय-ऋतु के अनुसार अथवा उत्सवादिक में मनोहर, पवित्र, उत्तम विषय-युक्त और मांगलिक गान करना स्त्रियों का धर्म है। इसीलिये गान-विद्या भी स्त्री की चौंसठ कला में मुख्य मानी गई है। स्त्री का सांसारिक देव पति और पारमार्थिक श्री गोपाल जी महाराज हैं। इन्हीं दो को प्रसन्न करने में इस विद्या में भी निपुण होना चाहिये।"

इसके आगे श्रीमती जी लिखती हैं :—

"आशा है कि हमारे देश की स्त्रियाँ निर्लज्ज गीतों को त्याग उनकी जगह इन पदों को काम में लावेंगी। पुरुषों को भी उचित है कि सदा स्त्रियों को बुरी बात और बुरे गाने से रोकते रहें क्योंकि स्त्री कैसी भी होशियार और सभ्य हो तो भी बिना निगाह में रक्खे और उचित उपदेश किये चलायमान हो जाती है।"

श्रीमती जी स्त्रियों में विद्या-प्रचार के साथ साथ उनमें गृह-शिक्षा के प्रचार को अनिवार्य्य और आवश्यक समझती थीं और इसीलिये श्रीमती जी ने 'पाक-प्रकाश' नामक पुस्तक भी लिखी थी, जो छप चुकी है। यदि यह इस लोक में अब तक होतीं तो इनका विचार स्त्रियों के उपयोगी प्रत्येक विषय पर पुस्तकें लिखने का था। कविता भी आप अच्छी लिखती थीं। आपके विचार परिमार्जित और सुन्दर हैं। हम आपकी कुछ रचनायें नीचे उद्धृत करते हैं :—

१

हो प्यारी लागै श्याम सुँदरिया।
कर नवनीत नैन कजरारे, उँगरिन सोहै मुँदरिया॥
दो दो दशन अधर अरुणारे, बोलत बैन तुतरिया।
सोहै अंग चन्दनी कुरता, सिर पै केश बिखरिया॥
गोल कपोल डिठोना माथे, भाल तिलक मन-हरिया।
घुटुअन चलत नवल तन मंडित, मुख में मेलै उँगरिया॥
यह छबि देखि मगन महतारी, लग नहिं जात नजरिया।
भूख लगी जब ठिनकन लागे, गहि मैया की चुँदरिया॥
जाको भेद वेद नहिं पावत, वाको खिलावै गुजरिया।
धन यशुमति धनि धनि ब्रजनायक, धनि धनि गोप नगरिया॥

२

बंसी बज रही तनक तनक मैं, नथ मेरी टूट गई झगरे में।
मैं दधि बेचन जात वृन्दावन, रोक लई डगरे में॥
दधि मेरो खाय मटुकिया फोरी, अरी वाके खपरा परे नरे में।
दुलरी तोर चूंदरी झटकी, अरी वाने डारी बाँह गरे में॥
अब ब्रजपति हँसि बात बनावै, डारत नोन जरे में॥

३

जहाँ न आदर भाव न पइये, मनुआ वा घर कबहुँ न जइये।
टुकड़ा भलो मान को सूखो उलटो खीर न खइये॥

मुखड़ा आगे आदर करते, पीछे खाक उड़इये।
मुँह देखे पर मीठे बोलैं, पीछे ऐब लगइये॥
अपने मतलब हित दरसावैं, काम परे इतरइये।
ऐसे मित्र कबहुं नहिं कीजै, जासों जी पछ्तइये॥
गिरिराऊ धारन हैं स्वामी, जग में मोहिं बचइये॥

४

मोर मुकट शिर पेच कलंगी सजत झूमका कानन में।
नैन विशाल कुटिल भृकुटी छबि छाय रही अति आनन में॥
तेज लसै मुख ऊपर जितनो इतनो नहिं शत भानन में॥

५

अद्भुत रचाय दियो खेल, देखो अलबेली की बतियाँ।
कहुँ जल कहुँ थल गिरि कहूँ कहूँ वृक्ष कहुँ बेल॥
कहूँ नाश दिखराय परत है कहूँ रार कहुँ मेल।
सब के भीतर सब के बाहर सब मैं करत कुलेल॥
अब के घट में आप बिराजौ ज्यों तिल भीतर तेल।
श्री ब्रजराज तुही अलबेला सब में रेलापेल॥

६

दरशन की लगो आस अब मैं कहाँ जाऊँ॥
महल तिवारे मोय न चहिये, टूटी झुपरिया बास।
शाल-दुशाला मोय न चहिये, कारी कमरिया कास॥

कुटुम-कबीले मोय न चहिये, श्यामसुँदर सँग रास।
कृष्णचन्द्र अब से मोय मिलिहैं, ये मन में है भास॥

७

मन मिले की प्रीत महाराजा।
यदुकुल के महाराज कहावत, करते नित अनीत महाराजा॥
कुबजा नारि कंस का चेरी, वाते करो परतीत महाराजा।
सोला सहस गोपिका त्यागीं, छोड़ दयी कुल रीत महाराजा॥
हमने हूँ हरि अब पहिचाने, हमहूँ रहैंगी सभीत महाराजा।
लंकापति भगिनी मद-विह्वल, आई मिलन बिनीत महाराजा॥
कर अपमान कुरूपा कीनी, ज्यों खेती कूँ शीत महाराजा।
कपटी कुटिल चतुर ब्रजनायक, तुमहूँ उनके मीत महाराजा॥

८

कछु दीखत नहिं महाराज, अँधेरी तिहारे महलन में॥
ऐजी ऊँचो सो महल सुहावनो, जाको शोभा कहो न जाय।
तूने इन महलन में बैठ कै, सब बुध दी बिसराय॥
ऐजी नौ दरवाजे महल के, औ दशमी खिड़की वंद।
ऐजी घोर अँधेरो ह्वै रह्यो, औ अस्त भये रवि-चंद॥
ढूँढ़त डोलै महल में रे, कहूँ न पायो पार।
सतगुरु ने तारी दई रे, खुल गये कपट-किवार॥
कोटि भानु परकाश है रे, जगमग जगमग होत।
वाहर भीतर एक सी रे, कृष्ण नाम की ज्योत॥

९

मो तन कौन अधम जग भाई ॥

सगरी उमर विषयन में खोई, हरि की सुधि बिसराई।
मन भायो सोई त कीनो, जग में भई हँसाई॥
कुल की कान बेद मर्य्यादा, यह सब धोय बहाई।
सब ही जानू सब मुख भाखूँ, चलती नाँव चलाई॥
जिनके सँग ते करै बिसासी, साँप होय डस जाई।
सब को बैठ के करूँ निन्दरा, अपनी लेत छिपाई॥
काम-क्रोध मद लोभ मोह के, घेरे हुए सिपाई।
इनते मोहिं छुड़ाओ स्वामी, 'गिरिराज' है शरणाई॥





श्रीमती हेमन्तकुमारी चौधरानी

हेमंतकुमारी चौधरानी

श्रीमती हेमंतकुमारी चौधरानी का जन्म आश्विन संवत् १६२५ में लाहौर नगर में हुआ। आपके पिता का नाम पंडित नवीनचंद्रराय था। बाबू नवीनचंद्रराय पंजाब-विश्व-विद्यालय के संस्थापक, संचालक, अनेक भाषाओं के पंडित, देशभक्त, और हिन्दी भाषा के पुराने सेवक थे। आप बंगाली होकर भी हिन्दी के बड़े हितैषी थे। ६० वर्ष पूर्व जब पंजाब में उच्च शिक्षा का नाम निशान नहीं था, पंजाबी लोग उर्दू को ही अपनी मातृभाषा समझते थे, उस समय बाबू नवीन चंद्रराय जी शिक्षा-विस्तार करने के लिए पहले कार्य्य-क्षेत्र में अग्रसर हुए। हिन्दी भाषा को पंजाब-विश्व-विद्यालय में पढ़ाये जाने के लिये उन्हें कितनी ही बार उर्दू-प्रेमी पंजाबी हिन्दुओं और मुसल्मानों से घोर तर्क-वितर्क-युद्ध करना पड़ा। पंजाब में हिन्दी प्रचार का पहिला श्रेय पं० नवीनचंद्रराय जी को ही है। उन्होंने हिन्दी प्रचार के लिए पंजाब में एक कन्या विद्यालय की स्थापना की। कितनी ही हिन्दी-संस्कृत की पुस्तकें बालक-बालिकाओं के लिए प्रकाशित की। "ज्ञान-प्रदायिनी" नामक पत्रिका भी उन्होने उस समय निकाली जो पंजाब में हिन्दी-प्रचार में सहायक हुई। उन्होंने 'लक्ष्मी-सरस्वती-संवाद' नामक पुस्तक रच कर अपनी गृहिणी और ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती हेमंतकुमारी जी के हृदय में भी हिन्दी भाषा का अनुराग उत्पन्न किया।

श्रीमती हेमंतकुमारी जी की शिक्षा के लिए उनके पिता ने घर पर ही शिक्षक नियुक्त किये। उन्हें हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत की अच्छी शिक्षा दी गई। बाल्यकाल से ही ये हिन्दी की ओर विशेष रुचि रखतीं थीं। ये अपने पिता के आदर्शों पर चलकर आज भी हिन्दी की सेवा में संलग्न हैं।

संवत् १९४२ में आसाम प्रान्त के सिलहट निवासी सुशिक्षित बाबू राजचंद चौधरी के साथ इनका विवाह हुआ। पहले चौधरी जी सरकारी पद पर नियुक्त थे। इन्होंने सिलहट में कई विद्यालयों की स्थापना की है और स्वयं जब तक वहाँ रहे उसकी अवैतनिक सेवा करते रहे। श्रीमती हेमंतकुमारी जी अपने पिता के साथ रह कर तो अनेक स्थानों में घूमी ही थीं किन्तु पति के साथ रह कर भी इन्हें बहुत से स्थानों में घूमने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अनेक स्थानों के भ्रमण से इन्हें कितनी ही बातों का अनुभव प्राप्त हुआ।

आज से ४० वर्ष पहले जब ये अपने पिता और पति के साथ रतलाम राज्य में रहती थीं तब इन्होंने उस समय "सुगृहिणी" नाम की मासिक पत्रिका निकाली। इस पत्रिका का इन्होने ४, ५ वर्ष तक योग्यता पूर्वक सम्पादन किया। पत्रिका का उद्देश स्त्री-शिक्षा और हिन्दी भाषा का प्रचार करना था। किन्तु जब इनके पति आसाम चले गये तो इन्हें भी वहाँ जाना पड़ा। इससे इस पत्रिका का प्रकाशन स्थगित कर दिया गया। इसके बाद जब ये श्रीहट्टनगर में थीं तब इन्होंने वंग भाषा में "अंतःपुर" नामक स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी पत्र का सम्पादन किया।

पिता और पति के साथ ये जहाँ जातीं वहाँ ही स्त्रियों तथा हिन्दी की उन्नति के कामों में विशेष रूप से भाग लेती रहीं। जब ये शिलांग में थी तब वहाँ इन्होंने, महिला-समिति, महिला-पुस्तकालय और बालक-बालिकाओं के लिए विद्यालयों की स्थापना की थी जो आज तक चल रहे हैं। इन्होंने श्रीहट्टनगर में गवर्नमेंट की सहायता से एक उच्च कन्या-विद्यालय खुलवाया और कई वर्ष तक वहाँ स्वयं अवैतनिक रूप से सेवा करती रहीं। वहाँ इन्होंने एक महिला-सभा की भी स्थापना की जो आज भी वर्तमान है।

एक बार ये इतनी बीमार हुईं की बचने की भी आशा नहीं थी; किन्तु आरोग्य हो गईं। जिन दिनों ये बीमार थीं उन्हीं दिनों में पटियाला राज्य में स्वर्गवासिनी विक्टोरिया की पवित्र स्मृति-रक्षार्थ एक उच्च कन्या-विद्यालय के स्थापना का उद्योग किया गया। इसी विद्यालय के संगठन करने के लिए हेमंतकुमारी जी भी बुलाई गईं। किन्तु बीमारी के कारण उस समय वहाँ ये न जा सकीं। २१ वर्ष बाद संवत् १९६३ में हेमंतकुमारी जी पटियाला गईं और कन्या विद्यालय के संचालन का सारा भार अपने ऊपर ले लिया। इस विद्यालय में लगभग ४०० लड़कियाँ पढ़ती हैं। यहाँ ऊँची से ऊँची शिक्षा दी जाती है। आज भी आप इसी विद्यालय की सेवा में लगी हैं। पंजाब में आकर हेमंतकुमारी जी का हिन्दी-प्रेम फिर जागृत हुआ। इन्होंने यहाँ कई हिन्दी के स्कूल खुलवाये। पंजाब के शिक्षा-विभाग के अधिकारियों ने आप को, हिन्दी-योग्यता से प्रसन्न

होकर 'पंजाब-विश्व-विद्यालय की 'प्रवेशिका' परीक्षा का हिन्दी परीक्षक नियुक्त किया।

चौधरानी जी ने हिन्दी भाषा में बहुत सी पुस्तकों की रचना की है। "आदर्श माता" "माता और कन्या" और "नारी पुष्पावली" आदि पुस्तकें बहुत उत्तम और ज्ञान-प्रद हैं। इनकी भाषा विशुद्ध, सरल और मधुर है। बंगाल की स्त्रियों को हिन्दी-साहित्य से परिचित कराने के लिए इन्होंने—"हिन्दी-बँगला-प्रथम शिक्षा" नामक पुस्तक की रचना की है। अभी हाल ही में स्त्रियों के शिल्प-ज्ञान सम्बन्धी एक सुन्दर "सचित्र नवीन शिल्प-माला" नामक पुस्तक प्रकाशित की है। यह पुस्तक बड़ी उपादेय है। इसमें सैकड़ों चित्र हैं। चित्र विलायत से मँगवा कर लगवाये गये हैं। स्त्रियों के बड़े काम की यह पुस्तक है।

श्रीमती हेमंतकुमारी चौधरानी के ११ सन्तानें हैं। पाँच पुत्र और छ कन्या। सभी पुत्र और कन्यायें उच्च शिक्षा प्राप्त और ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित हैं। गृहस्थी की देख-भाल, पुत्रों-कन्याओं की शिक्षा का प्रबन्ध भी स्वयं करती हैं।

चौधरानी जी बंग भाषा की अच्छी पंडिता हैं। हिन्दी-कविता भी आप करती हैं। प्रायः हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनों के अधिवेशनों में भी सम्मिलित होती हैं। आपका हिन्दी भाषण ज़ोरदार और विशुद्ध होता है। सोलहवें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर वृन्दावन में जो अखिल भारतीय अध्यापक-मंडल संगठित हुआ था उसकी आप सभानेत्री बनाई गई थीं। आप बड़ी योग्य महिला हैं।

स्वभाव आपका सरल और नम्र है। आप हिन्दी में कविता भी करती हैं। यद्यपि आपने काव्य-सम्बन्धी कोई पुस्तक नहीं लिखी तो भी रचनायें अच्छी होती हैं। हम इनकी दो-एक रचनायें नीचे देते हैं :—

१

स्मरण

जिसके यश से सब पूरण है,
यह विश्व चराचर व्याप्त अभी।
जिसकी महिमा, प्रतिभा, गुरुता,
लखते रहते हम लोग सभी॥
जल, पावक, चंद्र, रवी वर वायु,
विमोहक हैं टलते न कभी।
उससे बस प्रीति करो नर-नारि,
सुजीवन-लाभ करोगे तभी॥

२

स्तोत्रम्

जय जगदीश्वर देव दयाकर,
सर्व गुणाकर विश्वविधे।
प्रेम-सुधाकर करुणा-सागर,
भुवन मनोहर शान्ति निधे॥
जय भव-भंजन भक्त-सुरंजन,
नित्य निरंजन विश्वपते।

पातकि-तारण पाप-निवारण,
यम-भय-वारण जीव गते ॥
सत्य सनातन, पुरुष पुरातन,
मुक्ति निकेतन, देव हरे।
जय नारायण, परम परायण,
भीमभवार्णव पार तरे ॥
निश्छल, निर्मल, मूर्ति मनोहर,
सकल सुमंगल देव करो।
जय जय शंकर, शिव करुणाकर,
विश्वम्भर दुख पाप हारो ॥

३

संगीत

भव तारण हे, तव नाम लिए।
नहिं दुःख रहे, मम प्राणपते ॥
करुणाकर हे, निस्तार किये।
वहु पापि गने, अगतेर-गते ॥
जग-कारण हे, जगदीश हरे।
दिन रात मेरे, सव जात चले ॥
हित नाहिं किये, निज के पर के।
तुव हाथ धरे, मम दुःख टरे ॥





श्रीमती रानी रघुवंशकुमारी
(राजमाता दियरा)

रघुवंशकुमारी

राजमाता दियरा (अवध-युक्तप्रांत) रानी रघुवंशकुमारी का जन्म सम्वत् १९२५ ज्येष्ठ शुक्ला ७ गुरुवार के दिन हुआ था। आपके पिता का नाम राजा सूर्य्यभानुसिंह था। जो भगवानपुर राज्य के राजा थे। पाँच वर्ष की अवस्था से आपको विद्यारंभ कराया गया। आपके पिता बड़े भगवतभक्त और हिन्दी-कविता के प्रेमी थे। इसलिए पिता का असर आप पर अधिक पड़ा। आपका बचपन का नाम 'गुण-वती' है। आठ वर्ष की अवस्था में आप रामायण भली भाँति पढ़ने लगीं थीं। तेरह वर्ष की अवस्था में आपने सीने-पिरोने, पढ़ने-लिखने तथा कला-कुशलता आदि में विशेष निपुणता प्राप्त कर ली थी।

पन्द्रह वर्ष की अवस्था में आपका विवाह दियरा राज्य सुलतानपुर (अवध) के राजा रुद्रप्रताप साहि से हुआ। वे बड़े दानी और प्रतिष्ठित राजा थे। रानी साहबा का जीवन अत्यन्त आनंद के साथ व्यतीत हुआ। विवाह होने के कई वर्षों तक रानी साहिबा के कोई संतान न हुई। इससे कुछ लोग राजा साहब को दूसरे विवाह की सम्मति देने लगे। पर राजा साहब रानी साहिबा से इतना अधिक स्नेह करते थे कि उन्होने दूसरे विवाह की बात पर ध्यान ही नहीं दिया। अंत में सं० १९४६ ई० में भाद्र-कृष्ण १३ शनिवार के दिन इनके प्रथम पुत्र राजा अवधेन्द्र प्रताप साहि का जन्म हुआ। राजा रुद्रप्रताप साहि का

देहान्त सं० १९७१ में ५४ वर्ष की अवस्था में हो गया। पति के देहान्त के बाद आप अपना जीवन साधुओं की भांति बिताने लगीं हैं।

आपके तीन पुत्र हैं। अवधेन्द्र प्रताप साहि, कोशलेन्द्र प्रताप साहि और सुरेन्द्र प्रताप साहि। इस समय श्रीमान कोशलेन्द्र प्रताप साहि कोर्ट आव वार्डस की ओर से राज्य के स्पेशल मैनेजर हैं। क्योंकि रानी साहबा के बड़े पुत्र राजा अवधेन्द्र प्रताप साहि का मस्तिष्क ठीक न रहने के कारण राज्य कोर्ट आव वार्डस के अंदर आ गया है। सास और पति की मृत्यु के बाद रानी साहिबा 'राजमाता दियरा' के नाम से पुकारी जाती हैं।

राजमाता दियरा बड़ी धार्मिक हैं। आप अनेक तीर्थों की यात्रा कर चुकी हैं। आपके सामाजिक विचार हिन्दू जाति के लिए बड़े लाभ-दायक हैं। आप स्त्री-शिक्षा की बड़ी ही पक्षपातिनी हैं। आपकी रहन-सहन बहुत ही सादी है। स्वभाव अत्यन्त सरल और कोमल है।

चित्रकला का भी आपको शौक है। शिल्पकला में आपने दूर दूर तक प्रसिद्धि पाई है। लंदन की प्रदर्शिनी संवत् १९६८ में आपको ज़रदोज़ी के काम के लिए सोने का पदक मिला था। सं० १९६७ ई० की प्रयाग की प्रदर्शिनी में चिकन के काम के लिए और सं० १९६९ ई० में सुलतानपुर की प्रदर्शिनी में भी आपको पदक मिले थे। गानविद्या में आप निपुण हैं। इस समय आपकी अवस्था ६२ वर्ष की है।

आप काव्य के मर्म को भी खूब समझती हैं और स्वयं प्रशंसनीय कविता करती हैं। आपने हिन्दी के प्रायः सब सुप्रसिद्ध कवियों के

ग्रन्थ भी पढ़े हैं। राजमाता दियरा ने अपने आवश्यक कामों से अवकाश निकाल कर गद्य और पद्य-साहित्य द्वारा स्त्री जाति तथा हिन्दी की बड़ी अच्छी सेवा की है। आपकी लिखी हुई तीन पुस्तकें अभी प्रकाशित हुई हैं।

१—भामिनी-विलास—यह पुस्तक संवत् १६६६ में लिखी गई है। घर-गृहस्थी के सम्बन्ध रखने वाले प्रायः सब विषयों पर रानी साहबा ने इसमें अपने विचारों का वर्णन किया है। इसमें ४७ पृष्ठ हैं।

२—वनिता-बुद्धि-विलास—यह पुस्तक सं० १६७२ ई० में प्रकाशित हुई है। यह स्त्री-शिक्षा-सम्बन्धी ऊँचे दर्जे की पुस्तक है। भाषा उत्तम और सरल है। इसमें १८३ पृष्ठ हैं।

३—सूप-शास्त्र—इस पुस्तक में भोजन बनाने की अनेकों विधियाँ लिखी गई हैं।

इस समय आप एक बड़ी पुस्तक, जिसमें अनेकों भजनों तथा कविताओं का संग्रह किया गया है, लिख रही हैं। आपका एक जीवन-चरित्र "रानी रघुवंश कुमारी" नाम का पं० रामनरेश त्रिपाठी ने प्रकाशित किया है। आप कविता भी अच्छी करती हैं। यहाँ हम आपके कुछ चुने हुए पद्य उद्धृत करते हैं:—

१

फिरै चारिहु धाम करै व्रत कोटि कहा बहु तीरथ तोय पिये तें।
जप होम करै अनगंत कछू न सरै नित गंग नहान किये तें॥
कहा धेनु को दान सहस्रन वार तुला गज हेम करोर दिये तें।

'रघुवंश कुमारी' बृथा सब है जब लौं पति सेवे न नारि हियेतें ॥

२

पिय के पदकंजन-राती ।

विष्णु विरंचि संभु सम पति में छिन छिन प्रेम लगाती ।

तन मन बचन छांड़ि छल भामिनि पति सेवति बहु भांती ॥

कबहुँ नहिं प्रीति सुनाती ।

पिय के० ॥

दासी सम सेवति जननी सम खान पान सब लाती ।

सखि सम केलि करति निसिवासर भगिनी सम समझाती ॥

वंधु सम संग-सँगाती ।

पिय के० ॥

प्रिय पति-विरह अमरपुरहू में रहति सदा अकुलाती ।

पति सँग सघन विपिन को रहिबो सेवत रस मदमाती ॥

हृदय मानहि वहु भांती ।

पिय के० ॥

नाहिंन द्वार रहति नहिं परघर एकाकिन कहिं जाती ।

मूँदति नैन ध्यान उर आनति, 'गुनवति' पति गुन गाती ॥

नहिं मन मोद समाती ।

पिय के० ॥

३

पहिले पै ठगोरी ठगो हमको फिर लाज के बंधन छोरि दिया ।

बलबुद्धि हर्‌यो निज बातन तें अबला अति जान सताइ लियो ॥
निज सीधे चितैबे की साध रही बिरहानल दाढ़ लगाय दियो।
सब बातन में पिय बीर बनो एक प्रीति में दाँव चली न हियो ॥

४

छायेगी जो ज्ञान-घटा हिय में विचार सत्य,
मारुत बहाय स्वच्छ बूँदे झरि लायगी।
जायगी मलीन मति आपनो परायो सब,
रहैगी न देह यह नीके दरसायगी ॥
करैगी कलेस जो पै लहैगी अमोल मणि,
जीव ब्रह्म बीच कछु भेद नहीं जायगी।
खिलैगी सनेह कली धरैगी जो ध्यान अली,
वाकी झांकी इसके खुले ही रहि जायगी ॥

५

जेहि के बल संकर सुद्ध हिये धरि ध्यान सदाहिं जपै गुन गाम।
जेहि के बल गीध अजामिल हूँ सेवरी अति नीच गई सुरधाम ॥
जेहि के बल देह न गेह कछू वसुधा बस कीनो सबै सुर-काम !
धनु बान लिये तुम आठहु जाम अहो श्रीराम बसौ उर-धाम ॥

६

सीतल मंद सुगंध समीर लगे जपि सज्जन की प्रिय बानी।
फूलि रहे बन-बाग-समूह लहै जिमि कीर्ति गुणाकर ज्ञानी ॥

नीक नवीन सुपल्लव सोह बढ़ै जिमि प्रीति के स्वारथ जानी।
गान करै कल कीर चकोर बढ़ै जिमि विप्र सुमंगल बानी॥

७

पिय चलती बेरिया,
कछु न कहे समझाय।
तन दुख मन दुख, नैन दुख हिय भे दुख की खान।
मानो कबहूँ ना रही, वह सुख से पहचान॥
मन में वालम अस रही, जनम न छोड़ति पाय।
बिछुड़न लिखा लिलार में, तासों काह बसाय॥
वालम बिछुड़न कठिन है, करक करेजे हाय।
तीर लगे निकसे नहीं, जब लौं प्रान न जाय॥
जगन्नाथ के सिंधु में, डोंगो की गति जोय।
तस मति पिय के विरह में, हाय हमारी होय॥

८

कहत पुकार कोइलिया हे ऋतुराज!
न्याय-दृष्टि से देखहु विपिन-समाज।
सोना सम्पति काज त्यागि सब साज।
भये उदासी विरिया बिसरी लाज।
ध्यान करहु इत अब सुध कस नहि लेत।
तीछन बहत बयारिया करत अचेत॥

९

खस के बितान पै गुलाब जल फुइयाँ फुइयाँ,
बीजुली के पंखे निसि बासर फिरै करैं।
चंदन कपूर चोवा चम्पा औ चमेली जुही,
आम बौरि मोगरा के इतर झरै परैं॥
रंग भरे संगतरे काबुली अनार मीठे,
पौढ़े जल केवड़ा के डब्बे में भरै तरैं।
जेठ को प्रभाव तेज तेहू पै सताये आप;
स्वेतन की बूंदे मुख मोती सी लरैं परैं॥

१०

पग दावे ते जीवन मुक्ति लही।
विष्णुपदी सम पति पदपंकज छुवत परम पद होवे सही।
निरखि निरखि मुख अति सुख पावति प्रेम समुद के धार बही।
रिद्धी सिद्धि सकल सुख देवैं सो लक्ष्मी पद हरि के गही।
जहँ पति-प्रीति तहाँ सुख सरबस यही बात स्रुति साँच कही॥

११

नीलकंठ गोरे अंग सोहत बिधु बाल भाल हर हर गंगा।
तीन नैन अरुन कमल विहँसत रद विद्रुम हर हर गंगा॥
लिपटे अहि उर बिसाल मुंड माल धारी हर हर गंगा।
पहने कटि नाग छाल ओढ़े मृग चर्म हर हर गंगा॥
जोगी बर ज्ञान तान बैठे कमलासन हर हर गंगा।

बाम भाग पारबती दाहिने वर बदन हर हर गंगा ॥
गोदी गज बदन लाल किलकै हँसि हेरि हर हर गंगा ।
रिद्धि सिद्धि पुत्र सहित बाढ़े सुख सम्पति हर हर गंगा ॥
विनती कर जोरि नाम दीजै मोहिं भक्ति मुक्ति हर हर गंगा ।

१२

चैत चाँदनि में इतै मुरली बजाई मंद मंद ।
तान से वनितान के गल बाँधि के किये बंद बंद ॥
ता समय वृषभानु लाड़लि ह्वाँ गई करि फंद फंद ।
देखि मोहनऊ गये अवलोक के मुख चंद चंद ॥
वहे त्रिविधि बयरिया, त्रिविधि बयरिया ॥
चँदनिया छिटकि रही ।
चम्पा जुही चमेली, चम्पा जुही चमेली ॥
मालति फूलि रही ॥
अवलोकि दुलहिन वेलि के तन फूल-माल विराज ही ।
सुरसाल दूलह सीस सुन्दर मौर कै छवि छाज ही ॥
ऋतुराज के गृह-त्याज आज उछाह परम पुनीत है ।
चकवा सुकोमल कीर-भामिनि गावती रस गीत हैं ॥
बोल मोर पपिहरा, बोलै मोर पपिहरा ।
कोकिल गान करै ।
बिछी लाल पलँगिया, बिछी लाल पलँगिया ।
रेशम की डोर खिंची ॥

१३

है है संभु प्रत्यच्छहिं जो तो अवाहन काहे को सामुहे पूजिये।
अर्थ पदारथ आचमनी कर-कंज दोऊ वृषभांजलि दीजिये॥
ढांपि दुकूल से चंदन लाइ चमेली के हार से शोभित कीजिये।
भाव व प्रीति से कामद मानि के पूजि मनोरथ प्यारी सों कीजिये॥

१४

विमल किरतिया तोहरी कृश्न जी,
फिरी थी उघारी कि वाह वा।
चन्दिनि होइ गगन में पहुँची,
सुरपति कीन बड़ाई कि वाह वा॥
भक्ति होइ संतन में पहुँची,
संतों ने कीन बड़ाई कि वाह वा।
शुद्धि होइ पंडितन में पहुँची,
पँडितों ने कीन बड़ाई कि वाह वा॥
कविता होइ कवियन में पहुँची,
कवियों ने कीन बड़ाई कि वाह वा।
दया होइ परजन में पहुँची,
परजों ने कीन बड़ाई कि वाह वा॥
यकमति होइ भाइन में पहुँची,
भाइयों ने कीन बड़ाई कि वाह वा।

क्षमा होइ ब्राह्मन में पहुँची,
ब्राह्मनों ने कीन बड़ाई कि वाह वा ॥
सत्य सुगन्ध समीर ले पहुँची,
सब जग होइ बड़ाई कि वाह वा ।

१५

सिंधु-तीर इस टिटिहरी, तेहि को पहुँची पीर ।*
सो प्रन ठानी अगम अति, विचलत ना मतिधीर ॥
तेहि प्रन राखन के लिये, आइ गये मुनि वीर ।
परमपिता को सुमिरि कै, सोखेउ जलधि गँभीर ॥



* यह छंद रानी साहबा ने ११-६-१६२२ को श्रीमती कस्तूरीबाई गांधी को पत्र लिखते समय लिखा था ।



श्रीमती राजरानी देवी

राजरानी देवी

श्रीमती राजरानी देवी का जन्म नरसिंहपुर (मध्य-प्रदेश) ज़िले के अन्तर्गत पिपरिया ग्राम में अगस्त सं० १९२७ में हुआ था। आपके पितामह श्रीयुत लक्ष्मणप्रसाद जी कायस्थ उक्त ग्राम में आदरणीय ज़मींदार थे। वे ईश्वर के अनन्य भक्त तथा अपनी समाज में प्रतिष्ठित पुरुष समझे जाते थे। उनके ४ पुत्र थे और उनमें से द्वितीय पुत्र का नाम रामरतनलाल जी था जिनके एक पुत्र तथा दो पुत्रियाँ थीं। इन्हीं रामरतनलाल जी की कनिष्ट पुत्री श्रीमती राजरानी देवी जी हैं। बाल्यकाल से ही आपका स्वभाव सरल, नम्र तथा धैर्यवान् रहा है। हृदय में दयालुता ने विशेष स्थान पाया है।

पूर्व प्रथानुसार आपका विवाह १३ वर्ष की अवस्था में नरसिंहपुर-निवासी श्रीयुत शोभाराम जी के ज्येष्ठ पुत्र श्रीयुत लक्ष्मीप्रसाद जी के साथ सं० १९४० में हुआ था। आपके ससुराल-गृह में आने के समय श्रीयुत लक्ष्मीप्रसाद जी अंग्रेजी विद्याध्ययन करते थे। संवत् १९८० में एकस्ट्रा असिस्टेन्ट कमिश्नर के पद से पेन्शन प्राप्त कर वे अब शान्ति पूर्वक जीवन-यापन करते हैं। सरकार सदैव ही इनकी कार्य-शैली की प्रशंसा करती रही है। उस प्रशंसा का अधिक श्रेय इनकी

श्रीमती राजरानी देवी जी को है जो समय समय पर अपने पति को उचित सलाह देती रही हैं।

स्त्री-समाज की दुर्दशा पर आपको सदैव ही अधिक ध्यान रहा है। समय समय पर अनेक स्थानों पर जहाँ आपको रहने का अवसर मिला है, हिन्दू समाज की स्त्रियों को आप सदैव ही, उचित सलाह देती रहीं हैं। यद्यपि आपके पति के उच्चपदाधिकारी होने के कारण आपके स्वभाव में अधिक परिवर्तन होने की सम्भावना थी किन्तु आप सदैव ही सरल स्वभावा रही हैं तथा अपने से हीन से हीन स्त्रियों से भी मिलने, बात करने तथा समयानुसार उचित सलाह देने में सङ्कोच नहीं किया। इसी कारण अन्य लोगों में इनके स्वभाव और वर्ताव की सदैव प्रशंसा रही है। स्थान स्थान पर आप कई नारी-संस्थाओं की सभानेत्री रही हैं।

आपके ६ पुत्र तथा ४ कन्याएँ हैं जिनका लालन-पालन आपने बड़ी योग्यता तथा सुशिक्षा से किया है। हिन्दी के प्रतिष्ठित नवयुवक कवि श्री० रामकुमार वर्मा 'कुमार' आपके छठें पुत्र हैं। आपको संगीत तथा हिन्दी से अधिक अनुराग था। मासिक पत्र-पत्रिकाओं में आप कभी कभी कविताएँ भी लिखा करती थीं। आपकी मृत्यु सं० १६८४ में हो गयी। आपने 'प्रमदा-प्रमोद' और 'सती-संयुक्ता' नामक पद्य की पुस्तकें भी लिखी हैं। आपने 'वियोगिनी' नाम से भी कई पत्रिकाओं में स्फुट रचनायें प्रकाशित कराई थीं। हम आपकी एक स्फुट और 'सती-संयुक्ता' नामक पुस्तक से कुछ रचनायें नीचे देते हैं :—

१

उन्मादिनी

विषम प्रभञ्जन के प्रकोप से, बिखरेंगे जब केश-कलाप।
ज्योत्स्नानल के प्रखर ताप से, मन में जब होगा सन्ताप॥
मधुर अरुणिमा रहित बनेंगे, शुष्क कपोल आप ही आप।
जब धरणी की ओर देख कर, रह जाऊँगी मैं चुपचाप॥
तब क्या बनमाली आकर दुख-नद से मुझे उबारेंगे।
अपने कोमल हाथों से मृदु, अलकावली सुधारेंगे॥
मुरली की मृदु तान छेड़ कर, शान्ति-सुधा बरसावेंगे।
शुष्क कण्ठ से कण्ठ मिला कर, कोमल-ध्वनि से गावेंगे॥

+ + +

भ्रम है मुझे, ललित लतिका को, समझ न जाऊँ मैं बनमाल।
कृष्ण समझ कर बड़े प्रेम से, चूम न लूँ मैं कहीं तमाल॥

२

देवियो! क्या पतन अपना देख कर,
नेत्र से आँसू निकलते हैं नहीं?
भाग्यहीना क्या स्वयं को लेख कर,
पाप से कलुषित हृदय जलते नहीं?
क्या तुम्हारी बदन-श्री सब खो गई,
उच्च—गौरव का नहीं कुछ ध्यान है?

क्या तुम्हारी आज अवनति हो गई ?
क्या सहायक भी नहीं भगवान है ?
हो रहे क्यों भीष्म—अत्याचार हैं,
इस तुम्हारे फूल से मृदु गात पर ?
मच रहे क्यों आज हाहाकार हैं,
अब नृशंशों के महा उत्पात पर ?
क्या न अब कुछ देश का अभिमान है ?
खो गई सुखमय सभी स्वाधीनता।
हो रहा कितना अधिक अपमान है,
स—मुद इसको कौन सकता है बता ?
नव-हरिद्रा-रंग-रञ्जित अंग में,
सर्वदा सुख में तुम्हीं लवलीन हो।
ग्रन्थि-बन्धन के अनूप प्रसंग में,
दूसरे ही के सदा आधीन हो॥
बस, तुम्हारे हेतु इस संसार में,
पथ—प्रदर्शक अब न होना चाहिये।
सोच लो, संसार के कान्तार में,
बद्ध होकर यदि जिये तो क्या जिये ?
कर्म के स्वच्छन्द सुखमय क्षेत्र में,
किङ्किणी के साथ भी तलवार हो।

शौर्य हो चञ्चल तुम्हारे नेत्र में,
सरलता का अंग पर मृदु भार हो।
सुखद पतिव्रत–धर्म–रथ पर तुम चढ़ो,
बुद्धि ही चंचल अनूप तुरंग हों।
दिव्य जीवन के समर में तुम लड़ो,
शत्रु के प्रण शीघ्र ही सब भंग हों।
हार पहिनो तो विजय का हार हो,
दुन्दुभी यश की दिगन्तों में बजे।
हार हो तो बस यही व्यवहार हो,
तन चिता पर नाश होने को सजे॥
मुक्त फणियों के सदृश कच—जाल हों,
कामियों को शीघ्र डसने के लिये।
अरुणिमायुत हाथ उनके काल हों,
सत्य का अस्तित्व रखने के लिये॥

वंश-परिचय

भव्य भारत-भूमि की स्वाधीनता,
जब यवन से पद दलित थी हो चुकी।
दीखती सर्वत्र थी अति दीनता,
फूट की विष-बेलि भी थी बो चुकी॥
पूर्व यश की क्षीण स्मृति ही शेष थी,
वीरता केवल कहानी ही रही।

बंधुओं में बंधुता निश्शेष थी,
दमन की परिपूर्ण धारा थी बही॥
शत्रुओं को दण्ड देने के लिये,
आर्य्य-शोणित में न इतनी शक्ति थी।
वीरता का नाम लेने के लिये,
म्यान के सौन्दर्य पर ही भक्ति थी॥
ललित ललनाएं बनी सुकुमार थीं,
अङ्ग पर आभूषणों का भार था।
रत्न-हारों पर समुद बलिहार थीं,
सेज ही संसार का सब सार था॥
नेत्र लड़ना ही सुखद रण-रङ्ग था,
चारु चितवन ही अनोखा तीर था।
क्यों न हों? जब प्रियतमों का सङ्ग था,
प्रियतमाओं-युक्त हिन्दू वीर था॥
नेत्र-गोपन कर चिबुक-चुम्बन जहाँ,
प्रेम की विधि का अनूप विधान है।
मातृ-भू के त्राण की गाथा वहाँ,
पापियों के पुण्य-गान समान है॥
किङ्किणी की नाद असि-झङ्कार है,
भ्रू-चपलता है ललित कौशल जहाँ।

वीर रस होता जहाँ शृंगार है,
देश-गौरव की शिथिलता है वहाँ ॥
शुद्ध केसरिया बसन को छोड़कर,
राजसी वैभव जहाँ पर आ गया।
जान लेना वीर पुरुषों में उधर,
शोक का आतङ्क निश्चय छा गया ॥
बाल रवि के क्षीण अरुण प्रकाश में,
तारकों की मालिका जिस भाँति हो।
यवन-रवि-युत हिन्द के आकाश में,
ठीक वैसी आर्य नृप की पाँति हो।
किन्तु ऊषा की अरुणिमा में कभी,
एक दो तारे चमकते हैं कहीं—
इस तरह जब तेज-हत थे नृप सभी,
तब बली थे एक दो नरपति कहीं ॥
एक श्री राठौर नृप जयचन्द थे,
राजधानी थी बनी कन्नौज में।
सत्य-व्रत में यदपि वे अति मन्द थे,
किन्तु रञ्जित थे समर के ओज में ॥
दूसरे चौहान पृथ्वीराज थे,
वे स-मुद •दिल्ली निवासी थे बने।

वीर-तारों में वही द्विजराज थे,
आर्य वीरोचित गुणों में थे सने॥
वीर पृथ्वीराज अति गंभीर थे,
शान्ति से नृप-कार्य करते थे सदा।
किन्तु श्री राठौर (यद्यपि वीर थे)
किन्तु जलते थे हृदय में सर्वदा॥
वे सदा ऐश्वर्य के अभिमान में,
नीच ठहराते चतुर चौहान को।
वे स्वयं अपने गुणों के गान में,
तुच्छ गिनते दूसरों के मान को॥
मित्रता-बन्धन उन्होंने तोड़कर,
शत्रुता की नीव निश्चय डाल दी।
ऐक्य से मुख सर्वदा को मोड़कर,
मातृ-भू परतंत्रता में डाल दी॥
इस तरह भय भूरि दोनों वंश में,
हा! दिनोंदिन शीघ्र ही बढ़ने लगा।
गगन-मंडल-मध्य ऊँचे अंश में,
यवन-दिनकर शीघ्र ही चढ़ने लगा॥
आर्य-दल का शौर्य ठंडा पड़ गया,
यवन-दल में बढ़ चली कुछ वीरता।

हास से यह देश हाय! पिछड़ गया,
आज भी इतिहास देता है पता॥
हाय! कैसे फूट थी इस देश में,
हो गया कैसे महा अपकर्ष है।
दीनता दिखती हमारे वेष में,
यह इसीका क्रान्तिमय निष्कर्ष है।
हे विधाता! आर्य का वर-वंश क्या,
जयति के पद से पतित हो जायगा।
हाय! वह हो जायगा विध्वंस क्या?
क्या महागौरव सभी खो जायगा?
दैव! भारत का पतन जैसे हुआ,
पतित वैसा हो न अरि का देश भी।
भाग्य परिवर्तन महा ऐसा हुआ,
नाम दिखता आज है विश्वेश भी॥

कुमारी संयुक्ता

हो रहा कन्नौज में आनंद है,
हर्ष की धारा नगर में है वही।
वैर और विरोध बिल्कुल बन्द हैं,
सर्व जनता आज हर्षित हो रही॥
भीड़ भारी हो रही प्रासाद में,
खुल गया है द्वार सारे कोष का।

नर तथा नारी हुए उन्माद में,
गूँज उठता शब्द ऊँचे घोष का ॥
नारियाँ सब चली पड़ीं शृंगार कर,
राज्य-गृह की ओर अनुपम हर्ष से।
मधुरिमा-मय सुखद जय जयकार कर,
हृदय के आनन्द के उत्कर्ष से ॥
थालियों में फूल मालाएं सजीं,
गीत गा गा कर चलीं सुकमारियाँ।
हाव-भावों में स्वयम् रति को लजा,
मन सहित कच बाँध सुन्दर नारियाँ ॥
मुग्ध मुग्धाएँ चलीं व्रीड़ा सहित,
शीघ्र सकुचा कर पुरुष की दृष्टि से।
मंदगति से वे चलीं क्रीड़ा सहित,
नेत्र चञ्चल कर सुमन की वृष्टि से ॥
था बड़े आनंद का कारण वही,
एक पुत्री थी हुई जयचन्द के।
हर्ष से थी उमँगती सारी मही,
आ गये थे दिन अधिक आनन्द के ॥
देख उसकी छवि अनूप सुधामयी,
थे चकित सब व्यक्ति नगरो के महा।

सोचते थे हृदय में पुरजन कई,
रूप ऐसा मानवों में है कहाँ ?
चन्द्रमा का सार मानो भर दिया,
बालिका की नवल सुंदर देह में।
स्वयं श्री ने वास मानों कर लिया,
सरल उसके कान्तिमय मुख-गेह में ॥
नेत्र मानो दो रुचिर राजीव थे,
जो रखे हों चन्द्रमा के अंक में।
अङ्ग मानो सुमन-पुञ्ज सजीव थे,
जो सजे हों छवि सहित पर्यंक में ॥
जिस किसीकी आंख उस पर पड़ गई,
देखते ही देखते दिन बीतता।
बस, उसी के हृदय पर थी चढ़ गई,
बालिका के रूप की लोनी लता ॥
चारु चुम्बन से सदन था गूँजता,
स-मुद राका रुचिर हास्य-विलास था।
कौन उनके हर्ष को सकता बता,
जननि का उपमा-रहित उल्लास था ॥
रुचिर मणिमय पालने की सेज पर,
बालिका कर-कञ्ज मञ्जु उछालती।

तब जननि लखती उसे थी आँख भर,
वार वार दुलार कर पुचकारती ॥
बालिका को गोद माँ लेती कभी,
प्रेम से उसका हृदय था फूलता।
छवि मनोहर देख पड़ती थी तभी,
हेम-लतिका में सुमन ज्यों भूलता ॥
इस तरह सुख में दिवस थे जा रहे,
शान्ति रस मानों सदन में था चुआ।
हृदय में सुख-स्रोत थे अविरल बहे,
वह सदन बस स्वर्ग का उपवन हुआ ॥
पुरजनों को जान पड़ता था यही,
बालिका से चन्द्र-मुख काला हुआ।
उस सुता मुख-दीप से सर्वत्र ही,
ज्योतिमय सुख-पूर्ण उजियाला हुआ ॥
हृदय सुख के गीत गाता ही रहे,
टूट जावें सब दुखों के जाल भी।
शान्ति की धारा बहाता ही रहे,
स्नेहमय प्रत्येक मां का लाल भी ॥
('कुमारी-संयुक्ता' से)

सरस्वती देवी

श्रीमती सरस्वती देवी का जन्म पौष-कृष्ण २ सं० १९३३ ग्राम कोइरियापार जिला आज़मगढ़ में हुआ था। आप के पिता पं० रामचरित त्रिपाठी स्वयं एक अच्छे कवि थे। आप महाराज राधाप्रसाद सिंह के. सी. एस. आई. डुमराँव के राजकवि थे। त्रिपाठी जी की मृत्यु अकस्मात ४६ वर्ष की अवस्था में संवत् १९५० में वैसाख में हो गई। श्रीमतीजी की शिक्षा का प्रबन्ध इनके पिता ने स्वयं घर पर ही किया था। इनको पूरी शिक्षा और कविता करने की अभिरुचि इनके पिता के ही द्वारा प्राप्त हुई। आप अपने पिता की एक मात्र संतति होने के कारण पैतृक संपति की अधिकारिणी हैं। पहले आपने व्याकरण, कविता सम्बन्धी अनेक बातें और फिर गणित की शिक्षा प्राप्त की। इसके अनंतर बंगला, अंग्रेज़ी और संस्कृत इन्होंने अपने पिता जी से सीखी।

आपका विवाह नगवा जिला आज़मगढ़ निवासी पं० महावीरप्रसाद जी के साथ हुआ। पंडित जी वहाँ के प्रतिष्ठित ज़मीदार हैं। सरस्वती देवी जी को पति की ज़मींदारी से २) की और पैतृक ज़मीदारी से १) प्रतिदिन की आय है। इसी के द्वारा आप प्रसन्नता से जीवन व्यतीत करती हैं। आपके पाँच संताने हुई। जिसमें से एक पुत्र और एक कन्या जीवित हैं। कन्या का नाम श्रीमती विद्यावती

है। काव्य-रचना अच्छी करती हैं। 'गृहलक्ष्मी' में इनके समय-समय पर लेख भी छपते हैं। श्रीमती सरस्वती देवी जी की रचनायें 'रसिक-मित्र' आदि पुराने पत्रों में छपा करती थीं।

श्रीमती सरस्वती देवी जी पुराने ढंग की स्त्री हैं। आप स्त्रियों की वर्त्तमान उच्छृंखलता और स्वतंत्रता पसन्द नहीं करतीं। आप कविता में अपना नाम "शारदा" रखती हैं। आपका ज्योतिष, व्याकरण पर भी अधिकार है। आपने हिन्दी में कई पुस्तकें लिखी हैं। जिनमें 'सुन्दरी-सुपंथ' 'नीति-निचोड़' 'शारदा-शतक' छप चुकी हैं। 'वनिता-वंधु' प्रेस में ही लुप्त हो गई। 'मन-मौज' अब प्रकाशित होने वाली है। 'सन्मार्ग-प्रदार्शिनी' नामक पुस्तक इनसे किसी ने लेकर लुप्त कर डाला। आज कल आप मँझौली राज्याधीश्वरी का जीवन-चरित्र लिख रही हैं। मँझौली की रानी साहबा इन पर मातृवत् प्रेम रखती हैं। कारण यह है कि इनके पिता पं० रामचरित्र त्रिपाठी और मँझौली नरेश में बड़ी गाढ़ी मैत्री थी। आपने अपनी 'सुन्दरी-सुपंथ' नामक पुस्तक में अपना थोड़ा सा परिचय इस प्रकार दिया है :—

जिला जु आजमगढ़ अहै तामहँ एक विचित्र।
ग्राम कोइरियापार के कवि द्विज रामचरित्र॥
ताकी कन्या एक मैं मूर्ति मूर्खता केरि।
कुलवंतिन-पद धूरि अस गुणवंतिन की चेरि॥
मम शिक्षक कोउ और नहिं निज ही पिता सुजान।
कठिन परिश्रम करि दियो विद्या-दान महान॥

प्रथम पढ़ायो व्याकरण मुनि कछु काव्य विचार।
तदनंतर सिखयो गणित बहुरि सुरीति प्रकार॥
तब कुछ उर्दू फारसी बंगला वर्ण सिखाय।
कुछ अँगरेजी अच्छरन पितु मोहिं दीन्ह दिखाय॥
जब लग मैं मैके रही लिखत पढ़त रहि नित्त।
अब घर पर परवस परी रहि नहिं सकति सुचित्त॥
गृहकारज व्यवहार बहु परे सँभारन मोहिं।
लिखन पढ़न इक संग ही यह सब कैसे होहिं॥
समाचार के पत्र जे आवत हैं मम पास।
तिनके देखन के लिए मिलत न मोहिं सुपास॥

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय, श्रीमती सरस्वती देवी के सम्बन्ध में अपने ता० ६–१–२६ के पत्र में इस प्रकार लिखते हैं :—"श्रीमती सरस्वती देवी कविता में अपना नाम 'शारदा' रखती हैं। इनके पिता पंडित रामचरित्र तिवारी हमारे ज़िले के एक प्रतिष्ठित कवि थे। सरस्वती देवी जी सहृदया हैं और सरस रचनायें करती हैं। इनकी रचना अत्यन्त मधुर और हृदय ग्राहिणी है। ये प्राचीन आदर्श की महिला हैं और यथावकाश हिन्दी-सेवा में संलग्न रहती हैं। नागरिक जीवन न होने के कारण यद्यपि ये जैसी चाहिए वैसी ख्याति नहीं लाभ कर सकीं तो भी उनमें कविता-संबन्धी जो गुण हैं, वे आदरणीय हैं। इनके पति श्रीमान् पंडित महावीरप्रसाद हमारे ज़िले के एक प्रतिष्ठित ज़मींदार हैं और

कष्टमय होने पर भी अपने जीवन को आनंद के साथ व्यतीत कर रहे हैं।"

श्रीमती सरस्वती देवी की रचनायें अच्छी और मधुर होती हैं। गृहस्थी के झंझटों में पड़ी रहने के कारण ये आज कल कविता नहीं लिखती हैं। हम इनकी कुछ रचनायें नीचे उद्धृत करते हैं :—

१

धन्य नवल विधवन समाज संतन दल मण्डल।
धन्य विधवपन ब्रह्मचर्य्य धनि दण्ड कमण्डल॥
धन्य धरम उपदेस मातु कति बचन सुनैबो।
धन्य दिखावन हाथ सती बनि मौत मनैबो॥
धनि जगन्नाथ मथुरागमन, बालू बालक ढाँपनो।
धनि तीरथ तोय चढ़ाइ के, 'शारद' शिव शिव जापनो॥
देखेउँ सुनेउँ अनेक पंथ साधू वैरागी।
जानि जोगिया सिद्ध लालसा दर्शन लागी॥
पै न लगत अन्दाज कौन शुभ काज कियो है।
कासन भयउ विराग कौन सुख त्याग दियो है॥
धन-धाम तज्यो किहि कारने घर घर माँगत खात क्यों।
'शारद' गृह को गारत कियो, पर हिय लख ललचात क्यों॥
दासहिं भरत प्रबोध दृष्टि दासी मुख ओरा।
छाँड़हु दंपति सोच तपोबल देखहु मोरा॥

काह भयो तुव वृद्ध भये घरनी तरुनी है।
तुमहुँ सहज सतभाव विदित इनकी करनी है॥
हम सन्तन चरन-प्रसाद सों अद्भुत बालक पाइहौं।
यहि मम उपदेश इकन्त को 'शारद' बिसरि न जाइहौं॥
प्रात समय अनमोल बीतिगो बनन ठनन में।
जुगल याम लै लीन्ह चेलियाँ भोग-लगन में॥
पिता, पुत्र, पति अभय देव-दर्शन के भरें।
पहुँचत मन्दिर-द्वार उड़न लागे गुलछर्रे॥
सेवक दरबारी ह्वै खड़े दर्शक जान न पावहीं।
'शारद' यहि भाँति महंतजू नित नव ध्यान लगावहीं॥
जगत सृष्टि करता ललाट आड़े सिर जायो।
भसम त्रिपुण्ड बताय रेख आड़ी निरमायो॥
ताहि दुरावत ठानि पतित पण्डित बनि न्यारे।
लीक बड़न की तजत लाज नहिं लजत गँवारे॥
'शारद' अरीति अनरीति में जे नहिं पशु पहिचानते।
तिनके हित सींग बनावही उर्ध्व मुण्ड मनमानते॥
निपटि गयो तकसीम आचरज लोगन केरो।
आतम दास कुम्हार लियो पछताव घनेरो॥
सीख अधर परयंत ठाँव उबर्‍यो नहिं बीचे।
होत बड़ो परिहास बढ़ै उतरैं यदि नीचे॥
हम अगल-बगल रँग वह भरैं नम्बर उदय न अस्त को।

कोउ बहुरि न चेत चढ़ाइ है 'शारद' बन्दोबस्त को ॥

(अप्राप्य 'सन्मार्ग-प्रदर्शिनी' से)

२

नैन कजरारे कोर वारे धनु-भौंह तान,
मारत निसंक बान नेकु न डरत हैं।
बेसर बिसेख बेसकीमत जड़ाऊ देखि,
हारन समेत तारापति हहरत हैं ॥
अधर कपोल दंत नासिका बखानों कहा,
केश की सुवेश लखि शेष कहरत हैं।
श्रीफल कठोर चक्रवाक से निहार तेरे,
उरज अमोल गोल घायल करत हैं।

३

ऐसी नहीं हम खेलनहार बिना रस-रीति करें बरजोरी।
चाहै तजौं तजि मान कहो फिरि जाहिं घरे वृषभानु-किशोरी ॥
चूक भई हमसे तो दया करि नेकु लखो सखियान की ओरी।
ठाढ़ी अहैं मन मारि सबैं बिन तोहिं बनै नहिं खेलत होरी ॥

४

ऊधव जाइ कहो उनसों पठई पतिया जिन युक्ति-भरी है।
ज्ञानी वही जग-जाहिर हैं जिनसों नहिं गाइन हूँ उबरी हैं ॥
साधन जोग स्वतंत्र समाधि विरक्त अली जग सों कुबरी है।
ये व्रजबाल बिहाल महान वियोग की मारु प्रचंड परी है ॥

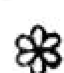
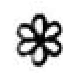
५
स्त्री-शिक्षा

सज्जन सम्बन्धी जे सुपति के तिहारे होहिं,
तिन्हैं अपनाओ चतुराई लिये हाथ में।
नम्रता बड़न माँहि मित्रता सुनारिन सों,
शत्रु-भाव राखिये कुनारिन के साथ में॥
भाखिये सुबैन दास-दासिन सो प्रेम-संग,
धारिये सुध्यान सदा शुभ गुण-गाथ में।
सारिये सकल गृह-काज सुघराई साथ,
वारिये पवित्र प्रीति पति प्राणनाथ में॥

६

राखहिं कुटिल स्वभाव सों, बैर भाव जो कोय।
तुम उन पर मत ध्यान दो, आपुहि लजिहैं सोय॥
विन बिसात अनुसार ही, कार करहु करि गौर।
लहौ जात सुख भोग बहु, बनहु यशी सब ठौर॥
प्रथम कारयारम्भ में, सब की सम्मति लेहु।
निज विचार पति आदि पर, तुरत प्रगट करि देहु॥
जे तिय बाहर चित्त के, करहिं कार हठ-ठानि।
ऋण के भार दबाहिं ते, अन्त होति है हानि॥
नहिं निर्विघ्न समाप्त हो, बिन बाहर के काज।
पुनि अनन्त दुख होत है, अन्त लागत है व्याज॥

जो रुपया-पैसा तुम्हें, मिलै सुखर्चन अर्थ।
राखहु ताहि सँभारि कै, फे कहु नाहिं अनर्थ॥
लघु व्यय जहँ लग हो सकै, करि सुघराई साथ।
रखहु ध्यान यहि बात पर, बंद होहिं नहिं हाथ॥
मोर मनोरथ यह नहीं, निपट कृपण होइ जाहु।
बनहु सूम-घर की सुता, निंदनीय कहलाहु॥
धरहु इकट्ठहि पास में, सौदा-सुलुफ़ मँगाय।
खर्चहु अपने हाथ सों, जिहि बिन बिगरो जाय॥
करहु नियम यहि बात को, धरहु द्रव्य कछु पास।
जासों खर्चन के समय, परहु न निपट निरास॥
जो खर्चहु निज हाथ सों, लिखौ सुव्यारेवार।
जब हिसाब कोउ लेन चह, देत न लागै बार॥
महत काज साधन चहौ, थोरे व्यय के द्वार।
तासु यतन मृदु वचन है, करहु स्ववश संसार॥

दुर्लभ समय अमोघ व्यर्थ मत खोवहु प्यारी।
ईर्षा द्वेष कलह कुकर्म तजि होहु सुखारी॥
हस्त-क्रिया महँ निपुण होहु करिके श्रम भारी।
सूचीकारी आदि जानि अति ही हितकारी॥
बहु हुनर सीखि सुसयानि ह्वै, सुयश सहित सुख पावहू।
जासों असमय मँह काहु सों निज दुख नाहिं सुनावहू॥

भूषण दुचार एक बार एक ठौर पैन्हु,
पैन्हहु सुजानि यामें हानि अति भारी है ।❀
घुँघुरू औ झाँझ आदि वजनी विशेष छड़े,
छमा छम शब्द जासो सब गुन जारी है ॥
ध्यान हू न होय जाको तव प्रति ताकी दीठि,
फेरिबे की पूरी अधिकारी झनकारी है ।
करहु कदापि अंगीकार ये सिंगार नाहिं,
पतिव्रत धारी सुनौ विनय हमारी है ॥

❀ ❀ ❀

नारी धर्म अनेक हैं, कहौं कहाँ लगि सोय ।
करहु सुबुद्धि विचारते, तजहु जु अनुचित होय ॥
हानि लाभ निज सोचि कै, काजहिं होहु प्रवृत्त ।
सुख पायहु तिहुँ लोक में, यश बाढ़ै नित नित्त ॥



❀ श्रीमती जी की यह शिक्षा पुरानी है । आजकल की पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ इस तरह के उपदेश सुनने को तैयार नहीं हैं ।

बुन्देलाबाला

श्रीमती बुन्देलाबाला का जन्म कायस्थकुल में सम्वत् १९४० विक्रमीय में गाज़ीपुर के शादियाबाद नामक कस्बे में हुआ था। आप के पिता श्रीयुत परमेश्वरदयाल जी गोरखपुर के मुहम्मदज़की नामक ज़मीदार के यहाँ मुन्सिफ़ थे। आप अंत तक उक्त ज़मीदार महाशय के यहाँ ही काम करते रहे। आपने बुन्देलाबाला जी को लड़कपन में ही हिन्दी और उर्दू की शिक्षा दी थी। पैतृक गुण के अनुसार बुन्देलाबाला हिन्दी की अपेक्षा उर्दू में ही अधिक योग्यता रखती थीं। इनके चार भाई और एक बहिन थी जो अभी तक जीवित हैं। आपका असली नाम गुजराती बाई था।

आप का विवाह सं० १९६० विक्रमीय में बीस वर्ष की अवस्था में हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान स्वर्गीय लाला भगवानदीन जी के साथ हुआ था। उस समय 'दीन' जी छतरपुर में रहते थे। इतनी दूर ब्याह होने का कारण यह है कि जब इनके पिता को कई वर्षों तक ढूँढने पर भी कोई योग्य पति नहीं मिला तब उन्होंने बुन्देलाबाला जी के मामू महाशय के पास छतरपुर में एक वर ढूँढने के लिये पत्र लिखा। उनके मामू महाशय 'खेम' उपनाम से कविता किया करते थे। दीन जी से उनकी जान-पहिचान थी। उस समय दीन जी की प्रथम पत्नी का स्वर्गवास हो गया था। उन्होंने दीन जी से बुन्देलाबाला

जी से शादी करने का अनुरोध किया। दीन जी ने अपने मित्र का अनुरोध मान लिया। आपके वंश में अधिक उम्र में ही शादी करने की प्रथा है। शादी होने में योग्य वर न मिलने के कारण कुछ विलम्ब हो गया था इसीलिये शादी के समय बुंदेलाबाला जी की उम्र २० वर्ष की हो गयी थी।

शादी के बाद जब बुन्देलाबाला जी को यह मालूम हुआ कि मेरे पति विद्यार्थियों को कविता के ग्रन्थ पढ़ाते और कविता करना सिखलाते हैं और स्वयं भी अच्छी कविता करते हैं तब आप को भी काव्य-ग्रन्थ पढ़ने और कविता करने की इच्छा हुई। आप ने अपने पति से अपनी इच्छा प्रगट की। लाला जी ने आप को कविता-ग्रन्थ पढ़ाना और कविता-करना सिखलाना आरम्भ किया। उन्होंने बुन्देला-बाला जी को विहारी-सतसई और एक छोटी सी अलंकार की पुस्तक पढ़ाई और कुछ छंदों के लक्षण बता दिये। बुन्देलाबाला जी कविता बनाती थीं और लाला जी उसे शुद्ध कर दिया करते थे। इस प्रकार आप दो वर्ष तक मनोयोग और परिश्रम पूर्वक कविता करना सीखती रहीं।

दो वर्ष में आप अच्छी कविता करने लगीं। आप के पति आप की कविताएँ विभिन्न पत्रिकाओं में भेज दिया करते थे। उस समय के 'बाल-हितैषी' 'भारतेन्दु' और 'लक्ष्मी' नामक पत्रिका में आप की कविताएँ प्रकाशित हुई थीं। एक बार पत्रों में 'विधवा-विलाप' पर कविता लिखने की सूचना निकली। सर्वोत्तम कविता लिखने वाले

को एक सचित्र रामायण देने के लिये कहा गया था। लाला जी ने केवल विधवाओं के प्रति स्त्रियों के भाव देखने के लिये अपनी स्त्री से कविता लिखने का अनुरोध किया। बुंदेलाबाला जी ने कविता लिखी और वह लाला जी को बहुत पसंद आई। उसे उन्होंने परीक्षा के लिये भेज दिया। परीक्षक थे आचार्य पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी। उन्होंने इनकी कविता को सर्वोत्तम बतलाया, उसके लिये बुंदेलाबाला जी को इंडियन प्रेस से निकली हुई एक सचित्र रामायण पारितोषिक में मिली थी। आप की अधिकांश कविताओं का संग्रह 'बालाविचार' नामक पुस्तक में है। बुंदेल खण्ड में रहने के कारण आप 'बुंदेलाबाला' के नाम से कविता करती थीं।

आप बड़ी ही पति-भक्ति-परायणा, सहनशीला और दूसरों का मिजाज़ पहिचानने में निपुण थीं। आप जब किसी मनुष्य की दिनचर्या एक बार जान जाती थीं तो आप से कुछ बतलाने या कहने की ज़रूरत नहीं पड़ती थी। ठीक-समय पर उसके पास उसकी मनचाही वस्तु पहुँचा देती थीं। उन्हें इसका अन्दाज हो जाता था कि उस आदमी को किस समय किस वस्तु की आवश्यकता पड़ती है। जब आपके पति कोठे पर बैठे लिखा करते तब उन्हें जब तम्बाकू पीने की जरूरत होती तो वे अकसर देखते कि बुन्देलाबाला जी हुक्का भरे हुए कोठे पर आ रही हैं।

आप रंग-बिरंगे काग़ज़ों को काट कर फूल-पत्तियाँ बनाने में भी बड़ी निपुण थीं। गृहस्थी के कार्यों तथा विभिन्न प्रकार के व्यंजन बनाने

में भी आप बड़ी दक्ष थीं। सम्बत् १९६६ में छब्बीस वर्ष की अवस्था में आप के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र-उत्पन्न होने के पूर्व आप पिता के घर चली आई थीं। वहां पर आप को अतिसार हो गया और अपने आठ-नौ मास के बालक को छोड़ कर स्वर्ग सिधार गईं। वह बालक भी कुछ दिनों के बाद चल बसा।

बुन्देलावाला जी की मृत्यु बहुत थोड़ी ही उम्र में हो गई। वे 'विधवा-विलाप' नामक कविता लिखने के बाद बहुत प्रसिद्ध हो गईं थीं। आप की कविताओं को लोग बड़े चाव से पढ़ते थे। यदि आप अब तक जीती होतीं तो आपने हिन्दी का बहुत कुछ उपकार किया होता। अपने पति के साहित्यिक कामों में भी अच्छा हाथ बँटाया होता। आपकी कुछ रचनायें हम नीचे उद्धृत करते हैं :—

१

चाहिये ऐसे बालक !

परशुराम श्रीराम भीम अर्जुन उद्दालक।
गौतम शङ्कर-सरिस धर्म सत् के सञ्चालक॥
उत्साही दृढ़ अङ्ग प्रतिज्ञा के प्रतिपालक!
शरीरिक मस्तिष्क शक्ति-बल अरिगण-घालक॥
काज करैं मन लाय, बनै शत्रुन उर शालक।
अब भारत माताहिं चाहिए ऐसे बालक॥
दुर्बल अरु भयभीत सदा जो कहत पुकारी।
"अरे बाप! यह काज हमैं सूझत अति भारी"॥

"मैं नाहीं कर सकत" शब्द मुख तें न उचारैं।
"हाँ करिहौं उद्योग", सहित उत्साह पुकारैं॥
सत्य भाव ते कहैं करैं अरु बनै न टालक।
अब भारत माताहि चाहिये ऐसे बालक॥
जो करना है उसे करैं अपने निज हाथन।
देश-भलाई हेत करैं अभिलाषा लाखन॥
कठिन परिश्रम देखि न कबहूँ मन ते हारैं।
भारी भार निहार न कबहूँ कंधा डारैं॥
करैं काज बनि कुल कलङ्क कारिख प्रच्छालक।
अब भारत माताहिं चाहिये ऐसे बालक॥
देखि कठिन कर्त्तव्य उसे जूजू जनि जानैं।
अपना धर्म विचार उसे अपना करि मानैं॥
ऐसे बालक जबहिं देश के मुखिया ह्वै हैं।
तब भारत के सकल दुःख दारिद्र नशैहैं॥
मिटिहैं हित को ताप और कटिहैं जञ्जालक।
अब भारत माताहिं चाहिए ऐसे बालक॥

२

सावधान

सावधान हे युवक उमङ्गो, सावधानता रखना खूब।
युवा समय के महा मनोहर विषयों में जाना मत डूब॥

सर्वकाज करने के पहले पूँछो अपने दिल से आप।
"इसका करना इस दुनिया में, पुराय मानते हैं या पाप"।।
जो उत्तर दिल देय तुम्हारा उसे समझ लो अच्छी भाँति।
काज करो अनुसार उसी के नष्ट करो दुःखों की पाँति।।
कभी भूल ऐसी मत करना अद्धी के लालच में आज।
देना पड़ै कल्ह ही तुमको रत्नमाल सम निजकुल-लाज।।
युवा समय के गर्म रक्त में मत बोओ तुम ऐसा बीज।
वृद्ध समय के शीत रक्त में, फूलै चिन्ता फलै कुबीज।।
पश्चाताप कुरस नित टपकैं बदनामी-गुठली दृढ़ होय।
उँगली उठै बाट में लचते, मुँह भर बात न बूझै कोय।।
यौवन ऋतु वसन्त में प्यारे कुसुम समूह देखि मत भूल।
दवा २ कर युक्ति सहित रख निज उमंग के सुन्दर फूल।।
सावधान! इनको विनष्ट कर फिर पीछे पछतावेगा।
वृद्ध वयस सम्मान सुगन्धित फिर कैसे महकावेगा।।
परमेश्वर के न्याय-तुला की डांड़ी जग में जाहिर है।
उसको ऊँच नीच कछु करना मानव-बल से बाहर है।।
अहंकार सर्वदा जगत में मुँह की खाता आया है।
नय नम्रता मान पाते हैं सबने यही बताया है।।
है प्रत्येक भव्यता के हित इस जग में निकृष्टता एक।
विषय रूप मिष्ठान्न मध्य हैं विषमय आमय-कीट अनेक।।

इन्द्रिय-विषय-शिखर दूरहिं ते महा मनोरम लगते हैं।
निकट जाय जाँचे समझोगे, रूप हरामी ठगते हैं॥
है प्रत्येक ऊँच में नोचा, प्रति मिठास में कड़ुआ स्वाद।
प्रति कुकर्म में शर्म भरी है मर्म खोय मत हो बरबाद॥
प्रकृति-नियम यह सदा सत्य है, कैसे इसे मिटाओगे।
जग में जैसा कर्म करोगे वैसा ही फल पाओगे॥

३

वचन-रत्नावली

प्रीतम प्यारे करि दया, दे अस छाक छकाय।
अति दुरूह पथ-प्रेम को, जाते मृदु ह्वै जाय॥
पीजै छकि छवि छाक नित, जो गुरु आज्ञा देय।
गुरु गाफिल नहिं होहिंगे, कहा श्रेय कह देय॥
रात अँधेरी लहर भय, भँवर परत गंभीर।
का जानै मेरी दशा, जे नर बैठे तीर॥
प्रेम-पंथ परि है कहाँ, जियरा को सुख चैन।
धक धक करि हियरा कहै, उठि पिय देश चलै न॥
चाहन प्रिय संयोग-रस, छनक बीज जनि पार।
पिय प्यारे के प्रेम में, कहा जगत-व्यवहार॥
प्राण ओंठ पै ह्वै रहे, तुम दर्शन के हेत।
थिरमैं अथवा उड़ि चलैं, का तुम आज्ञा देत॥

जो तुम हौ साँची सखी, इतनो यश लै लेहु।
मन-मतंग मानत नहीं, पीतम सों कहि देहु॥
हे धनपति निज छेम हित, तुम्हैं चाहिये एहु।
साधु अकिंचन को सदा, भोजन हित कछु देहु॥
दुहूँ लोक की छेम हित, मुख्य अहैं द्वै काज।
मित्रन पर नित नेह नव, रिपु पै दया-दराज॥
निर्धनता में धीर धरि, राखै मन सानंद।
जीवन को पारस यही, करै कुबेर अमंद॥
जाको जीवन प्रेममय, सो निश्चय अमरेश।
कीरति वाको अमिट है, जागै जगत हमेश॥
सीय विरह की सकल सुधि, तुव सुत रामहिं दीन।
मम कारज हित पवन वर, तुमहुँ भये बल हीन॥
पिय सुधि सागर मगन है, आंसु मोति छिरकाव।
पिय मन-हंसा चुनन हित, संभव कबहुँक आव॥
नयनामृत इन चखन हित, तुव द्वारे की धूर।
तेहि तजि, कहिये आपही, कहाँ जाउँ पिय दूर॥
प्रेम और कुलकानि में भेद लीजिये जानि।
फागराग सो प्रेम है, सामगान कुलकानि॥
को सुरझायो वुद्धि बल, या जग को जंजाल।
प्रेम-पंथ चरचा करौ, छाँडो जग को ख्याल॥

तेरो रूप अनूप लखि, मैं अनुमान्यौं एह।
नेह त्यागिहै नेह परि, बहुतक नाहिं सँदेह॥
मीत सुनौ जग-नीति इक, तुम्हैं कहौं समुझाय।
मानै गुरुजन-बचन जो, सों न कबौं पछिताय॥
जानति हौं मो प्रेम को, भूख तुम्हैं कछु नाहिं।
सहज सलोना रूप तजि, कहु प्रेमो कहँ जाहिं॥
चाखो चाहत अधर-मधु, तो जनि होउ अधीर।
सहन करौ संतोष युत, कटुक बचन की पीर॥
प्रेम-पियाला पी छकै, ताको सुनौ हवाल।
तिल सम कोश कुबेर को, सुरमणि राई छाल॥
प्रेम-पंथ को गूढ़ सुख, प्रेमिहिं सकै बनाय।
वेदान्ती जानै नहीं, दाँत बाय रहि जाय॥
प्रेम तत्व अति गूढ़ है, बुद्धि न सकै बताय।
पहुँचि न पावै, बीच ही, उड़ि कपूर लौ जाय॥
हाथ धोइये कुशल तें, वाही समय सुमित्त।
पीतम तें जा समय तें, ललकि लगाइय चित्त॥
समय पाय संयोग सुख, भोगि लीजिये ख़ूब।
या जग में नहिं रहि सकत, सदा निकट महबूब॥
मीत पवन यदि जाइयो, फिरि वा बाग मँझार।
तो सादर पहुँचाइयो, सबहिं प्रणाम हमार॥

जे नर प्रेमी जनन की, हँसी करत मुसुकाय।
हरपौं, उनको धर्म कहुँ, जग सरि नहिं बहि जाय॥
बेंचन हित्त मद प्रेम को, जो पिय धरै दुकान।
तो मैं निज नयनन करूँ, वा दर को दरबान॥
जा तन की अंतिम दशा, है द्वै मूँठी राख।
ता हित नाहक रचत जन, ऊँचे अटा झराख॥
मतवरो, चोरी करो, करौ अधम सब काज।
पै कुकर्म कीजै न प्रिय, धर्मनीति के काज॥
सजन सलोने श्याम तें, कौन कहै यह बात।
रूप-शाह ह्वै उचित नहिं, प्रेमिन पै गृह-घात॥
शील फांस-बश होत हैं, समझदार रिझवार।
और भांति नहिं फँसत हैं, कोटिन करिये वार॥
बड़ो आचरज जगत में, कहिये काहि सुनाय।
वाही भलो दिखात है, जो चित लेय चुराय॥
धीर-सहित आपत्ति सहि, किये जाव निज काज।
आखिर निश्चय पाइ हौ, सर्व सुखन को साज॥
तुमहिं बतावत ठीक मैं, प्रेमिन की पहिचान।
दृगन-नीर बरसै तऊ, मुखड़ा रहा झुरान॥
कैसी दशा वियोग की, तुमहिं कहौं समुझाय।
दमयन्ती, सीता, सती, जान्यो कह्यो न हाय॥

प्रेम-पन्थ में जो मजा, सो जान्यौ मंसूर ।
लोग कहैं फाँसी चढ़ा, पहुँचा श्याम हजूर ॥
सछ्ल दिखाऊ धर्म तें, खुलो पाप भल होय।
सत्य सत्य याको मरम, लखैं सयाने लोय ॥
मुख्यसार संसार में, है कर्तव्य निदान।
पर अपकार न कीजिये, भजिये श्री भगवान ॥
हे तुकबन्दक कुकवि तुम, काहे करत विषाद।
कविन शक्ति जग पूज्य यह, जानौं ईस-प्रसाद ॥

४

(माता और पुत्र की बात-चीत)

माता—

हे प्यारे कदापि तू इसको तुच्छ श्याम रेखा मत मान।
यह है शैल हिमाचल इसको भारत-भूमि पिता पहिचान॥
नेह सहित ज्यों पितु-पुत्री को सादर पालन करता है।
यह हिम-गिरि त्योंही भारत-हित पितृ-भाव-हिय धरता है॥
गंगा यमुना युगल रूप से प्रेम-धार का देकर दान ।
भारत-भूमि-रूप दुहिता का नेह सहित करना सन्मान॥

पुत्र—

यह जो वाम ओर नक्शे के रेखामय अतिशय अभिराम।
शोभामय सुन्दर प्रदेश है मुझे बता दे उसका नाम॥

माता—

बेटा यह पञ्जाब देश है पुण्य-भूमि सुख-शान्ति-निवास।
सर्व प्रथम इस थल पर आकर किया आरियों ने निज बास॥
कहीं गान-ध्वनि कहीं वेद-ध्वनि कहीं महामन्त्रों का नाद।
यज्ञ फूल से रहा सुवासित यह पञ्जाब सहित आह्लाद॥
इसी देश में बस के 'पोरस' ने रखा है भारत-मान।
जब सम्राट सिकन्दर आकर किया चाहता था अपमान॥
इससे नीचे देख पुत्र यह देश दृष्टि जो आता है।
सकल वालुकामय प्रदेश यह राजस्थान कहाता है॥
इसके प्रति गिरिवर पर बेटा अरु प्रत्येक नदी के तीर।
देश मान हित करते आये आत्म-विसर्जन क्षत्री वीर॥
कोई ऐसा स्थान नहीं है जहाँ अमर चिन्हों के रूप।
वीर कहानी राजपूतों की लिखी न होवे अमर अनूप॥
क्षत्री-कुल-अवतंस वीर वर है 'प्रताप' जी का यह देश।
रानी 'पदमावती' सती ने यहीं किया है नाम विशेष॥
क्षत्रीवंश-जात को चहिये करना इसको नित्य प्रणाम।
क्षत्री दल का जग में इससे सदा रहेगा रोशन नाम॥



गोपाल देवी

श्रीमती गोपाल देवी का जन्म सम्वत् १९४० में ग्राम जिला बिजनौर में हुआ। आपके पिता का नाम पण्डित शोभाराम जी और माता का नाम सरस्वती देवी था। आपके एक भाई हैं उनका नाम श्रोत्रिय भगवान स्वरूप है। बाल्यकाल ही से गोपाल देवी जी बड़ी प्रतिभाशालिनी जान पड़ती थीं। कुछ ही दिनों में इन्होंने पढ़ने-लिखने सिलाई आदि स्त्रियों के योग्य गुणों में योग्यता प्राप्त कर ली। सं० १९५८ में आपका विवाह पण्डित सुदर्शनाचार्य बी० ए० से हुआ। पण्डित जी उस समय प्रयाग के कायस्थ पाठशाला में संस्कृत के प्रोफेसर के पद पर प्रतिष्ठित थे। विवाह हो जाने के कुछ दिनों के बाद पण्डित जी स्वतन्त्र रूप से अपना कारबार करने लगे। आपने 'सुदर्शन-प्रेस' नामक प्रेस खोला और उसी की देख-भाल करने लगे। प्रेस का काम करने के कारण इन्हें प्रोफेसरी छोड़ देनी पड़ी। सरकार पण्डित जी को इङ्गलैण्ड भेज रही थी, लेकिन घर-गृहस्थी तथा कारबार में फँस जाने के कारण नहीं जा सके।

प्रेस खोलने पर श्रीमती गोपाल देवी जी की प्रेरणा से 'गृहलक्ष्मी' नामक स्त्रियों के लाभ के लिये एक मासिक पत्रिका निकाली गई। देवी जी स्वयं पत्रिका का सम्पादन करने लगीं। १९-२० वर्ष तक इस पत्रिका ने बड़े सुचारु रूप से हिन्दी की सेवा की है। यह पत्रिका



श्रीमती गोपालदेवी 'राजवैद्या'

(सम्पादिका 'गृहलक्ष्मी')

हिन्दी की प्रतिष्ठित तथा पुरानी पत्रिकाओं में से थी। स्त्री-समाज में इस पत्रिका का बड़ा आदर था।

श्रीमती गोपाल देवी जी के मामा श्रोत्रिय कृष्णस्वरूप बी० ए० एल० एल० बी० बड़े अच्छे और प्रतिष्ठित वैद्य हैं। गोपाल देवी जी बचपन में अकसर अपने मामा के यहाँ रहा करती थीं। अनेक रोगियों की चिकित्सा इनके मामा के यहाँ हुआ करती थी। इससे इनकी भी चिकित्सा की ओर अभिरुचि हुई। इन्हें चिकित्सा-सम्बन्धी विषय से बड़ा प्रेम था, इससे बड़ी जल्दी इन्होंने अनेक वैद्यक-सम्बन्धी पुस्तकों का अध्ययन कर डाला। यद्यपि उस समय इन्हें स्वप्न में भी इस बात का विश्वास नहीं हुआ कि किसी समय इन्हें भी चिकित्सा द्वारा अपनी बहिनों की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त होगा। ये पहले प्रायः अपने पास-पड़ोस के रहने वाले बच्चों की दवा करती थीं। यह अभ्यास विद्या-व्यसन के रूप में ही होता रहा। अंत में जब ये वैद्यक में खूब निपुण हो गईं तब इन्होंने प्रयाग में 'नवजीवन औषधालय' नामक एक औषधालय की स्थापना की जिसमें दवा कराने के लिए कितने ही रोगी-रोगिणी आती हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि ये बड़ी ही अनुभवी और योग्य वैद्या हैं। वैद्यक में इनकी पटुता का समाचार सुन कर श्रीमती महारानी साहबा बूँदी ने भी इन्हें अपने राज्य में चिकित्सा के लिए बुलाया। उन्होंने आपको सं० १६८१ ई० में 'राजवैद्या' की उपाधि से विभूषित किया।

श्रीमती गोपाल देवी जी हिन्दीकी बड़ी पुरानी लेखिका हैं। आप

बड़ी योग्य और नम्र हैं। आपने हिन्दी में कई पुस्तकें लिखी हैं। उनमें से 'परियों का देश' 'महिला-स्वास्थ्य-संजीवनी' 'दिव्य-देवियाँ' आदि मुख्य हैं। आपने 'राजवैद्या' नामक मासिक पत्र भी स्त्रियों के स्वास्थ्य के लिए तथा चिकित्सा सम्बन्धी निकालना शुरू किया था। आप बड़ी स्पष्टवादिनी और योग्य हैं। आपके दो पुत्र और तीन कन्यायें हैं। आप कविता भी सुन्दर करती हैं। यद्यपि आपने कविता का कोई ग्रंथ नहीं लिखा है तो भी हिन्दी की पुरानी स्त्री-सेविकाओं में आपका ऊँचा स्थान है। आशा है आपके द्वारा हिन्दी का भण्डार दिन प्रति दिन भरता जायगा। आपकी कुछ कविताओं के नमूने नीचे दिये जाते हैं :—

१

हो आयुर्वेद सदैव आयु-सुखदाता।
जैसा उसका इतिहास हमें बतलाता॥
हों सभी स्वास्थ्य-प्रद रहन-सहन के ज्ञाता।
समझे अपने सुत की बीमारी माता॥

हम मूल सुखों का स्वस्थ्य न भूल गवावें।
सब मिटें देश के रोग लोग सुख पावें॥

हों नहीं काल-कवलित अकाल नरनारी।
संख्या न मृत्यु की दिन दिन बढ़े हमारी॥
अब दुख न सहें धन्वन्तरि के जन भारी।
गुड़ियों का सा ही खेल जँचे बीमारी॥

हम स्वयं मृत्यु को वश में अपने लावें।
सब मिटें देश के रोग लोग सुख पावें॥

हो रोग शान्ति-मय कभी न हमें निरासा।
देखें न करुणमय कलि का क्रूर तमाशा॥
हों स्वास्थ्य-पूर्ण तब बँधे समुन्नति-आशा।
है यही 'राजवैद्या' की शुभ अभिलाषा॥

हम एक एक का बहिनों हाथ बटावें।
सब मिटें देश के रोग लोग सुख पावें॥

२

लुक छिप धीरे धीरे देह में दखल कियो,
यासो अंगरेजी में 'लुकोरिया' कहायो है।
पाँव टेकि पायो नाना रूप दिखलायो तब,
रक्त, पीत आदि भाँति २ रंग लायो है॥
मन को मलीन कियो, तन अति छीन कियो,
सन्तति-बिहीन कियो, खूब ही सतायो है।
महिला-समाज बीच स्वास्थ्य-धन लूटबे को,
मौका तकि प्रदर ने गदर मचायो है॥

३

हुआ सवेरा जागो भैया, खड़ी पुकारे प्यारी मैया।
सब अपने धन्धे में लगे, पर तुम आलस ही में पगे॥
विद्या बल धन धर्म कमाओ, भारत माँ का यश फैलावो॥

४

आओ जी भाई आज प्रतिज्ञा करें।

मात पिता जो आज्ञा देवें, उसको सिर माथे पर लेव।
निसि-दिन में करें, आओ जी भाई आज० ॥ १ ॥
पढ़ने लिखने में चित लावें, जिससे कभी न हम दुख पावें।
अच्छे गुण अनुहरें, आओ जी भाई आज० ॥ २ ॥
भाई बहिन सभी मिल बैठें, देख किसी को कभी न ऐंठें।
नहीं किसी से लरें, आओ जी भाई आज० ॥ ३ ॥
बुरे बालकों में नहिं खेलें, भले बालकों में नित मेलें।
अच्छों को अनुसरें, आओ जी भाई आज० ॥ ४ ॥
मिले दरिद्री दुखी कोई हो, चाहे ऊँच नीच जैसा हो,
उसके दुख को हरें, आओ जी भाई आज० ॥ ५ ॥
औरों के दुख में दुख मानें, औरों के सुख में सुख जानें।
ऐसा वृत आचरें, आओ जी भाई आज० ॥ ६ ॥

५

चमगीदड़

एक वार पशु और पक्षियों में ठन गयी लड़ाई घोर।
चमगीदड़ ने सोचा 'हूँगा जो जीतेगा उसकी ओर' ॥
कई दिनों के वाद लख पड़ी उसे जीत जब पशु-दल की।
आय मिला पशुओं में फौरन करने लगा बात छल की ॥

"भाई ! मैं भी तुम में से हूँ पशु के मुख में सब लक्षण।
पशुओं से मिलते हैं मेरे रहन सहन भोजन भक्षण।।
दाँत हमारे पशुओं के से मादा ब्याती बच्चों को।
सब पशुओं के ही समान वह दूध पिलाती बच्चों को।।
सुन उसकी बातें पशुओं ने अपने दल में मिला लिया।
अगले दिन पक्षी-दल ने पशुओं पर भारी विजय किया।।
उसी समय पक्षी-सेना ने चमगीदड़ को पकड़ लिया।
घबड़ा कर चमगीदड़ ने पक्षी-नायक से विनय किया।।
"आप हमारे राजा हैं, हम भी पक्षी कहलाते हैं।
फिर क्यों हम अपने ही दल से वृथा सताये जाते हैं।।
देखो पंख हमारे, हम उड़ते हैं, पेड़ों पर रहते।
हाय आज झूठी शंका-वश अपने दल में दुख सहते।।"
सुन चमगीदड़ की बातें पक्षी-नायक ने छोड़ दिया।
जान बची चमगीदड़ की तब उसने जय-जय-कार किया।।
हुई लड़ाई अन्त, अन्त में सुलह हुई दोनों दल में।
भेद खुला चमगीदड़ का सारा सब लोगों में पल में।।
तब से वह ऐसा शर्माया दिन में नहीं निकलता है।
अन्धेरे में छिप कर चरता नहीं किसी के मिलता है।।
समय पड़े जो दोनों दल की करते हैं 'हाँ जी, हाँ जी'।
वे चमगीदड़ के समान दोनों की सहते नाराज़ी।।

६

भेड़ और भेड़िया

नदी किनारे भेड़ खड़ी एक सुख से पीती थी पानी।
एक भेड़िये ने लख उसको मन में पाप-बुद्ध ठानी॥
बिना किसी अपराध भला मैं इसका कैसे करूँ हनन।
उसे मारने को वह जी में लगा सोचने नया यतन॥
कर विचार आकर समीप यों बोला कपट भरी बानी।
"अरी भेड़ तू बड़ी दुष्ट है क्यों करती गँदला पानी॥"
क्रोध-भरी लख आँख विचारी भेड़ रही टुक वहाँ सहम।
बोली, "क्यों अपराध लगाते हो चित-लाते नहीं रहम॥
मैं तो पीती हूँ पानी तुम से नीचे की ओर।
भला कहीं होती भी होगी जल की उलटी दौर"॥१॥
सुन कर उसके बचन भेड़िया फिर बोला उससे ऐसे—
"पारसाल उस पेड़ तले तूने दी थी गाली कैसे?"
डर कर भेड़ विनय से बोली मन में उसको ज़ालिम जान।
"मैं तो आठ महीने की भी नहीं हुई हूँ, कृपानिधान!"॥
"कहाँ तलक तेरे अपराधों को दुष्टा मैं कहा करूँ।
तू करती है बहस वृथा मैं भूँख कहाँ तक सहा करूँ॥
तू न सही तेरी माँ होगी," यों कह कर वह झपट पड़ा।
भेड़ विचारी निरपराध को तुरत खा गया खड़ा खड़ा॥

जो ज़ालिम होता है उससे बस नहिं चलता एक।
करने को वह ज़ुल्म बहाने लेता ढूँढ़ अनेक ॥

७

धोबी और गधा

किसी एक धोबी ने कपड़े ले आने ले जाने को।
एक गधा पाला, पर उसको देता थोड़ा खाने को ॥
एक बार धोबी कपड़े धो चला घाट से आता था।
कपड़ों से गदहे को उसने बुरी तरह से लादा था ॥
पड़ता था रास्ते में जंगल वहाँ लुटेरे दीख पड़े।
डर से होश उड़े धोबी के और रोंगटे हुए खड़े ॥
कहा गधे से, "अबे, भाग चल, देख, लुटेरे आवेंगे।
मारें पीटेंगे मुझको वे तुझे छीन ले जावेंगे ॥"
कहा गधे ने धोबी से तब "मुझे छीन वे क्या लेंगे ?"
धोबी बोला, "बड़ी बड़ी गठरी तुझ पर वे लादेंगे ॥"
कहा गधे ने, "दया करो मत उनसे मुझे बचाने को।
नहीं नेक भी चिन्ता मुझको उनसे पकड़े जाने की ॥"
"मेरे लिये एकसा ही है, जहाँ कहीं भी जाऊँगा।
वहीं लदेगा बोझ बहुत, औ थोड़ा भोजन पाऊँगा ॥
"मुझे आपके पास अधिक कुछ भी सुख की आशा होती।
संग तुम्हारे तो अवश्य रहने की अभिलाषा होती ॥"

गधा छीन ले गये लुटेरे धोबी मन में पछताया।
'कष्ट बहुत थे दिए गधे को हा! उसका यह फल पाया॥'

८

मौत और घसियारा

किसी गाँव में इक घसियारा। रहता था किसमत का मारा॥
बेटे बेटी जोड़ू जाता। कोई न थे, अल्ला से नाता॥
पर जब पापी पेट न माना। उसने घास छोलना ठाना॥
ठीक दुपहरी जेठ महीना। सिर से पावों वहा पसीना॥
बुड्ढा लगा खोदने घास। हाय पेट यह तेरे त्रास॥
खोद खाद कर बोझ बनाया। थोड़ी दूर उसे ले आया॥
पर जब थक कर हुआ बेहाल। बोझ पटक रोया तत्काल॥
होकर दुखी लगा चिल्लाने। "मौत गयी तू कहाँ, न जाने॥
अरी मौत तू आजा आजा। मुझ पर जरा रहम तू खाजा॥"
दया मौत को उस पर आई। उसने अपनी शकल दिखाई॥
बोली, "बुड्ढे! कह क्या कहता। क्यों नहिं कर्म-भोग तू सहता॥"
आगे देख मौत घसियारा। सिटपिटाय रह गया विचारा॥
पर फिर बोला सोच विचार। "देवी तुम्हीं जगत आधार॥
बड़ी कृपा की तुमने मात। मुझ बूढ़े की सुन ली बात॥
मैंने इससे कष्ट दिया है। बोझ घास का बाँध लिया है॥
पर मुझ से नहिं जाय उठाया। इससे माता तुम्हें बुलाया॥
आप लगा दें नेक सहारा। इतना ही बस काम हमारा॥"





श्रीमती रमादेवी

रमा देवी

श्रीमती रमा देवी का जन्म संवत १६४० में प्रयाग में हुआ। आपके पिता का नाम पं० रामाधीन दुबे और माता का नाम कौशिल्या देवी था। आपके पिता कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। पं० रामाधीन दुबे एक अच्छे इंजीनियर थे। ये पैकोली जिला रायबरेली के रहने वाले थे। श्रीमती जी को विद्याभ्यास घर पर ही कराया गया। बाल्यकाल में मिसेज़ ब्राइबो नामक एक ईसाई महिला द्वारा आपको शिक्षा प्राप्त हुई। आप अपनी पिता की चौथी संतान हैं।

आपका विवाह ८ वर्ष की अवस्था में पं० ललिताप्रसाद त्रिपाठी के पुत्र पं० चंद्रिकाप्रसाद तिवारी से प्रयाग के निहालपुर गाँव में हुआ। ससुराल जाने के बाद भी आप उक्त मेम साहब से सिलाई और संतान-पालन-विधि आदि अनेक महिलोपयोगी कार्य्य सीखती रहीं। आपने दस वर्ष तक उक्त मेम साहब से शिक्षा प्राप्त की।

पंजाब से मुंशी रोशनलाल की धर्मपत्नी श्रीमती हर देवी 'भारत-भगिनी' नाम की पत्रिका निकालती थीं। वे श्रीमती रमा देवी को प्रोत्साहन दिया करती थीं। इससे ये कविता भी थोड़ा-थोड़ा लिखने लगीं। पहले ये मामूली गाने-बजाने के भजन आदि बनाया करती थीं। अनेक दिनों के अभ्यास और कविता-प्रेम से ये अच्छी कविता लिखने लगीं। कुछ दिन बाद ये कानपुर के प्रसिद्ध पत्र 'रसिक-मित्र' में समस्या-पूर्तियाँ छपवाने लगीं। फिर 'भारत-भगिनी' 'स्वदेश-बाँधव'

'मर्य्यादा' 'प्रियंवदा' और 'जान्हवी' आदि पत्र-पत्रिकाओं में इनकी कविता प्रकाशित होने लगी।

ब्याह हो जाने पर जब इनकी सास का देहान्त हो गया तब घर का सारा भार इनके ऊपर पड़ा। इनके दस संताने हैं। सात पुत्र और तीन पुत्री। इनकी ज्येष्ठ पुत्री हिन्दी की प्रेमिका हैं। उनका नाम यशोवतो देवी है। इन्होंने 'सुभद्रा' नामक एक बंगला पुस्तक का अनुवाद किया है। कुछ दिन प्रयाग की क्रास्थवेट कालेज में अध्यापिका भी रह चुकी हैं। श्रीमती रमा देवी ने 'अबला-पुकार' और 'रमा-विनोद' नामक प्रकाशित और कई अप्रकाशित पुस्तकें लिखी हैं जो अच्छी हैं।

आज कल आप बाल-बच्चों के पालन-पोषण के झंझट में पड़कर कविता बहुत कम लिखती हैं। आप पुराने ढंग की स्त्री हैं, इसलिए पत्र-पत्रिकाओं में बहुधा लिखना पसंद नहीं करतीं।

राजापुर बाँदा-निवासी पं० हनुमानदीन मिश्र आपको बहुत मानते थे। वे इन्हें कभी कभी उपदेश और कविता-सम्बन्धी इसलाह दिया करते थे। श्रीमती जी की कविता अच्छी होती है। समस्या-पूर्तियाँ सुन्दर करती हैं। भाषा व्रज और खड़ी दोनों लिखती हैं। इस समय आपकी अवस्था ४१ वर्ष की है। आपकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं :—

१

स्याम के नैन निहारत ही सखी साँची कहौं जिय होत अधीर है।
कीधौं सुधाकर में घन घूमत बन्द नहीं बरसावत नीर है॥

कीधौं गयो छलि मीन प्रवीन सों प्रेम-पयोधर जानि गँभीर है।
भौंह 'रमा' रतिनायक के धनु ताकन में बरसावत तीर है॥

२

घन-रहित नभ-नील प्रगटे धौं सखी शृंगार है।
रेख केशर की सरी भ्रू शीलता की भार है॥
चंद्र चंदन चंद्रिका की दामिनी द्युति जालिमा।
बाल दिनकर भाल रोरी की मनोहर लालिमा॥
मैं थकी छवि देख कर धौं आजु मारुत धीर है।
देखु आली छवि निराली आज जमुना तीर है॥
दो पुरन्दर चाप सुन्दर भावनी भ्रू-वंकता।
धौं निसाकर नीलघन-युत दिव्य लोचन लोलता॥
धौं य छवि शृंगार है आगार अमृत के भरे।
तान सुन कर बाँसुरी की रूप लोचन का धरे॥
है निशाकर या दिवाकर ने किया रथ धीर है।
देखु आली छवि निराली आज जमुना तीर है॥
नवल नीरज नील जल पै धीर निरखन की छटा।
धौं सखी मृदु बाल ससि पै साँवरी घेरी घटा॥
धौं सजग भू भौंर जल में मीन युग छवि में फँसी।
धौं चपल ससि की कला प्रतिबिम्ब बन जल में धँसी॥
चित्त चंचल धौं अचंचल आजु जमुना नीर है।
देखु आली छवि निराली आजु जमुना तीर है॥

धौं सघन वन की सघनता में गुलाबों की कली।
मंद मारुत गुंज मधुकर मान मथने को चली॥
भौंह कीधौं पुष्प-शायक हाथ में रतिनाथ के।
है 'रमा' मूरति मनोहर देख कर लोचन थके॥
तीर है रतिनाथ की उर में अनोखी पीर है।
देखु आली छबि निराली आज जमुना तीर है॥

३

ढैयाँ के पढ़ैया पै गढ़ैया पड़ै नीकी करैं,
कालिजी कासाला पै परीक्षा पाठशाला की।
बनो है सुनारों की पसाड़ी भये मालामाल,
गौने चली बाला आली देखैं लड़ी माला की॥
मकर नहाने चले बाँध के खजाना यात्री,
पाला पड़ै, पंडे अड़ै याचना दुशाला की।
जाहिरे महन्त 'रमा' देखो छैल कोठियों में,
हो गये दिवालिये बहार बढ़ी प्याला की॥

४

कूप तलावन सूख 'रमा' जल बैल बिके घर धान कहाँ है।
छीज गये पट भूख सतावत फागुन को डफ़ गान कहाँ है॥
कोटि उपाय करे जनता अब कौंसिल में वह जान कहाँ है।
डिस्टिक बोर्ड करे कुछ तो अब भारत को अभिमान कहाँ है॥

५

मानी ब्रह्म बानी सों पताल जान ठानी चली,
मुक्ति की निसानी धार चाहत फटी सी है।
आये भई दंग लोप गंग की तरंग देख,
संभु की जटा की छटा धुर लौं अटी सी है॥
देख के अखण्ड तप गंगा जी प्रचण्ड 'रमा',
त्याग के घमंड सम्भु सीस से छटी सी है।
भूप-पित्र-तारन को नर्क से उबारन को,
पन्नगी पिनाकी पग पूजि पलटी सी है॥

६

नहिं जानत खेल खेलाड़ी बने मन आपन हार गये अब सेते।
बसते नहिं मान सरोवर में बसते चलि अन्त कहूँ अब चेते॥
बसते तब पत्थर के बन के पग भूलिहु प्रेम के पंथ न देते।
वह प्रीति सराहिये मीत 'रमा' पग काट के संग हमें कर लेते॥

७

हम चाहैं तुम्हें सो भले ही कहैं हम में तुम्हरो इतबार नहीं।
तुम आग से खेलत हो दिल पै हमरे कहो दाग़-दरार नहीं॥
हम होत निसा नित आवत हैं तुम्हरे मिलने को करार नहीं।
सच प्रेम को पंथ कराल बड़ा सुनो खाना कहीं तुम हार नहीं॥

८

चीज़ भई मँहगी है बजार में गेहूँ लगा अब डेढ़ अढ़य्या।
भूखे रहैं तन ढाँक सकैं नहिं भारत के सिसु लोग लुगैय्या॥

टेर सुनी द्रुपदी की 'रमा' गये बेगि लई पति राखि कन्हैय्या।
दीनदयाल दया करिये कस लाज बिगारत लाल रखैय्या॥

९

रमा न बजेंगे रामदल के दमामे आज,
नाजुक नमाजियों पै साहब लुभाये हैं।
हुआ न दशहरा दिवाने बन ठौर ठौर,
आशिक बने हैं शीश सेहरा बँधाये हैं॥
बूचड़ों के वार तीखी त्योरियों के ताबेदार,
लट्टू हैं लुटक्कड़ों के हाथ पै नचाये हैं।
बूढ़ी मन भाई शाहआलम की प्यारी नीति,
गले से लगाये गए शाह बनि आये हैं॥❀

१०

बचऊ मोरे कालिज माँ पहुँचे सुख का बरनों मतवारे रहैं।
कपड़ा अस जैस तिलङ्गन के अपने तन पै नित धारे रहैं॥
सिखिगे उन नीकी बिटेवन ते अस सूघर पाटी सँवारे रहैं।
बनि ह्वैहैं 'रमा' पटवारी चहे गुर खातहिं साँझ सकारे रहैं॥

आज कहना है हमारा बस अमीरों के लिये।
हाथ लोहे के बने क्या दिल टटोला आपने॥

❀यह छंद सन् १९२४ ई० में प्रयाग में दशहरा बंद होने के अवसर पर लिखा गया था।

दिल भी पत्थर का बना हिलता नहीं डुलता नहीं।
मुँह से उगले आग के जलते लुआरे आपने॥
चाल चल करके खनाखन से भरी हैं कोठियाँ।
देश की क्या कम किया इतनी भलाई आपने॥
बेगुनाहों का गला घोटा तरक्की पा गये।
जड़ दिये तारीफ़ पै सालमें सितारे आपने॥
दर्द शिर होता है सुन करके गरीबों की पुकार।
शान का जौहर नहीं कब है दिखाया आपने॥
देख कर आँखों में आँसू लुत्फ़ आता है तुम्हें।
मुँह चले कब दिल जलों पर तर्स खाया आपने॥
पंगुलों की भीख पर तुमको हसद होती रहे।
ख्वाब में खैरात का आँसू बहाया आपने॥
ऐश में देखा कभी कुछ कुढ़ गये कुछ लड़ गये।
नेकनीयत बन कभी करतब निभाया आपने॥
तङ्ग गलियों में कभी तो आप हैं जाते नहीं।
मेम्बरी के वक्त तो चक्कर लगाया आपने॥
चाल चलते कौंसिलों में आप जाने के लिये।
सर हिलाने के सिवा क्या कर दिखाया आपने॥
देश के हित के लिये एक दो कदम चलते नहीं।
घिस न जावें पाँव खुद पै रहम खाया आपने॥

बन्द बहुयें मर गईं पर साँस नहिं लेने दिया।
ख़ुदबख़ुद को शर्म का शानी जनाया आपने॥
ज़ुल्म कितने हो गए इस देश में देखो 'रमा'।
किन्तु बस लालो लहू को गुल है समझा आपने॥

११

जब साहिब अस बौरहो, सुमिरे होत सहाय।※
'रमा' मान तजि भूलहूँ, ताकी छाँह न जाय॥
'रमा' चाकरी ना करे, करने की फ़रयाद।
साहब अपने दास को, आपै करिहै याद।
कड़ुये मुख लागत 'रमा' पड़त शान पै दाग।
अपना नमक गंवाइये, क्यों कड़ुये मुख लाग॥
सीध लखै सीधे चलै, निश्चय आवत भीर।
'रमा' सीध लखि टेढ़ लखि, प्यादा होत वज़ीर॥
कौन सराहन जोग, जो रस में अंकुर नहीं।
'रमा' सराहिय ऊख, अंकुर नीरस गांठ पर॥

१३

'रमा' दया तापै करो, दीन दुखित जेहि जान।
साहब के सब एक सम, ऋषि पिपीलिका स्वान॥

※ यह छन्द रहीमदास के कतिपय छन्दों के आधार पर लिखा गया है।

'रमा' सलूक कुमित्र को, सत्यरथी को दान।
ये दोउ मिथ्या जानिये, उलटि होंय अपमान॥
मूरख हरि को खोज ही, सहि दुख चारों धाम।
ज्ञानी घर बैठे लखैं, घर घर व्यापक राम॥
'रमा' क्रोध जड़ पाप की, क्षमा धर्म का बीज।
योग क्षमा तप क्षमा सों, जाये शत्रु पसीज॥
समय पड़े पै बड़ेन सों, कबहुँ न माँगन जाय।
थोड़े दामन पै रमा, कुल मरयाद बिकाय॥
बे बोले पर घर घर गये, बात कहत मुसुकात।
'रमा' अनादर होत है, बे पूँछे कहि बात॥
धरि धीरज सहिये विपत, काहु दोखिये नांय।
बिनु हरि के चाहे 'रमा', तृन को सकत हिलाय॥
'रमा' प्रीति अतुलित नसत, कपट फिटकिरी पाय।
सियसम सहि रघुबर बचन, पलटि धँसी महि धाय॥
'रमा' समय जैसो रहै, तैसी बात सुहाय।
शिशु पुपलो प्यारो लगे, ज्वानन रूप नसाय॥
'रमा' समय पर भ्रात सों, भ्रातहुँ माँगन जाय।
होत सहाय सपूत मुख, लेत कपूत छिपाय॥

राज देवी

श्रीमती राज देवी का जन्म सन् १६४६ ई० में प्रयाग में निहालपुर में हुआ। आपके पिता का नाम ठाकुर रामनाथ सिंह था। आपके कई बहनें और भाई हैं। आपके एक भाई ठाकुर राजबहादुर सिंह बी० ए० एल० एल० बी० वकील हैं। दूसरे भाई ठाकुर रामप्रसाद सिंह हैं जो पहले पुलीस में सब इन्सपेक्टर के पद पर थे किन्तु असहयोग के ज़माने में उन्होंने सरकारी पद से स्तीफा दे दिया था। अब आप घर पर रह कर व्यापार करते हैं। हिन्दी की प्रसिद्ध कवियित्री श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान आपकी छोटी बहन हैं। आपकी एक छोटी बहन का नाम सुन्दरिकुँवरि है जो अच्छी कविता करती हैं।

प्रारम्भिक काल में आप की पढ़ाई क्रास्थवेट गर्ल्स कालेज में (जो उस समय स्कूल था) हुई। संवत् १६६८ ई० में आपका विवाह रूपपुर कोट जिला शाहाबाद-निवासी ठाकुर गङ्गोतरी प्रसाद सिंह बी०ए० के साथ हुआ। आपके पति महाराज डुमराँव और महाराजा छतरपुर के नज़दीकी रिश्तेदार थे। थोड़े दिन के बाद वे गया में डिप्टी कलक्टर के पद पर प्रतिष्ठित हुये। अकस्मात संवत् १६६७ में ज्वर के प्रकोप से उनका देहान्त हो गया। पति के देहान्त हो जाने पर राज देवी जी अपने भाई के घर चली आईं।



श्रीमती राजदेवी

सं० १६६१ ई० से आपने कविता लिखना शुरू किया। आपकी कविता प्रायः हिन्दी के सभी पत्रों में प्रकाशित होती थी। पत्र और पत्रिका में 'मर्य्यादा' 'राजपूत' 'स्वदेश-बान्धव' 'रसिक-मित्र' मुख्य हैं। आपकी कविता सुन्दर और परिमार्जित होती है। आपने यद्यपि कोई पुस्तक नहीं लिखी तो भी हिन्दी की स्त्री-कवियों में आपकी गणना है। आप सहारनपुर के एडवर्ड गर्ल्स स्कूल की हेडमिस्ट्रेस और देहरादून के कन्या गुरुकुल में अध्यापिका भी रह चुकी हैं। आपको कई कवि सम्मेलनों से पुरस्कार तथा पदक भी प्राप्त हो चुके हैं। आपके पुत्र का नाम श्रीयुत वीरेश्वर सिंह है जो अच्छी कविता करते हैं।

इधर कई वर्षों से आपने कविता लिखना बन्द कर दिया है। आपकी कविता के कुछ नमूने दिये जाते हैं :—

१

फूले हैं फूल गुलाबन केलनि बेलनि और अनार कली के।
फूल सिंगार किये सरसों अरु लागे सुधा फल डार अमी के॥
जाही औ जूही चमेली खिली तहँ चम्पक फूल हैं भावत जी के।
फूल पलास विकास भये बन झूलत हैं मन मंजु अली के॥

२

लखि वसन्त के आगमन, भे सब फूल विकाश।
मानहु तन सिंगार धर, कीन्हे ऋतुपति बास॥

३

वसंत-वहार

महराज ऋतूपति आय गये। कुसमावलि कुंज दिखात भये॥

तरु पल्लव नव विकसाय रहे। हरियाले वितान तनाय रहे॥
फल वृक्ष रसाल कहीं लटके। मधु दूतिका गान करे डट के॥
शशि विन्दु सुधा बरसावत है। नित चारु कला दरसावत हैं॥
जय हो जननी जय मातु हरे। तरु भाषत हैं मन मोद भरे॥
अलि चम्प शिरीष न आवत हैं। जिमि लोलुप सन्त न भावत हैं॥
अरविन्द पै धाय मलिन्द रहे। तहँ पाय सुधा मकरन्द रहे॥

४

होइ है भारत फेर सुखारी।
विद्या वेद सबै नर पढ़िहैं, होइहैं शिल्प कला पुनि जारी।
उत्तम शिक्षा सब नर लहिहैं, बनिहैं इक समान नर नारी॥
उच्च शिक्षिता पुत्री होइहैं, पुत्र सकल बनिहैं ब्रह्मचारी।
नहिं निज देश कि निन्दा करिहैं, नहिं बनिहैं कपटी दुराचारी॥
धीर गँभीर वीर सुत भारत, लेइहैं आपन काज सँभारी।
निज पौरुष बल दर्व्य कमइहैं, आलस तामस दूर निकारी॥

५

दिन रैन न चैन परे जिनको वृषभान लली सोइ भूल गई है।
अब लाल महीप भये मथुरा कुबजा तिनकी शिर मौर भई है॥
किम पाती लिखेंगे लला हमको उन्हें नन्द के ग्राम से लाज भई है।
बस ऊधव प्रीत निबाहे बने उन निर्गुण रूप की रीत नई है॥

६

देश की दुर्दशा

लखि देश की आरत दशा व्यापी मुझे इतनी व्यथा,
मुझ से रहा जाता नहीं है बिन कहे दुख की कथा।
जीवन हमारा आजकल है हाय पशुओं से गिरा,
हा ! घिर रही है कौन जन से आज यह प्यारी धरा॥
वैभव विमल गौरव हमारा पूर्व का जाता रहा,
जिस शक्ति से भारत भुवन-शिरमौर कहलाता रहा।
गुण-हीन भारत होगया धन-हीन भारत होगया,
बहु दीन भारत होगया सब भांति आरत होगया॥
हिरदय विदारक है दशा जाता कलेजा है फटा,
होता है क्या अब शोक से जो समय हाथों से छुटा।
लख लख दशा इस काल के गाते पुरानी हम कथा,
पर यत्न कुछ मन में न आता दूर हो जिससे व्यथा॥
इस देश की समता अगर हम अन्य देशों से करें,
अवलोक तिनकी नव-कला दृग लाज से नीचा करें।
इस देश में मति-हीनता अरु फूट की ज्वाला दहै,
देखो विदेशों में सुविद्या शान्ति की धारा बहै॥
देखो विदेशों में अहा ! व्यापार कितना बढ़ रहा,
हर साल ही दिन दिन निहारो लाभ कितना हो रहा।

हर सालही इस देश की सम्पति सब वे हर रहे,
वे देश अपना भर रहे व्यापार अपना कर रहे ॥
प्रति अंग उन्नति के लिये मस्तिष्क उन्नति के लिए,
हैं धाम कितने ही बने हर एक शिल्पों के लिए।
है जागने का यह समय हे पाठको! बहु सो चुके,
अरु अब तलक धन समय अपना व्यर्थ में ही खो चुके ॥
जो कुछ बचा है धन समय उत्तम बनाना चाहिये,
निज देश-उन्नति जाति उन्नति में लगाना चाहिये।
हे देश हितकारी सुनो यह सोचना अब चाहिये,
इस देश-सेवा के लिये यक यूथ होनी चाहिये ॥
जिनके हृदय में ऊँच नीचों का न कुछ भी भेद हो,
जिनके हृदय में धर्म अरु मत का न कुछ भी भेद हो।
जिनके हृदय में कुपढ़ कपटी मूढ़ से भी प्रेम हो,
जिनके हृदय में कुपथ गामी यूथ पर भी प्रेम हो ॥
उपदेश हो इतना सरल जो असर उन पर हो सके,
जो दें पलट आचरण जीवन शान्ति सुख से कट सके।
होगा बहुत कुछ लाभ भी इस देश को इस रीत से,
हर एक का जीवन नया हो जायगा इस रीति से ॥

७

प्राचीन-वैभव

कहाँ गया पहले का वैभव कौन विपत अब घेरी है।

हाय वीर भारत इस अवसर हुई दशा क्या तेरी है ?
केसर कहाँ और कस्तूरी कहँ कपूर की ढेरी है।
गूगुल गाद, दोष हरणी मधु भी अब नहीं घनेरी है ?
सुवरण खान कहाँ हीरों की गजमुक्तन अधिकारी हैं।
धन से सुखी कहाँ नर नारी मिलते नहीं भिखारी हैं ?
विलग विलग ये बनी हुई अति सुन्दर सुन्दर क्यारी हैं।
कहाँ पाय जलवायु सुहावन उपज अन्न का भारी है।
हरी हरी है भरी अन्न से देखत लगतीं प्यारी हैं ?
जान सुफल निज कार्य्य कृषक जन होते परम सुखारी हैं ?
कहाँ फलों से लदे हुये तरु हरी हरी सब डरी हैं।
सुरभित फूल खिले कुञ्जन में गुजंत भृंग सुखारी हैं ?
सुभग जलाशय में निर्मल जल अरु शत पत्र दिखाते हैं।
ठौर ठौर पर अहा कहाँ हम ऐसी शोभा पाते हैं ?
कहाँ विहँग वर करें किलोलें कलरव नाद सुनाते हैं।
कोयल कूक और केकी के श्रवण-पुटों को भाते हैं ?
सरस्वती का कहाँ धाम है कहाँ शान्ति विस्तारी है।
सत्य धर्म महराज आपकी छाया किधर सिधारी है ?
कहाँ तेजमय वीर पुरुष वे जननी रक्षाकारी हैं।
जिनके बल थी थमी धरणि अब यह भी दुखी विचारी है ?
हुई सभी सपने की बातें अजहुँ याद वह आती हैं।
सोच २ वह पूरब-गौरव हाय सुलगती छाती है ?

सुनो दयामय कभी देश पर फेर दया दरसाओगे ?
करके कृपा देश जननी पर सुधा-धार बरसावोगे ?
तपनि मिटकर वेग देश को हरा भरा दिखलावोगे।
तरस चुके हैं बहुत नाथ अब नहीं हमें तरसावोगे ?

८

सुनिये कृपानिधि ! कर कृपा विनती हमारी दुख भरी।
है आश हरि तुम हरहुगे ज्यों नित दुखित विपता हरी॥
हे नाथ ! बहु दुख सह चुकी अब तो सहा जाता नहीं।
दिल खोल के रोये बिना हमसे रहा जाता नहीं॥
मद मोह इर्षा दम्भ में शामिल न। मुझ को कीजिये।
करुणानिधे ! यह प्रार्थना स्वीकार मेरी कीजिये॥
नहिं चाहती धन विभव की, नहिं सुयश जग में चाहती।
नहिं बहन चाहूँ वायु में, नहिं रहन जग में चाहती॥
मैं लहन चाहूँ आपकी अरु गहन चाहूँ पद कमल।
नित लेन चाहूँ नाम प्यारो भक्ति तव चाहूँ विमल॥





श्रीमती रामेश्वरी नेहरू

रामेश्वरी नेहरू

श्रीमती रामेश्वरी नेहरू का जन्म सं० १६४६ में हुआ। आपके पिता का नाम श्रीमान् राजा नरेन्द्र नाथ एम० एल० ए० है जो लाहौर के सुप्रसिद्ध व्यक्ति हैं। राजा साहब हिन्दू महासभा के सभापति भी रह चुके हैं। श्रीमती रामेश्वरी नेहरू जी को बाल्य-काल में फ़ारसी और अरबी की शिक्षा दी गई। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' कहावत के अनुसार ये अल्पकाल से ही होनहार दिखलाई देती थीं। तनन्तर आपने अंग्रेज़ी साहित्य का अध्ययन किया। आपका विवाह पं० मोतीलाल जी नेहरू के भतीजे पंडित ब्रजलाल नेहरू के साथ हुआ। पं० ब्रजलाल नेहरू गवर्नमेन्ट आफ़ इन्डिया के आडीटर जनरल हैं। श्रीमती जी को लोग 'ब्रजरानी' के नाम से अक्सर पुकारते हैं। काश्मीरियों में यह रिवाज है कि आधा पति का नाम रख कर उसके आगे 'रानी' शब्द जोड़ देते हैं, वही नाम स्त्री का होता है। इसी से इन्हें लोग 'ब्रजरानी' कहते हैं। आपके कई पुत्र और पुत्रियाँ हैं।

श्रीमती रामेश्वरी नेहरू को हिन्दी से पहले ही से बहुत प्रेम था। जब ये प्रयाग में आईं तब इन्हें 'स्त्री-दर्पण' नामक हिन्दी की पुरानी पत्रिका का सम्पादन-भार ग्रहण करना पड़ा। इन्होंने उस पत्र का कई वर्षों तक बड़ा अच्छा सम्पादन किया। आपने कई पुस्तकें लिखीं

हैं, लेकिन वे अभी तक प्रकाशित नहीं हुई हैं। आपका 'सुर्य्यदेव का आगमन' एक मनोहर उपन्यास हमने 'मनोरमा' पत्रिका में क्रमशः प्रकाशित किया था। वह उपन्यास बड़ा ही सुन्दर और कौतूहल-वर्द्धक है। हिन्दी के एक प्रसिद्ध लेखक उस उपन्यास का प्रारम्भिक परिच्छेद पढ़ कर यह कहने लगे कि 'यह उपन्यास पढ़ कर संस्कृत की कादम्बरी के पढ़ने का सा आनन्द मिलता है।' हिन्दी से आपको बहुत प्रेम है। जब ये कोई लेख लिखने लगती हैं तो इस बात का पूरा प्रयत्न करती हैं कि फ़ारसी-अरबी तथा उर्दू के शब्द उसमें न आने पावें। आप अंग्रेज़ी तथा हिन्दी में बड़ा सुन्दर व्याख्यान देती हैं। अंग्रेजी-साहित्य में आप काफ़ी दखल रखती हैं। प्रयाग में रहते समय आपने एक 'महिला-समिति' की स्थापना भी की थी। यह सभा प्रयाग की स्त्रियों को उन्नति के लिये स्थापित की गई थी। श्रीमती रामेश्वरी नेहरू जी इस सभा की मन्त्राणी रहीं। इस सभा द्वारा स्त्री-समाज का समय समय पर लाभ हुआ है। स्त्री-समाज के सुधार के लिए भी आप सतत प्रयत्न करती रहती हैं। परदा प्रथा की आप घोर विरोधिनी हैं।

श्रीमती जी अखिल भारतीय महिला सभा की मन्त्राणी रह चुकी हैं और उसकी आज कल एक प्रभावशालिनी सदस्या भी हैं। आपका व्याख्यान सुन्दर होता है। आप सहवास-वयजांच-कमेटी की भी सदस्या रह चुकी हैं। आप बड़ी सुन्दर और महावरेदार भाषा लिखती हैं। तथा समयानुसार स्त्रियों की उन्नति के लिये खूब प्रयत्न करती रहती हैं।

आप में सरलता और नम्रता कूट कूट कर भरी है। विदुषी होते हुए भी आपको गर्व नहीं है। प्रायः उर्दू के ढङ्ग पर आप कविता भी सुन्दर करती हैं। आपकी कविता का एक नमूना देखिये :—

सरोजिनी-स्वागत*

१

चमन में आज ये कैसी बहार आई है।
कली कली-को हँसी बेक़रार आई है॥
गुलों का रङ्ग भी शबनम निखार आई है।
नसीमे-सुबह जहाँ में पुकार आई है॥
नसीब जाग उठे, आई हैं मिन्नतें दिल की।
कमल के फूल से रौनक़ हुई है महफ़िल की॥

२

प्रयागराज में आईं सरोजिनी देवी।
खुद आमदीद का है शोर, हर जगह है खुशी॥
है सच तो ये कि, हमारी कहाँ ये क़िस्मत थी।
ज़बाने हाल से यह कहती है महिला-समिति॥

* यह कविता श्रीमती नेहरू ने, प्रयाग में श्रीमती सरोजिनी नायडू के पधारने पर, प्रयाग-महिला-समिति की ओर से स्वागत करते हुए पढ़ी थी।

खुदा की शान है जाहिर जिधर को देखते हैं।
कभी हम उनको कभी अपने घर को देखते हैं॥

३

जहाँ में नाम का इनके है गुलगुला हरजा!
ज़बाँ से हो नहीं सकती कुछ इनकी मदहोसना॥
है इनके इल्म का दुनियाँ में हर जगह चर्चा।
कलाम जिससे किया उसको कर लिया अपना॥
दहन से वक़्-सखुन इनके फूल झड़ते हैं।
ये वो अदा है कि जिस पर हज़ारों मरते हैं॥

(४)

है शाएरी व फ़साहत में जिस्मो जाने सख़ुन।
अदाए नग़मए रंगी में बुलबुले गुलशन॥
सियासियात में मर्दों से बढ़ के माहिरे फ़न।
बलन्द कर दिया यूँ औरतों का पोज़िशन॥
ये कॉंग्रेस के लिये सदर इन्तखाब हुई ❀।
थीं पहले माह तो, अब फ़ख़रे-माहताब हुईं॥

(५)

हम इनमें नाज़ जहाँ तक करें वो सब कम है।
ये ज़ात हिन्द में इक नेमते मुजस्सम है।

❀ श्रीमती सरोजिनी नायडू कानपुर-कांगरेस की सभापति निर्वाचित हुई थीं।

हमारे दिल की बस अब आरज़ू ये पैहम है।
जो और ऐसी ही कुछ दम हों फिर तो क्य ग़म है।
जो दर्द दुःख है तो सब मिल के खाक हो जाय।
हमारा मुल्क मुसीबत से पाक हो जाय॥

(६)

अदाए शुक्र में इनके ज़बान क़ासिर है।
जो हम पे इनका है अहसाँ वो सब पे ज़ाहिर है।
की ज़ात इनकी मददगार और नासिर है।
ये अपने सनफ़ की मंज़ूर इनको खातिर है।
कि इतने दूर से आई हैं और ज़हमत की।
मगर हैं रञ्ज हमें ये कि कुछ न खिदमत की॥

(७)

दुआ है, रक्खे खुद जब तक है आस्माँ बाक़ी।
ज़मीं को घेरे हुए है ये लामकाँ, याक़ी।
है रोज़ो-शबनमो इशरत की दास्ताँ बाक़ी।
हयातो मौत है और गर्दिशे जहाँ बाक़ी।
कमल खिला हुआ दिल का बा आबोताब रहे।
तुम्हारा नाम सदा मिसले आफ़ताब रहे॥

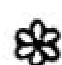


कीरतिकुमारी

श्रीमती महारानी परिहारिन माँ साहबा उपनाम 'कीरति-कुमारी' का जन्म सं० १९५२ फाल्गुन शुक्ल ९ रविवार को हुआ था। आप सेन्ट्रल इन्डिया के विशाल राज्य रींवा की राजमाता हैं। आप बड़ी कृष्ण-भक्त और हिन्दी की स्त्री-कवियों में आदर्श हैं। आपने संवत् १९८२ में रीवां राज्य के लक्ष्मण बाग में दीनानाथ का एक मन्दिर निर्माण कराया है। आप बड़ी दयालु, साधु-सेवी वैष्णव मतानुयायिनी हैं। आपकी कविता कृष्ण-प्रेम के रङ्ग में रङ्गी होती है। सं० १९८१ में आपकी कविताओं का एक संग्रह 'श्रीराधा-कृष्ण-विनोद-भजनावली' नाम से प्रकाशित हुआ है। यह लगभग ५५० पृष्ठ का बड़ा ग्रंथ है। यह ग्रंथ युवक, युवती, वृद्ध साधुमहात्मा सबके पढ़ने योग्य है। इस ग्रन्थ में श्रीकृष्ण जी के जन्मकाल से द्रोपदी-लीला तक की सभी घटनायें सुन्दर कविता में वर्णित की गई हैं। पुस्तक के अन्त में 'भजनावली' नाम से आपकी फुटकर कविताओं का संग्रह किया गया है। आपने कई और भी ग्रंथ बनाये हैं जो अप्रकाशित हैं। कविता में आप व्रज और खड़ी दोनों भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करती हैं। आपकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं:—

वादा करके मेरे श्याम दगा दी तूने।
गैरों के रहके सारी रात गमादी तूने॥

शाम से रात तसौअर में गुज़ारी मैने ।
क्या बिगाड़ा था मेरी जान सज़ा दी तूने ॥
जान जाती है मेरी तुझको मज़ा आता है ॥
वादा करके भी मुहब्बत को घटा दी तूने ॥
तुम मिलो या न मिलो मैं तुम्हें भूलूँगी नहीं ।
मिल गये गर तो जी 'कीरति' को बना दी तूने ॥
रात भर वस्ल में मिल करके मज़ा दी तूने ।
लगी थी आग मेरे दिल में बुझा दी तूने ॥
मिले गये नन्दलला क्या करूँ उनकी मैं अदब ।
लेके उल्फ़त का मज़ा खूब चखा दी तूने ॥
रात की बात सखी क्या कहूँ कुछ कह न सकूँ ।
मिल गये श्याम मुझे रात जिला ली तूने ॥
हो गये कीर्ति-पिया अब न किनारा करना ।
अब तो मिलना पड़ेगा बान लगादी तूने ॥

कहा सखी ने श्याम का पयान मथुरा का ।
तो दम निकल गया सुनते ही नाम मथुरा का ॥
मैने उनसे था कहा प्रीति ना निबाहोगे ।
नाम ले चल दिये नँदलाल आज मथुरा का ॥
अब न छोड़ो यहाँ सोचो ज़रा घनश्याम मुझे ।
जीती न पावोगे भुलाओ नाम मथुरा का ॥

अगर चलोगे तो 'कीरति' भी चलेगी सँग में।
बिन लिये जाने न पाओगे श्याम मथुरा का॥

२

मैं काही समुझाऊँ मन मानै न वैन।
या जग में अनरथ का मेला, तबहुँ करत कछु भै न॥
मैं काही०
या जग में कोई आपन नाहीं, तबहुँ रहत सठ चैन॥
मैं काही०
यहि नगरी षट चोर बसत हैं, करत रहत नित सैन॥
मैं काही०
यह गुनि 'कीरति' सरनन आई, हरिपद कछु भय है न॥
मैं काही०

३

पति-वियोग ❀

हाय अब मेरे लिये संसार यह निस्सार है।
यातना की आँधियाँ हैं और हाहाकार है॥
घर वही है और सम्बन्धी वही मौजूद सब।
एक प्यारे तुम बिनाही हाय! जीवन भार है॥

❀ यह करुणा-रस से सनी रचना महारानी साहबा ने रीवां के स्वर्गीय महाराज अपने पति श्रीमान् वेंकटरमण सिंह जू देव के गोलोक-वास होने पर लिखी थी।

आँख मुँदती देखती त्योंही वही सुचि मूर्ति है।
आँख जो खुलती वही तस्वीर फिर बेकार है॥
याद करके बल व बुद्धी गुण तुम्हारे कलपती।
पर करूँ क्या भाग्य से अपनी सदा ही हार है॥
प्रिय वचन कानों में पड़ते थे जो प्रियतम आपके।
फिर सुना दो चाहना वह प्रति घड़ी प्रतिवार है॥
हाय जो पाती तुम्हें छाती लगाती प्रेम से।
पर कहाँ खोजूँ न सूझे यह जगत अँधियार है॥
देख लो राजन्! तुम्हारी रो रही सारी प्रजा।
तुम नहीं करते दया बस क्या यही उपकार है॥
सब कुटम्बी सुहृद गण इस दुःख से परिपूर्ण हैं।
शोक घन थामे हुए सूना पड़ा दरबार है॥
दीन गौशाले की गायें बिन सहायक हो गईं।
राँभती हैं नाद करती हाय! हाहाकार है॥
देश हित यह जगत हित के वास्ते था पुन किया।
स्वामी इस धोखा घड़ी का हाय पारावार है॥
प्राण-प्यारे हा दुलारे छिप कहाँ ऐसे रहे।
खोजती दासी मगर पाती नहीं लाचार है॥
आप की तो इस जुदाई से कलेजा फट रहा।
वहुत समझाती न रुकती आँसुओं की धार है॥

क्या उचित प्रियतम यही था छोड़ हमको चल दिये।
नव अवस्था है अभी बेड़ा मेरा मँझधार है॥
यदि यही इच्छा रही तो हाथ क्यों पकड़ा मेरा।
प्रीति पति नेकी कहाँ अब खो गई सरकार है॥
भूमि फट जाती कहीं तो मैं समा जाती वहीं।
हाय! दुखिया का नहीं कोई हुआ आधार है।
दीन भिक्षुक देख हरदम आप करते थे दया।
फिर मुझे फिर क्यों रुलाना आपको स्वीकार है॥
जब कहीं जाते वहां से लौटते फिर आप जब।
प्रेम से छाती लगाते अब कहाँ वह प्यार है॥
क्या ही उत्तम हो अगर प्रभु देह यह छूटै मेरी।
छूट जाऊँ क्लेश से जाऊँ जहाँ भरतार है॥
रो चुकी रोती रहूँगी जन्म भर महराज मैं।
प्राणप्यारे के बिना सूना हुआ घर बार है॥

३

अब तो मोहन से भी लगी लगन,
हम प्रिय प्यारे की छबि में मगन।
अंग अंग युगल शोभा सँवार,
लखि दोउन लाजत कोटि मदन॥
मुसकात दोऊ जब मन्द मन्द,
दामिनी सो चमकत दोउन रदन॥

'कीरति' उन निवसतु युगल प्रिये,
रहे ध्यान सदा तव युगन पगन ॥

४

हमारे श्यामसुन्दर को इशारा क्यों नहीं होता।
पड़ा है दिल तड़पता है सहारा क्यों नहीं होता ॥
हुई मुद्दत से दीवानी न तूने ख़बर ली मेरी।
मरीज़े इश्क में मरना हमारा क्यों नहीं होता ॥
न कल दिन रात है मुझको जुदाई में तेरे प्यारे।
लबों पर जान आई है सहारा क्यों नहीं होता ॥
न दुनियाँ मुझको भाती है न मैं भाती हूँ दुनियाँ को।
मगर 'कीरति' का दुनिया से किनारा क्यों नहीं होता ॥

५

कृष्ण-जन्म

सगुण स्वरूप सर्व व्यापक त्रिलोकीनाथ,
जोई देवि देवकी के जनम लेवैया हैं।
जोई देवकी की पायँ-बेड़ी कटाकट्ट काटि,
द्वार फट्टाफट कारागार उघरैया हैं ॥
विविध प्रकार वासुदेव को बुलाय जोई,
ढाढस बँधाय नन्द-ग्राम पधरैया हैं।
सोई दीनानाथ आज 'कीरतिकुमारी' गृह,
जनम लेवैया दुख दारुण हरैया हैं ॥

जगत पलैया ग्वाल बाल को कन्हैया जोई,
लाल नन्दरैया बलदाऊ जी के भैया हैं।
मथुरा जवैया मैया पालने झुलैया जोई,
दुष्ट पूतना के प्राण छण में नसैया हैं॥
गौवन चरैया काली कामरी ओढ़ैया,
मन गोपिन हरैया मीठी बाँसुरी बजैया हैं।
सोई दीनानाथ आज 'कीरतिकुमारी' गृह,
जनम लेवैया दुख दारुण हरैया हैं॥
लीला के करैया नेक माखन चोरैया,
दधि दूध के लुटैया रास-मंडल रचैया हैं।
गिरि के धरैया ब्रज बूड़त बचैया,
गर्व इंद्र के हरैया वस्त्र गोपिन चोरैया हैं॥
वृषासुर दुष्ट अघ वक के वधैया,
प्राण दासन रखैया घट घट के रमैया हैं।
सोई दीनानाथ आज 'कीरतिकुमारी' गृह,
जनम लेवैया दुख दारुण हरैया हैं॥
कालीदह कूदि काली नाग के नथैया,
लादि कमल पठैया नन्द-संकट हरैया हैं।
मथुरा जवैया वस्त्र रजक लुटैया,
जोई कूबरी हरैया पीड़कबल हनैया हैं॥

दुखदाई कंस को विध्वंस के सुईस जोई,
निज दीन दासन के दुख के हरैया हैं।
सोई दीनानाथ आज 'कीरतिकुमारी, गृह,
जनम लेवैया दुख दारुण हरैया हैं॥

७

मुनि सिद्ध सब हर्षाय किन्नर, यक्ष गन्धर्व आपहीं।
चढ़ि चढ़ि विमानन अमित सुरगण, तियन सँग नभ छावहीं॥
दुन्दुभि बजावत गीत गावत, अमित सुख उपजावहीं।
शुभ करत कलरव सुर मिले सब, जयति जयति उचारहीं॥
फल फूल बरसत करत जय सब , जात सुख नहिं मुख कहें।
नभ सुनत धुनि है पुलकि व्रज-जन, धन्य व्रज सबने कहे॥
सुर तिय सिहाँतीं बात कहतीं, धन्य हैं व्रज की तिया।
है भाग्य नहिं इन सरिस हमरी पुन्य क्या इनने किया॥



तोरन देवी शुक्ल 'लली'

श्रीमती तोरन देवी शुक्ल 'लली' का जन्म सं० १९५३ श्रावण शुक्ल द्वादशी को जिला जबलपुर के पिपरिया नामक ग्राम (इनकी ननिहाल) में हुआ। आपके पिता पं० कन्हैयालाल तिवारी प्रयाग के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में हैं। इनके पितामह का नाम पं० लालताप्रसाद त्रिपाठी कान्यकुब्ज जाति तथा समाज में बड़े प्रतिष्ठित और गण्यमान्य व्यक्ति थे। आपका घर जिला उन्नाव के दिलवल नामक ग्राम में है। सन् १८५७ ई० के ग़दर के समय से आप प्रयाग में निवासस्थान बना कर रहने लगे।

जब ये गर्भ में थीं तब उन्हीं दिनों इनके माता-पिता कारण वश गुजरात गये थे। वे जब लौटने लगे तो वहाँ की सबसे प्रसिद्ध और महिमामयी देवी "तोरनवाली माता" के दर्शनार्थ गये। वहीं उन्होंने एक प्रतिभामयी पुत्री की अभिलाषा की थी। इसीलिये जब ये पैदा हुईं तो उन्ही देवी के नाम पर इनका नाम 'तोरन देवी' रक्खा गया।

श्रीमती तोरन देवी के पिता जी और पितामह कन्यायों को स्कूल भेजने के पक्षपाती नहीं थे, इसलिये इनको सब प्रकार की शिक्षा घर पर ही दी गई। ये ६ वर्ष की अवस्था में हिन्दी भली भाँति सीख गईं। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा का सारा श्रेय इनकी



श्रीमती तोरनदेवी शुक्ल 'लली'

माता जी को है। तोरन देवी जी की प्रारम्भ ही से हिन्दी की ओर विशेष रुचि देख कर इनके पिता दैनिक, साप्ताहिक, मासिक अनेक प्रसिद्ध प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकायें मँगवाते थे।

ग्यारह वर्ष की अवस्था में इनकी रुचि कविता की ओर झुकी। इनके पिता जी के दफ़्तर में एक क्लर्क थे जिन्हें कविता का अनुराग था। इनके पिता स्वयं एक काव्य-रसिक सज्जन हैं। उन्होंने एक बार क्लर्क साहब को एक समस्या दी—"केहि कारण संतन बाँधी लँगोटी"—इसकी पूर्ति क्लर्क साहब ने कलयुग-सम्बन्धी कई बातों को लेकर किया। जिसमें एक लाइन यह भी थी कि—"नारि भईं कुलटा उलटा पति को दुतकार धरैं सिर झोंटी"—इनके पिता जी उस कविता को घर पर लाए। श्रीमती तोरन देवी यद्यपि उन दिनों छोटी थीं परन्तु अपनी माता के कहने से इन्होंने उक्त कविता के प्रतिवाद में एक सवैया लिखा। इनके पितामह वह सवैया सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुये। इनके कविता-काल की यही प्रथम कविता थी।

इनके पिता जी के दो विवाह हुये थे जिनमें प्रथम (इनकी विमाता) के पिता स्वर्गवासी पं० हनुमानदीन मिश्र राजापुर, बांदा के एक प्रसिद्ध कवि और राजवैद्य थे। इन्होंने 'रसिक-मित्र' की एक समस्या-पूर्ति करके मिश्र जी के पास शुद्ध करने के लिये भेजा। नाना जी की शिक्षा से इन्होंने पिङ्गल सम्बन्धी कई पुस्तक पढ़ीं। इससे अनन्तर इनका अभ्यास कविता में बढ़ने लगा। 'रसिक-मित्र' आदि उस समय के प्रतिष्ठित पत्रों में इनकी कविता प्रकाशित होनेलगी।

संवत् १९६६ ता० ३० अप्रैल को इनका विवाह रायबरेली के प्रतिष्ठित व्यक्ति पण्डित रघुनाथप्रसाद शुक्ल के मँझले पुत्र पं० कैलाशनाथ शुक्ल बी० ए० एल० एल० बी० के साथ हुआ। आप का विवाह बिना ठहरौनी के हुआ था। कुलीन कान्यकुब्जों में ऐसा होना एक विशेष बात है। इसका कारण था—'कान्यकुब्ज-हितकारी' में प्रकाशित इनकी एक कविता पर इनके श्वसुर जी का मुग्ध होना।

धीरे धीरे इनकी कविता की ख्याति हिन्दी संसार में बढ़ती गई। उस समय के सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में इनकी रचनाय प्रकाशित होने लगीं। जिनमें 'रसिक-मित्र' 'प्रियंवदा' 'साहित्य-सरोवर' 'जान्हवी' 'अभ्युदय' 'मर्य्यादा' 'स्त्री-दर्पण' 'गृहलक्ष्मी' 'सरस्वती' 'श्री कान्यकुब्ज-हितकारी' मुख्य हैं। आपको समय समय पर उपहार और पुरस्कार भी मिले हैं।

संवत् १९७१ में आपके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उनका नाम श्री० हरिहर नाथ शुक्ल 'शरोज' है। 'सरोज' की प्रतिभा ऊँची है। साहित्य सम्बन्धी उन्हें अच्छी जानकारी है। तोरन देवी जी की कवितायें बहुत अच्छी और हिन्दी के लिये गौरव की वस्तु हैं। इन्होंने शृङ्गार-रस पर कवितायें कभी नहीं लिखीं। स्वदेश-भक्ति ही इनकी कविता का प्रधान विषय रहा है। यद्यपि इन्होंने कविता की कोई स्वतंत्र पुस्तक नहीं लिखी तो।भी इनकी स्वतंत्र कवितायें इतनी अधिक हैं कि एक बड़ी पोथी तय्यार हो सकती है। आज कल गृहस्थी के कार्यों में फँसी रहने तथा अनेक कार्यों के होने के कारण कविता कम लिखती हैं।

आपकी रचनायें ललित, मधुर और काव्य के गुणों से अलंकृत रहती हैं। हम आपकी रचनायें नीचे उद्धृत करते हैं :—

१

अनुरोध

ओ देशप्रेम के मतवाले ! मत प्रेम प्रेम कह इतराना।
कह कर उपदेश सुनाने से,
जिनका सत्कर्म प्रधान रहा।
परहित में जीवन धारण था,
परिपूर्ण अलौकिक ज्ञान रहा॥
अभिमान नहीं जिन हृदयों में,
उनका जग में अभिमान रहा।
जो समझ चढ़े बलिदेवी पर,
बलिदान वही बलिदान रहा॥
रणवीर ! इन्हीं आदर्शों को, नित रीति नई से दरशाना।
ओ देशप्रेम के मतवाले ! मत प्रेम प्रेम कह इतराना॥
जिसमें लालसा प्रधान रही,
वह प्रेम नहीं वह भक्ति नहीं।
जो सहम उठे बाधाओं से,
वह वीर हृदय की शक्ति नहीं॥
विचलित हो मायाजालों से,
त्यागी की पूर्ण विरक्ति नहीं।

यदि स्वारथ का लवलेश रहा,
माता की वह अनुरक्ति नहीं ॥
दर्शन पा आगे बढ़ हँस कर, श्री चरणों पर बलि हो जाना।
ओ देशप्रेम के मतवाले ! मत प्रेम प्रेम कह इतराना ॥
तेरे गुण के अति मधुर गान से,
जाग अहा ! संसार उठे।
तेरी वाणी सुन निर्बल जन की,
साहस से हुंकार उठे ॥
तेरे शब्दों की प्रतिभा पर,
जब नीरवता झंकार उठे।
पृथ्वी से नभ तक वीर श्रेष्ठ !
तेरी ही जय जयकार उठे ॥
तब उच्च हृदय दृढ़ हाथों से, निज कीर्ति-ध्वजा को फहराना।
ओ देशप्रेम के मतवाले ! मत प्रेम प्रेम कह इतराना ॥

२

अभिलाषा

मुझसे मिल जाना इकबार।
कहाँ कहाँ मैं ढूँढ़ रही हूँ, कब से रही पुकार—
मुझसे मिल जाना इकबार ॥
नव कुसुमों की कुंज-लता में, निशितारों की सुंदरता में;
सरल हृदय की उज्ज्वलता में, कुसुमित दल की माधुरता में—

कितना तुमको खोज चुकी हूँ,
जिसका वार न पार।
मुझसे मिल जाना इकबार॥
सरिता की गति मतवाली में, प्रिय वसन्त की हरियाली में;
बाल प्रभाकर की लाली में, निशानाथ की उजियाली में—
आशावादी बन कर लोचन,
अब तक रहे निहार।
मुझसे मिल जाना इकबार॥
अब देखूँगी उत्थानों में, देश-प्रेम के अभिमानों में;
वीर श्रेष्ठ के गुण गानों में, अमर सुयश सद्-सन्मानों में-
दर्शन होते ही तज दूँगी—
हिय वेदना अपार।
मुझसे मिल जाना इकबार॥

३

उत्कंठा

मन मोहन श्याम हमारे!
अब फिर दर्शन कब दोगे?
शबरी गणिका गीध अजामिल,
सब को लिया उबार।
द्रुपद-सुता की लाज बचा कर,
कर गज का उद्धार॥

हे दीनन के रखवारे !
क्या मेरी भी सुध लोगे ?
भूलो नहीं मधुर मुरली की,
विश्व विमोहनि तान।
नाथ ! आज भी जाग रहा,
वह गीता का ज्ञान ॥
जसुदा के लालन प्यारे !
कब कुंजन में विहरोगे ?
सुख से ही परिपूरित होगा,
मिट जायेंगे क्लेश।
केवल 'लली' इसी आशा पर,
जीवित है यह देश ॥
जब हे आराध्य हमारे,
हम से फिर आन मिलोगे।

४

जागृति

कहो बन्धु ! अब क्या कहते हो,
कब तक मुक्त करोगे ?
इस घूँघट की कड़ियों से।
हम दुर्बल दीन मलीन हुईं, सुख शान्ति स्वास्थ्य बलहीन हुईं।
हा ! परदे ही परदे में—
मिलतीं अन्तिम घड़ियों से।

क्या शान्ति चाहते हो तुम, गृहणी गण को फुसलाकर ?
वंधन कैसे रख लोगे, उस क्षण भी उन्हें भुला कर ?
जब प्रतिहिंसा का भाव उठेगा—
झूम सभी हृदयों से ।
अब भी यदि रखना चाहो, दृढ़ सदाचार सुविचार ।
कर दो दूर आज परदे सा, अन्तिम अत्याचार ॥
इस घूँघट ही के पट में—
क्या क्या न हुआ सदियों से ।
बना आज कर्तव्य तुम्हारा, जगना और जगाना ।
बिखर गईं जो विमल शक्तियाँ, फिर से उन्हें मिलाना ॥
देखो प्रस्तुत हो जाओ,
सहसा इस शुभ घड़ियों से ।
दे कर विद्यादान बनादो, शिक्षित सुमति उदार ।
महिलाओं में ज्योति जगादो, जीवन की इकबार ॥
तब आशीर्वाद लहोगे—
फिर 'लली' श्रेष्ठ सतियों से ।

५

कर्मभूमि

अब उठो चलो बढ़ चलो वीर ! है यही तुम्हारी कर्मभूमि ।
इस पर भगवान अवधपति ने,
निश्चर कुल का संहार किया ।

इस पर करुणानिधि केशव ने,
श्री गीता ज्ञान प्रसार किया ॥
इस पर ऋषि गौतम बुद्ध हुये, प्रभु शंकर की यह पुण्यभूमि।
अब उठो चलो बढ़ चलो वीर! अब०..........................
इस पर रणवीर शिवाजी से,
सारे अरिगण श्री हीन हुये ॥
वनवासी हो राणा प्रतापसिंह—
धन्य अमर स्वाधीन हुये ॥
जिसके गौरव की स्वर्ण-शिखा, अब तक भारत-नभ रहा चूमि।
अब उठो चलो बढ़ चलो वीर! अब०.........................
इसके सुत मालवीय से हैं,
भगवन्! उनका सन्मान रहे।
अनुपम त्यागी श्री गांधी जी का,
नित्य हमें अभिमान रहे ॥
आदर्शों से परिपूर्ण 'लली' अगणित वीरों की त्यागभूमि।
अब उठो चलो बढ़ चलो वीर! अब०.........................

६

अर्घ्य

दीन देश के प्राणाधार!
प्राणाधार दया-आगार।
निर्वल जन के सवल बन्धु हो,

धीर वीर हित दया-सिन्धु हो।
शत्रु गणों के अजय सिंह हो,
जननी जन्मभूमि के सेवक,
या. तुम हो परहित साकार।
दीन देश के प्राणाधार !
महत् पुरुष के हृदय विमल से,
दीन दुखी के नयन सजल से,
शोक नशावनि के कल कल से,
सदा तुम्हारी ही सुन पड़ती,
विश्व-व्यापनी जय जय कार।
दीन देश के प्राणाधार !
स्नेहमयी माँ के नयनों में,
देशप्रेम मद-मत्त जनों में,
देव ! तुम्हारे पदपद्मों में,
बड़े यत्न से चिर संचित यह-
अर्घ्य 'लली' का हो स्वीकार।
दीन देश के प्राणाधार !

७

कलिका

नव कलिका तुम कब विकसी थीं,
इसका मुझको ज्ञान नहीं।

हुई समर्पित श्री चरणों पर,
कब इसका कुछ ध्यान नहीं ॥
हृदय-संगिनी सरल मधुरता-
में, देखा अभिमान नहीं।
सच है गुण धन यौवन मद का,
दुनियाँ में सम्मान नहीं ॥
इसी हेतु सब श्रेष्ठ गुणों से,
पूरित तुमको अपनाया।
नव कलिका जब तुमको देखा,
तभी पूर्ण विकसित पाया ॥
नन्दन कानन में सुरभित-
होने की तुमको चाह नहीं।
हृदय-वेध कर हृदयस्थल तक,
जाने को है दाह नहीं ॥
मन्त्रमुग्ध से जग जन होवे,
इसकी कुछ परवाह नहीं।
इन पवित्र मुसकानों में है,
छिपी हुई वह आह ! नहीं ॥
प्रेममयी इस अखिल विश्व को,
अचल प्रेम से अपनाना।

यदि मिल जावें युगल चरण वह,
तुम उन पर बलि हो जाना ॥

८

प्रमाण

सादर सस्नेह प्रणाम मेरा, उन चरणों पर शत कोटि बार।
माता के लाल लड़ैते थे,
भगिनी के वीर बाँकुरे थे,
सौभाग्यवती जोवन के वे-
जीवन थे प्राण पियारे थे।
वे सब की भावी आशा थे, थे जन्मभूमि के होनहार।
वे देश-प्रेम मतवाले थे,
माता के चरण पुजारी थे,
पुरुषों में थे वे पुरुष सिंह,
कर्तव्य धर्म व्रत-धारी थे ॥
प्राणों को हँस छोड़ दिया, पर प्रण न गया उनका अपार।
वे ज्ञानवान थे योगी थे,
अनुपम त्यागी थे सज्जन थे।
वे वीर हठीले सैनिक थे,
तेजस्वी थे विद्वज्जन थे।
कर्तव्य कर्म की ओर चले, फल की सारी सुध-बुध बिसार।

तमपूर्ण निशा में ज्योति हुये,
पथ दर्शक कंटक मय मग के,
मर कर भी हैं वे अमर हुये,
आदर्श बने भावी जग के,
मंगलमय हो बलिदान तेरा।
ओ वीर प्रसविनी के सिँगार!
सादर सस्नेह प्रणाम मेरा, उन चरणों पर शत कोटि बार॥

९

विजयादशमी

मेरी विजयादशमी आज।
पराधीन है देश हमारा, निर्बल हीन समाज।
'लली' न जाने कहाँ छिपी है देश धर्म की लाज॥
मेरी विजयादशमी आज।
आती हो प्रति वर्ष सदाही, लेकर सुख का साज।
किन्तु बता दो तुम्हीं देश में, कौन सुखी है आज॥
मेरी विजयादशमी आज।
क्या कह कर गुणगान तुम्हारा, करें विजयिनी आज।
स्मृति में उत्सव तक भी जब, कर सका न तीरथराज॥
मेरी विजयादशमी आज।

कह दो उन अवधेश कुँवर से, रखलें अब भी लाज।
नित्य पराजित हुए पुण्यतिथि, आवेगी किस काज॥
मेरी विजयादशमी आज॥

१०

स्वर्ण-दिवस

अब शुभागमन तेरा है।
हाँ स्वर्ण दिवस मेरा है॥
तेरा ही करते हैं निशि दिन, महत पुरुष अह्वान।
तेरे लिये देश के अगणित वीर हुये बलिदान॥
अब मधुर मिलन तेरा है।
हाँ स्वर्ण दिवस मेरा है॥
मिल जाने ही की आशा से की थी करुण पुकार।
पाकर तुझे सिंह की नाईं देश उठा हुंकार॥
धनि यह प्रभाव तेरा है।
हाँ स्वर्ण दिवस मेरा है॥
'लली' रहे युग युग में तेरा, अचल अटल सुविकाश।
हो प्रत्येक हृदय में तेरी उज्जवल ज्योति प्रकाश॥
यह अमर गान तेरा है।
हाँ स्वर्ण दिवस मेरा है॥

११

साधुशीलता

यह मैंने माना जीवनधन!
सुन्दरता जीवन का मूल।
इस माया रूपी प्रपञ्च में,
सरल जगत जाता है भूल॥
रमणी के चञ्चल नयनों का,
या सौन्दर्य प्रकृति का जाल।
तोड़ सका है इस पृथ्वी पर,
विरला ही माई का लाल॥
किन्तु मधुर फल जीवन का-
यदि साधुशीलता पाऊँगी॥
यह आशा है अखिल विश्व पर,
पूर्ण विजय पा जाऊँगी॥

१२

जय स्वदेश!

जय जय भारत जय जय स्वदेश—
जय शोभित सुन्दर तिलक भाल,
अति भव्य मूर्ति लोचन विशाल।

अतुलित बलधारी अति दयाल,
जय जगत-शिरोमणि वीर वेश ॥ १ ॥
पूरित सुन्दर षट्ऋतु अनूप,
रक्षक पयोधि हिम शैल-भूप।
जय सत्य न्याय अरु धर्म रूप,
जय तीस कोटि संतति विशेष ॥ २ ॥
शुभ पावन प्रिय अनुरक्ति देत,
निज भक्त जनन को भक्ति देत।
रणवीर भुजन को शक्ति देत,
प्रिय भारत तव महिमा अशेष ॥ ३ ॥
जय जय भारत जय जय स्वदेश—



प्रियम्वदा देवी

श्रीमती प्रियम्वदा देवी का जन्म सं० १६५६ भाद्र मास की पूर्णमासी को फतहगढ के सकरवा नामक गाँव में हुआ था। आपके पिता का नाम लाला नन्दकिशोर था। एकादश वर्ष तक देवी जी घर पर ही पिता द्वारा शिक्षा ग्रहण करती रहीं।

श्रीमती जी का विवाह, तेरह साल की आयु में, इटावा के जयतिपुर नामक गांव में श्री शिवनारायण श्रीवास्तव के साथ हुआ। विवाह के बाद देवी जी ने, लश्कर के मुरार कन्यापाठशाला से हिन्दी मिडिल की परीक्षा पास की। आप स्टेट में दूसरे नम्बर में पास हुईं और पाँच विषयों में 'तमीज़' प्राप्त किया। उसी वर्ष से आपने कविता लिखना शुरू किया था। इससे पूर्व उनको कविता से घृणा थी और कवियों को वह 'भांड़' कहा करती थीं। कुछ ही समय में आपने उर्दू, बँगला एवं अँग्रेजी में भी अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। आपने कुल चार पुस्तकें लिखीं। उनमें से तीन प्रकाशित हो गयीं हैं। 'भक्त-स्त्रियाँ' नामक गद्य पुस्तक में आपने भक्त स्त्रियों के चरित्र, कहानी के रूप में लिखे हैं, और 'गृहिणीगीताञ्जलि' नामक पुस्तक में देवी जी ने पद्य की रचना की है। इन दोनों पुस्तकों का प्रकाशक, बरेली का श्री राधेश्याम प्रेस है। एक कविता की पुस्तक, चिरगाँव झांसी की 'दयाराम कम्पनी' ने प्रकाशित किया है।

श्रीमती जी का परिचय प्रयाग की 'गृहलक्ष्मी' की सम्पादिका श्रीमती गोपाल देवी और बा० प्रेमचन्द्र जी की धर्म्मपत्नी से विशेष कर था। आप की मृत्यु संवत् १६८० में बहुत थोड़ी उम्र में हो गई। कई वर्ष बाद इनके पति इन्हें एकाएक छोड़ कर कहीं चले गये। पति-वियोग यह सह नहीं सकीं। मरते समय भी आपने कहा था—'मरती हूँ जिसके इश्क में उसको ख़बर नहीं।' श्रीमती जी यद्यपि बहुत मशहूर नहीं हैं तो भी आपकी रचना मधुर और ऊँचे दर्जे की है। खड़ीबोली की रचनाओं में उत्तम स्थान दिया जा सकता है। आपकी कुछ रचनायें नीचे दी जाती हैं:—

१

मेरी इच्छा

परमेश्वर की मूर्ति निहारी मैंने अपने प्रियतम में!
सत में देखी रज में देखी देखी मूर्ति वही तन में!
उसी मूर्ति को हँसते देखा और खोजते भी देखा!
व्याह-पाप करने के कारण हाथ-मींजते भी देखा!
नहीं चाहती हूँ धन कोई नहीं मान की भूखी हूँ!
रिश्तेदारों को भूली हूँ, सब दुनियाँ से रूखी हूँ!
यहीं चाहिये कहे 'प्रियँवदा' निशि दिन कष्ट उठाऊँ मैं!
बारह घन्टे में प्रियतम को एक बार पा जाऊँ मैं!

२

गिरफ़्तारी

तन का सुन्दर महल हमारा, अंग अंग रमणीक।
गले मध्य में चमक रही है, लाल पान की पीक॥
झपट कर खिड़की दे दूँगी!
सुआ! मैं तुम्हें फाँस लूँगी!
मेरे मन के नज़र-बाग में, फूले विविध गुलाब।
कितना निर्मल भरा हुआ है, बुद्धि रूप तालाब॥
ताल में मोती डालूँगी!
हंस! मैं तुमको पा लूँगी!
पथिक! कहाँ की लगन लगी है, किधर उड़ रहा ध्यान?
सुन्दर नहीं दीखते तुमको, प्रेम-तत्व-भगवान?
त्याग का राग मिटा दूँगी!
प्रेम-अनुराग सिखा दूँगी!
'माया-माया' चिल्लाते हो, रीझ रहे हो नित्त!
सृष्टि बनाते क्यों न विचारा, अब न दुखाओ चित्त!
कल्पना सब हटवा दूँगी!
कलेजे में बिठला लूँगी!
प्रेम-हीन है ज्ञान कहाँ पर, कैसा उसका रूप?
कैसा है वह देश निर्दयी, कैसा उसका भूप?

पढ़ाओ ! मैं भी पढ़ लूँगी !
नहीं तो अपना सर दे दूँगी !
हंस हमारे सुआ हमारे, प्रियतम जीवन—मूल !
द्वैत पंथ में दो बन खुद ही, क्यों देते अब शूल ?
नहीं—मैं बदला क्यों दूँगी ?
वार अपने ऊपर लूँगी ?
शिव तुम शक्ति रूप मैं तेरी, जग में दो तस्वीर !
शक्ति स्वरूप, सिया—राधा सम, फूटी मम तक़दीर ?
समय विपरीत निभा लूँगी !
प्रेम की लाज बचा दूँगी !
सीता प्रति श्रीराम निठुर हैं, राधा प्रति गोपाल !
सती समक्ष निठुर शंकर मैं, यही—सदा को चाल !
अनोखी बात न कह दूँगी !
डाल दो पत्थर, सह लूँगी !
सहन, क्षमा दो चरण हमारे, प्रेम हमारा लक्ष !
साक्षी सर्व विश्व है मेरा, कहती—ईश समक्ष !
न तुमको ताना भी दूँगी !
बनेगा जैसा—जी लूँगी !

३

न जानूँ आज क्यों मुझ से, ख़फ़ा सरकार बैठे हैं !
न चहरा भी दिखाते हैं, हुये बेज़ार बैठे ह !

न जाऊँगी निकट उनके, न दिल का दुख सुनाऊँगी !
न बोलेंगे न बोलेंगे, किए इसरार बैठे हैं !
न बोलेंगे अगर जाऊँ, कलेजा लें हथेली पर !
सुबह से आज वे दिल में, किये इनकार बैठे हैं !
उदासी छिप नहीं सकती, सबब बतला नहीं सकती !
खड़ी मैं दिल लिये हाथों, मगर वे हार बैठे हैं !

४

काम

गढ़े में बैठा काला नाग !
खुश होता है वह सुन सुन कर, भोगवाद के राग !
उसके मुख में शहद लगा है, किन्तु गले में आग !
मृत्यु-दूत है काम नहीं वह, करो शीघ्र ही त्याग !

५

बाग में घुस आया शैतान !
फूल तोड़ कर घास रखाता, दिखलाता है शान !
रे पशु ! कितना रूप-हीन तू, लख निज को, अभिमान !
क्या गाता है, गा न सकेगा, अहम् काल का स्थान !
स्वर तो भंग हो गया कवि का, क्या कर लेगी तान ?
अहंकार है वैर विश्व से, अहंकार अज्ञान !
दो दिन बाद न शेष रहेगा, तेरा नाम निशान !

६

प्रस्थान

चलोरे मन चित्रकूट की ओर !
कलि-मल विषय भयानक दुस्तर, नित्य जनावै ज़ोर !
तीन ताप, सन्ताप पाप बहु, मोह लोभ मद घोर !
बहुत गयी अब तनिक रही, है मेरी जीवन डोर !
उस यमराज महा बंधन से, कौन सकेगा छोर !
चित्रकूट में मन्दाकिनि-तट, पक्षी करते शोर !
शोर नहीं, वे निरख रहे हैं, सुभग श्यामली कोर !

७

पपीहा

पपीहा ! काहे मचायो सोर ?
मन की डोर बहुत तुम फेंकी, मिल्यो न अब लघु छोर !
बहुत दूर पै, बहुत दूर पै, स्वाति बूँद की कोर !
प्रेम-पन्थ में बाधाएं बहु, निठुर दिखावैं ज़ोर !
थकित न अब लौं भई 'प्रेमदा', उड़ा रही मन-मोर !

८

अपमान

हमारा खूब हुआ अपमान !
बना प्रेम अवतार 'प्रियँवदा', विधि की प्रिय श्री मान !
पटक दिया मेरा मन-मोती, ग्राहक ने क्या जान ?

हमारा खूब हुआ अपमान !
अब इस तन को मैं छोड़ूँगी, चलो भवन निज प्रान !
लुग जुग जीवित रहना प्यारे, बनो तुम्हीं भगवान !
हमारा खब हुआ अपमान !
नहीं नहीं अब दर्शन देना, प्रियतम निष्ठावान !
अपनी शान आप भी रक्खें, मैं रक्खूं निज शान !
हमारा खूब हुआ अपमान !
जाती हूँ अब प्रेम-पुरी को, हो सबका कल्यान !
तेरी चौखट से ये प्यासा, उठता है मेहमान !
हमारा खूब हुआ अपमान !

९

वियोग

हो गया एक वर्ष का अंत !
मेरे दिल का शुद्ध शिवाला, भागे छोड़ महंत !
सुना—बनेंगे वे मन-मोहन, अब गिरनासी संत !
हो गया एक वर्ष का अंत !
हाय, प्रेम निकले तुम अखिर, कवि-कृत एक गढंत !
सुआ न पकड़ सके तुम अपना, हंस उड़ा निज पंथ !
हो गया एक वर्ष का अंत !

प्रेम छोड़ते प्राण निकलते, विधि स्वभाव, हा हंत!
करूँ योग अभ्यास नित्य हो, अगर मिलें पुनि कंत!
हो गया एक वर्ष का अंत!
प्रेम! तुम्हारी बलिवेदी पर, निकले प्राण अनंत!
मरो 'प्रेमदा' तुम भी हँकर, निरखै सकल दिगंत!
हो गया एक वर्ष का अंत!



सुभद्राकुमारी चौहान

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान का जन्म सं० १९६१ में नागपंचमी के दिन इलाहाबाद में हुआ था। वहाँ पर इनका मकान निहालपुर मुहल्ले में है। इनके पिता का नाम ठाकुर रामनाथ सिंह था। इनके चार भाई और पाँच बहिनें हुई जिनमें से दो भाई और इन्हें मिला कर चार बहिनें अभी जीवित हैं, इनमें एक बहिन इनसे छोटी है बाकी सब इनसे बड़े हैं। इनके एक भाई ठाकुर राजबहादुर सिंह बी० ए० एल० एल० बी० वकील हैं और दूसरे बड़े भाई ठाकुर रामप्रसाद सिंह पहले सब-इन्सपेक्टर पुलिस थे परन्तु असहयोग के ज़माने में उन्हों ने नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया और अब व्यापार करते हैं।

श्रीमती सुभद्राकुमारी जी का विवाह सं० १९७६ में खंडवा (मध्य प्रदेश) निवासी ठाकुर लक्ष्मणसिंह जी चौहान बी० ए० एल० एल० बी० के साथ हुआ। विवाह के बाद भी इनका विद्याध्ययन जारी रहा। ये उस समय प्रयाग की क्रास्थवेट गर्ल्स हाई स्कूल में पढ़ती थीं। परन्तु जब कलकत्ते की काँग्रेस में असहयोग का प्रस्ताव पास हुआ तब इन्होंने स्कूल छोड़ दिया और इनके पति ने जो उसी वर्ष वकालत पास हुये थे, विशेष कर इनके आग्रह से वकालत न करने का निश्चय किया। वे जबलपुर में रहकर पण्डित माखनलाल जी



श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान

चतुर्वेदी के साथ "कर्मवीर" पत्र का सम्पादन कार्य करने लगे और उसके बाद प्रान्तीय कॉंग्रेस कमेटी के मन्त्री का कार्य भी करते रहे ।

मध्यप्रदेश के राजनीतिक आन्दोलन में इन दोनों का बहुत बड़ा भाग रहा है। श्रीमती सुभद्राकुमारी राष्ट्रीय झण्डा सत्याग्रह के संबंध में जबलपुर में एक बार गिरफ़्तार हो चुकी हैं। किन्तु सरकार ने इन्हें एक दिन पुलिस-हवालात में रख कर सब साथियों सहित छोड़ दिया। ये दूसरी बार उसी सम्बन्ध में नागपुर में फिर गिरफ़्तार हुईं और जेल में रखी गईं परन्तु कुछ दिन बाद बिना मुक़दमा चलाये ही छोड़ दी गईं।

श्रीमती सुभद्राकुमारी को कविता की धुन बचपन से ही थी। इनके पिता को कविता और गाने से विशेष रुचि थी। उनके भजन इत्यादि सुन सुन कर इनके मन में कविता की लहरें उठा करती थीं। जब ये इलाहाबाद के क्रास्थवेट गर्ल्स हाई स्कूल में पढ़ती थीं तब उसके प्रत्येक वार्षिकोत्सव पर इनकी बधाई आदि पर कवितायें अवश्य पढ़ी जाती थीं। उन्हीं दिनों सामयिक पत्रों में भी इनकी कवितायें प्रकाशित होने लगी थीं। स्कूल में जिस लड़की या शिक्षका से इनका प्रेम हो जाता था उन पर ये कवितायें बनाया करती थीं।

इनकी बचपन की कवितायें बालोचित भाव से भरी हुई हैं और स्वभावतः उनके विषय भी वैसे ही रहा करते थे। किन्तु उनमें भावी कविता की झलक और देशभक्ति के भाव अवश्य प्रगट होते थे। जब से ये असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित हुईं तब से इनकी देशभक्ति का

रंग और भी गहरा तथा व्यापक हो गया जो इनकी उस समय की कविताओं से प्रकट है।

श्रीमती सुभद्राकुमारी के कवित्व के विषय में एक विशेष बात यह है कि ये प्रायः किसी के कहने से या समस्याओं पर कविता नहीं लिख सकतीं; इनकी कवितायें तो उसी समय लिखी जाती हैं जब हृदय में भाव उमड़ते हैं। यही इनकी कविता के हृदयग्राहित्व का रहस्य है। इनका स्वभाव प्रधानतः भावुक है और उसमें बच्चों की सी सरलता है जिसके कारण शत्रु के प्रति भी इनके हृदय में तिरस्कार उत्पन्न नहीं होता, प्रत्युत दया का आभास पाया जाता है। वही भावुकता और सरलता इनकी कविताओं में ज्यों की त्यों दिखाई देती है। उनमें शब्दाडम्बर नहीं है, कवित्व का शास्त्रीय कौशल या पाँडित्य भी नहीं है, किन्तु हृदय से निकली हुई सीधी-सच्ची बात है, जो सीधी पढ़ने वाले के हृदय में पहुँच जाती है और वह समझने लगता है कि मेरे ही मन की लिख दी है। इनकी कविता प्रायः 'माधुरी' 'चाँद' 'गृहलक्ष्मी' 'प्रभा' 'श्रीशारदा' आदि मासिक पत्रिकाओं और 'प्रताप' 'कर्मवीर' 'स्वदेश' आदि सामयिक पत्रों में प्रकाशित हुई हैं।

कविता ही कवि का वास्तविक चरित्र है, कवि को जानना हो तो उसकी कविता को पढ़ लो। इसलिये अधिक न लिखते हुये हम श्रीमती सुभद्राकुमारी के पास उनकी कविताओं के सम्बन्ध में समय समय पर कविता-मर्मज्ञ मित्रों के जो पत्र आया करते हैं उनमें से एक को जो

सारांश रूप में कवि और कविता दोनों का खासा अच्छा परिचायक है, नीचे उद्धृत करते हैं।

"I have read today your very beautiful poem 'मेरा नया बचपन' in the Madhuri. There are lines in the poem which betray a heart behind them almost capable of an emotional abandon without which no genuine poetry is ever possible."

तात्पर्य यह कि मैं ने 'माधुरी' में आपकी 'मेरा नया बचपन' शीर्षक अत्यन्त सुन्दर कविता पढ़ी। उसमें कुछ पंक्तियाँ ऐसी हैं, जिनसे उनके पीछे छिपे हुये हृदय की भावुक मस्ती प्रगट हो जाती है जिसके बिना वास्तविक कवित्व असम्भव है।

सुभद्राकुमारी जी अत्यन्त सुशील हैं। आपका स्वभाव बहुत नम्र और मिलनसार है। देश और साहित्य को अभी आपसे अनेक आशायें हैं। आपके एक पुत्र और एक कन्या है। आज कल आपकी कविता के यही नये विषय हैं।

आपकी कविताओं का एक संग्रह 'मुकुल' के नाम से छप चुका है। हम यहाँ आप की कुछ चुनी हुई कवितायें उद्धृत करते हैं :—

१

जालियाँवाला बाग़ में वसन्त

यहाँ कोकिला नहीं काक हैं शोर मचाते।
काले काले कीट भ्रमर का भ्रम उपजाते॥

कलियाँ भी अधखिली, मिली हैं कंटक कुल से।
वे पौधे, वे पुष्प, शुष्क हैं अथवा झुलसे॥
परिमल-हीन पराग दाग सा बना पड़ा है।
हा! यह प्यारा बाग़ खून से सना पड़ा है॥
आओ प्रिय ऋतुराज! किन्तु धीरे से आना।
यह है शोक-स्थान यहाँ मत शोर मचाना॥
वायु चले पर मन्द चाल से उसे चलाना।
दुख की आहें संग उड़ा कर मत ले जाना॥
कोकिल गावे किन्तु राग रोने का गावे।
भ्रमर करे गुंजार कष्ट की कथा सुनावे॥
लाना सँग में पुष्प न हों वे अधिक सजीले।
हो सुगंध भी मन्द ओस से कुछ कुछ गीले॥
किन्तु न तुम उपहार-भाव आकर दरसाना।
स्मृति में पूजा हेतु यहाँ थोड़े बिखराना॥
कोमल बालक मरे यहाँ गोली खा खा कर।
कलियाँ उनके लिए गिराना थोड़ी लाकर॥
आशाओं से भरे हृदय भी छिन्न हुए हैं।
अपने प्रिय परिवार देश से भिन्न हुए हैं॥
कुछ कलियाँ अधखिली यहाँ इसलिए चढ़ाना।
करके उनकी याद ओस के अश्रु बहाना॥

तड़प तड़प कर वृद्ध मरे हैं गोली खाकर।
शुष्क पुष्प कुछ वहाँ गिरा देना तुम जाकर॥
यह सब करना किन्तु बहुत धीरे से आना।
यह है शोक-स्थान यहाँ मत शोर मचाना॥

२

राखी की चुनौती

बहिन आज फूली समाती न मन में,
तड़ित आज फूली समती न घन में;
घटा है न फूली समाती गगन में,
लता आज फूली समाती न वन में;
रही रखियाँ हैं, चमक है कहीं पर,
कहीं कंद है, पुष्प प्यारे खिले हैं।
ये आई है राखी सुहाई है पूनो,
बधाई उन्हें जिनको भाई मिले हैं॥
मैं तो हूँ बहिन किन्तु भाई नहीं है,
है राखी साजी पर कलाई नहीं है;
है भादों, घटा किन्तु छाई नहीं है,
नहीं है खुशी—पर रुलाई नहीं है;
मेरा बन्धु माँ की पुकारों को सुनकर—
के तैयार हो कैदखाने गया है।

छिनी है जो आजादी माँ की उसीको,
वह ज़ालिम के घर में से लाने गया है॥
मुझे गर्व है किन्तु राखी है सूनी,
वह होता खुशी तो क्या होती न दूनी;
हम मंगल मनावें वह तापता है धूनी,
है घायल हृदय दर्द उठता है खूनी;
है आती मुझे याद चित्तौरगढ़ की,
धधकती है दिल में वह जौहर की ज्वाला।
हैं माता बहिन रो के उसको बुझातीं,
कहो भाई तुमको भी है कुछ कसाला॥
अहा, लो बढ़ा हाथ, राखी पड़ी है,
यह रेशम सी कोमल नहीं यह कड़ी है;
अजी देखो लोहे की यह हथकड़ी है,
इसी प्रण को लेकर बहिन यह खड़ी है;
जो आते हो भाई, पुनः पूछती हूँ,
जो माता के बंधन की है लाज तुमको।
तो बंदी बनों देखो बंधन है कैसा,
चुनौती ये राखी की है आज तुमको॥

३

स्वागत

आजा! आ प्यारे स्वदेश! आ स्वागत करती हूँ तेरा।

तुझे देख फिर आज हो रहा दूना प्रमुदित मन मेरा ॥
आ उस बालक के समान जो है गुरुता का अधिकारी ।
आ उस युवक वीर सा जिसको विपदाएँ ही हैं प्यारी ॥
आ उस सेवक के समान तू विनयशील अनुगामी सा ।
अथवा आ तू युद्ध-क्षेत्र में कीर्ति-ध्वजा का स्वामी सा ॥
आशा की सूखी लतिका में तुझको पा फिर लहराई ।
अत्याचारी की कृतियों को तू-ने निर्भय दरशाई ॥❀

४

मानिनि राधे

थी मेरा आदर्श बालपन से तुम मानिनि राधे ।
तुम सी बन जाने को मैंने व्रत नियमादिक साधे ॥
अपने को माना करती थी मैं वृषभानु-किशोरी ।
भाव-गगन के कृष्णचन्द्र की थी मैं चतुर-चकोरी ॥
था छोटा सा गाँव हमारा छोटी छोटी गलियाँ ।
गोकुल उसे समझती थी मैं गोपी-सँग की अलियाँ ॥
कुटियों में रहती पर थी मैं उन्हें मानती कुंजें ।
माधव का संदेश समझती सुन मधुकर की गुंजें ॥
बचपन गया नया रँग आया और मिला वह प्यारा ।
मैं राधा बन गई न था वह कृष्णचन्द्र से न्यारा ॥

❀ गोरखपुर के 'स्वदेश' के दुबारा निकलने पर लिखित ।

किन्तु कृष्ण यह कभी किसी पर ज़रा प्रेम दिखलाता।
नख-सिख से तो जल जाती हूँ खान पान नहिं भाता॥
.खूनी भाव उठे उसके प्रति जो हो प्रिय का प्यारा।
उसके लिये हृदय यह मेरा बन जाता हत्यारा॥
मुझे बता दो मानिनि राधे प्रीत-रीति यह न्यारी।
क्योंकर थी उस मनमोहन पर निश्चल भक्ति तुम्हारी॥
तुम्हें छोड़ कर बन बैठे जो मथुरा-नगर-निवासी।
कितने ही कर ब्याह हुये जो सुख सौभाग्य-विलासी॥
सुनती उनके गुण गण को ही उनको ही गाती थी।
उन्हें याद कर सब कुछ भूली उन पर बलि जाती थी॥
वचनों के मृदु फूल चढ़ाती मानस की मूरत पर।
रही ठगी सी जीवन भर उस क्रूर श्याम सूरत पर॥
श्यामा कहला कर बन बैठी बिना दाम की चेरी।
मृदुल उमङ्गों की तानें थी 'तू मेरा मैं तेरी'॥
जीवन का न्योछावर हा! हा! तुच्छ उन्होंने लेखा।
गये, सदा के लिये गये फिर कभी न मुड़ कर देखा॥
अटल प्रेम फिर भी है कैसे कह दो राधा रानी।
कह दो मुझे जली जाती हूँ, छोड़ो शीतल पानी॥
ले आदर्श तुम्हारा मन को रह रह समझाती हूँ।
किन्तु बदलते भाव न मेरे शान्ति नहीं पाती हूँ॥

५

चलते समय

तुम मुझे पूछते हो—"जाऊँ" मैं क्या जवाब दूँ तुम्हीं कहो।
"जा..." कहते रुकती है ज़बान किस मुँह से तुम से कहूँ रहो॥
सेवा करना था जहाँ मुझे कुछ भक्ति-भाव दरसाना था।
उन कृपा-कटाक्षों का बदला बलि होकर जहाँ चुकाना था॥
मैं सदा रूठती ही आई प्रिय! तुम्हें न मैंने पहिचाना।
वह मान बाण सा चुभता है अब देख तुम्हारा यह जाना॥

६

मातृ-मन्दिर में—

वीणा बज सी पड़ी खुल गये नेत्र, और कुछ आया ध्यान।
मुड़ने की थी देर दिख पड़ा उत्सव का प्यारा सामान॥
जिसको तुतला तुतला कर के शुरू किया था पहली बार।
जिस प्यारी भाषा में हमको प्राप्त हुआ है माँ का प्यार॥
उस हिन्दू जन की गरीबिनी हिन्दी—प्यारी हिन्दी का।
प्यारे भारतवर्ष—कृष्ण की उस वाणी कालिन्दी का॥
है उसका ही समारोह यह उसका ही उत्सव प्यारा।
मैं आश्चर्य भरी आँखों से देख रही हूँ यह सारा॥
जिस प्रकार कङ्गाल बालिका अपनी माँ धन-हीना को।
टुकड़ों की मुहताज आज तक दुखिनी को उस दीना को॥

सुन्दर वस्त्राभूषण सज्जित देख चकित हो जाती है।
सच है या केवल सपना है, कहती है रुक जाती है॥
पर सुन्दर लगती है, इच्छा यह होती है कर ले प्यार।
प्यारे चरणों पर बलि जाये करले मन भर के मनुहार॥
इच्छा प्रबल हुई, माता के पास दौड़ कर जाती है।
वस्त्रों को सँवारती उसको आभूषण पहनाती है॥
उसी भाँति आश्चर्य मोदमय आज मुझे झिझकाता है।
मन में उमड़ा हुआ भाव बस मुँह तक आ रुक जाता है॥
प्रेमोन्मत्ता होकर तेरे पास दौड़ आती हूँ मैं।
तुझे सजाने या सँवारने में ही सुख पाती हूँ मैं॥
तेरी इस महानता में क्या होगा मूल्य सजाने का।
तेरी भव्य मूर्ति को नकली आभूषण पहनाने का॥
किन्तु क्या हुआ माता मैं भी तो हूँ तेरी ही संतान।
इसमें ही संतोष मुझे है इसमें ही आनंद महान॥
मुझसी एक एक की बन तू तीसकोटि की आज हुई।
हुई महान सभी भाषाओं की तू ही सिरताज हुई॥
मेरे लिए बड़े गौरव की और गर्व की है यह बात।
तेरे ही द्वारा होगा बस भारत में स्वातन्त्र-प्रभात॥
असहयोग पर मर मिट जाना यह जीवन तेरा होगा।
हम होंगे स्वाधीन विश्व का वैभव-धन तेरा होगा॥

जगती के वीरों द्वारा शुभ पद-वंदन तेरा होगा।
देवों के पुष्पों द्वारा अत्र अभिनंदन तेरा होगा॥
तू होगी आधार देश की पार्लमेन्ट बन जाने में।
तू होगी सुख-सार देश के उजड़े क्षेत्र बसाने में॥
तू होगी व्यवहार देश के बिछुड़े हृदय मिलाने में।
तू होगी अधिकार देश भर को स्वातन्त्र्य-दिलाने में॥

७

कलह-कारण

कड़ी आराधना करके बुलाया था उन्हें मैंने।
पदों के पूजने के ही लिये थी साधना मेरी॥
तपस्या नेम व्रत करके रिझाया था उन्हें मैंने।
पधारे देव पूरी हो गई आराधना मेरी॥
उन्हें सहसा निहारा सामने संकोच हो आया।
मुँदी आँखे सहज ही लाज से नीचे झुकी थी मैं॥
कहूँ क्या प्राण धन से यह हृदय में सोच हो आया।
वही कुछ बोल दें पहले प्रतीक्षा में रुकी थी मैं॥
अचानक ध्यान पूजा का हुआ झट आँख जो खोली।
हृदय धन चल दिये मैं लाज से उनसे नहीं बोली॥
नहीं देखा उन्हें, बस सामने सूनी कुटी देखी।
गया सर्वस्व अपने आपको दूनी लूटी देखी॥

८

जाने दे प्रियतम के पास

कठिन प्रयत्नों से सामग्री मैं बटोर कर लाई थी।
बड़ी उमंगों से मंदिर में पूजा करने आई थी॥
पास पहुँच कर जो देखा तो आहा! द्वार खुला पाया।
जिसकी लगन लगी थी उसके दर्शन का अवसर आया॥
हर्ष और उत्साह बढ़ा कुछ लज्जा कुछ संकोच हुआ।
उत्सुकता, व्याकुलता कुछ कुछ, कुछ संभ्रम कुछ सोच हुआ॥
था मन में विश्वास कि उनके अब तो दर्शन पाऊँगी।
प्रियतम के चरणों पर अपना मैं सर्वस्व चढ़ाऊँगी॥
कह दूँगी अंतर तल की मैं उनसे नहीं छिपाऊँगी।
मानिनि हूँ पर मान तजूंगी चरणों पर बलि जाऊँगी॥
पूरी हुई साधना मेरी मुझको परमानन्द मिला।
किन्तु बढ़ी तो हुआ अरे क्या? मन्दिर का पट बन्द मिला॥
निठुर पुजारी! यह क्या? मुझ पर तुझे तनक न दया आई।
किया द्वार को बन्द हाय मैं प्रियतम को न देख पाई॥
करके कृपा पुजारी मुझको जरा वहाँ तक जाने दे।
मुझको भी थोड़ी सी पूजा प्रियतम तक पहुँचाने दे॥
छूने दे उनके चरणों को जीवन सफल बनाने दे।
खोल, खोल दे द्वार पुजारी मन की व्यथा मिटाने दे॥

वहुत बड़ी आशा से आई हूँ मत कर तू मुझे निराश।
एक वार, बस एक वार तू जाने दे प्रियतम के पास॥

९

फूल के प्रति

डाल पर के मुरझाये फूल! हृदय में मत कर वृथा गुमान।
नहीं है सुमन-कुञ्ज में अभी इसीसे है तेरा सम्मान॥
मधुप जो करते अनुनय विनय वने तेरे चरणों के दास।
नई कलियों को खिलती देख नहीं आवेंगे तेरे पास॥
सहेगा कैसे वह अपमान उठेगी वृथा हृदय में शूल।
भुलावा है मत करना गर्व डाल पर के मुरझाये फूल॥

१०

ठुकरा दो या प्यार करो

देव! तुम्हारे कई उपासक कई ढंग से आते हैं।
सेवा में बहुमूल्य भेंट वे कई रङ्ग के लाते हैं॥
धूम-धाम से साज-बाज से वे मन्दिर में आते हैं।
मुक्ता मणि बहुमूल्य वस्तु वे लाकर तुम्हें चढ़ाते हैं॥
मैं ही हूँ ग़रीबिनी ऐसी जो कुछ साथ नहीं लाई।
फिर। भी साहस कर मन्दिर में पूजा करने को आई॥
धूप-दीप नैवेद्य नहीं है झाँकी का शृंगार नहीं।
हाय! गले में पहनाने को।फूलों का भी हार नहीं॥

स्तुति कैसे करूँ तुम्हारी है स्वर में माधुर्य नहीं।
मन का भाव प्रगट करने को है मुझमें चातुर्य नहीं॥
नहीं दान है नहीं दक्षिणा खाली हाथ चली आई।
पूजा की भी विधि न जानती फिर भी नाथ चली आई॥
पूजा और पुजापा प्रभुवर! इसी पुजारिन को समझो।
दान-दक्षिणा और निछावर इसी भिखारिन को समझो॥
मैं उन्मत्त प्रेम की लोभी हृदय दिखाने आई हूँ।
जो कुछ भी है यही पास है इसे चढ़ाने आई हूँ॥
चरणों पर अर्पण है इसको चाहो तो स्वीकार करो।
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है ठुकरा दो या प्यार करो॥

११

मेरा नया बचपन

बार बार आती है मुझको, मधुर याद बचपन तेरी।
गया, लेगया तू जीवन की—सब से मस्त खुशी, मेरी॥
चिंता-रहित खेलना-खाना, वह फिरना निर्भय स्वच्छंद।
कैसे भूला जा सकता, बचपन का अतुलित आनंद॥
ऊँच नीच का ज्ञान नहीं था, छुआ-छूत किसने जानी?
बनी हुई थी अहा! झोपड़ी और चीथड़ों में रानी॥
किये दूध के कुल्ले मैंने, चूस अँगूठा अमृत पिया।
किलकारी कल्लोल मचाकर सूना घर आबाद किया॥

रोना और मचलजाना भी, क्या आनंद दिखाते थे।
बड़े बड़े मोती से आँसू, जयमाला पहनाते थे॥
मैं रोई माँ काम छोड़कर, आई मुझको उठा लिया।
झाड़ पोंछ कर चूम चूम, गीले गालों को सुखा दिया॥
दादा ने चंदा दिखलाया, नेत्र नीर-युत चमक उठे।
धुली हुई मुसुकान देखकर, सबके चेहरे दमक उठे॥
सब सुख का साम्राज्य छोड़ कर मैं मतवाली बड़ी हुई।
लुटी हुई, कुछ ठगी हुई थी, दौड़ द्वार खड़ी हुई॥
लाज भरी आँखें थी मेरी, मन में उमँग रँगीली थी।
तान रसीली थी कानों में, चंचल छैल छबीली थी॥
दिल में एक चुभन सी थी यह, दुनिया सब अलबेली थी।
मन में एक पहेली थी, मैं, सब के बीच अकेली थी॥
मिला, खोजती थी जिसको, हे बचपन ठगा दिया तूने।
अरे जवानी के फंदे में, मुझको फँसा दिया तूने॥
रागरंग उसकी भी देखी, उसकी खुशियाँ न्यारी हैं।
प्यारी-प्रीतम की रँगरलियाँ, की भी स्मृतियाँ प्यारी हैं॥
माना मैंने युवा-काल का जीवन खूब निराला है।
आकांक्षा पुरुषार्थ ज्ञान का उदय मोहने वाला है॥
किंतु यहाँ झंझट है भारी, युद्ध-क्षेत्र संसार बना।
चिंता के चक्कर में पड़कर जीवन भी है भार बना॥

आजा, बचपन एक बार फिर, दे दे अपनी निर्मल शांति।
व्याकुल व्यथा मिटानेवाली, वह अपनी प्राकृति विश्रांति ॥
वह भोलापन मधुर सरलता, वह प्यारा जीवन निश्पाप।
क्या फिर आकर मिटा सकेगा, तू मेरे मन का संताप ॥
मैं बचपन को बुला रही थी, बोल उठी बिटिया मेरी।
नंदनवन सी फूल उठी यह, छोटी सी कुटिया मेरी ॥
"मा ओ" कह कर बुला रही थी, मिट्टी खाकर आई थी।
कुछ मुँह में कुछ लिए हाथ में, मुझे खिलाने आई थी ॥
पुलक रहे थे अंग दृगों में, कौतूहल था छलक रहा।
मुख पर था आह्लाद लालिमा, विजय गर्व था झलक रहा॥
मैंने पूछा—"यह क्या लाई ?" बोल उठी वह—'माँ का ओ।'
हुआ प्रफुल्लित हृदय खुशी से, मैंने कहा—'तुम्ही खाओ ॥'
पाया मैंने बचपन फिर से, बचपन बेटी बन आया।
उसकी मंजुल मूर्ति देखकर, मुझ में नव जीवन आया ॥
मैं भी उसके साथ खेलती, गाती हूँ तुतलाती हूँ।
मिलकर उसके साथ स्वयं भी, मैं बच्ची बन जाती हूँ ॥
जिसे खोजती वर्षों से थी, उसको अब जाकर पाया।
भाग गया था, मुझे छोड़कर, वह बचपन, फिर से आया ॥

१

विजयी-मयूर

वह गर्जागरज भयंकर थी कुछ नहीं सुनाई देता था।

घन घोर घटायें काली थी पथ नहीं दिखाई देता था ॥
तूने पुकार की जोरों की वह चमका गुस्से में आया ।
तेरी आहों के बदले में उसने पत्थर दल बरसाया ॥
सुनके जिसकी ध्वनि गम्भीरा आनन्दित हो तू नृत्य करे ।
हा ! मित्र वही बरसा पत्थर तेरा आदर है मित्र ! करे ॥
तेरा पुकारना नहीं रुका तू उठा न उसकी मारों से ।
आखिर को पत्थर पिघल गये आहों से और पुकारों से ॥
तू धन्य हुआ हम सुखी हुई सुन्दर नीला अकाश मिला ।
चंद्रमा चाँदिनी सहित मिला सूरज भी मिला प्रकाश मिला ॥
तेरी-केका से यों मयूर ! घन विमुख निरभिमानी होवें ।
उपहार बने तीखे प्रहार पत्थर पानी पानी होवें ॥

१३

विजया-दशमी

विजये ! तूने तो देखा है वह विजयी श्रीराम सखी ।
धर्मभीरु सात्विक निश्छल मन वह करुणा की धाम सखी ॥
बनबासी असहाय और फिर हुआ विधाता बाम सखी ।
हरी गई सहचरी जानकी वह व्याकुल घनश्याम सखी ॥
कैसे जीत सका रावण को, रावण था सम्राट सखी ।
सोने की लंका थी उसकी ठटे राजसी ठाट सखी ॥
रक्षक राक्षस सैन्य सबल था प्रहरी सिंधु विराट सखी ।
नर ही नहीं देव डरते थे सुनकर उसकी डाट सखी ॥

राम समान हमारा भी तो नहीं रहा अब राज सखी।
राजदुलारों के तन पर हैं सजे फकीरी साज सखी॥
हो असहाय भटकते फिरते वनवासी से आज सखी।
सीता लक्ष्मी हरी किसी ने गई हमारी लाज सखी॥
आशा का संदेश सुनाती तू हमको प्रति वर्ष सखी।
इसीलिये तेरे आने पर होता अतिशय हर्ष सखी॥
रामचंद्र की विजय कथा का भेद बता आदर्श सखी।
पराधीनता से छूटे यह प्यारा भारतवर्ष सखी॥
पर इतने ही से होता है किसे भला संतोष सखी।
जरा हृदय तो देख भरे हैं यहां रोष के कोष सखी॥
वह दिन था जब दिया किसी ने रण में जरा प्रचार सखी।
मिटा दिया यम को भी हमने हुआ हमारा वार सखी॥
और आज तू देख देख ये सबल बचाते प्राण सखी।
रण से पिछड़ पड़े कहते हैं करो देश का त्राण सखी॥
छिड़ा आज यह पाप पुण्य का युद्ध अनोखा एक सखी।
मर जावें पर साथ न देंगे पापों का है टेक सखी॥
सबलों को कुछ सीख सिखाओ मरें करें उद्धार सखी।
दानव दल दें पाप मसल दें मेटें अत्याचार सखी॥
सबल पुरुष यदि भीरु बनें तो हमको दे वरदान सखी।
अबलायें उठ पड़ें देश में करें युद्ध घमसान सखी॥

पन्द्रह कोटि असहयोगिनियाँ दहला दें ब्रह्माण्ड सखी।
भारत-लक्ष्मी लौटाने को रच दें लङ्काकाण्ड सखी॥
खाना पीना सोना जीना हो पापी का भार सखी।
मर मर कर, करदें पापों का हम जगती से छार सखी॥
देखें फिर इस जगती तल में होगी कैसे हार सखी।
भारत माँ की बेड़ी कार्टे होवे बेड़ा पार सखी॥
दो विजये! वह आत्मिक बल दो वह हुङ्कार मचाने दो।
अपनी निर्बल आवाज़ों से दुनिया को दहलाने दो॥
"जय स्वतंत्रिणी भारत माँ" यों कहकर मुकुट लगानेदो।
हमें नहीं इस भूमण्डल को माँ पर बलि बलि जाने दो॥
छेड़ दिया संग्राम मचेगो गड़ बड़ आठो याम सखी।
असहयोग सर तान खड़ा है भारत का "श्रीराम"सखी॥
पापों के गढ़ टूट पड़ेंगे, रहना तुम तैयार सखी।
विजये हम तुम मिल कर लेंगीअपनी मां का प्यार सखी॥

१४

मेरी कविता

मुझे कहा कविता लिखने को, लिखने मैं बैठी तत्काल।
पहिले लिखा जालियाँवाला, कहा कि-"बस होगये निहाल-
तुम्हें और कुछ नहीं सूझता ले देकर वह खूनी बाग।
रोने से अब क्या होता है, धुल न सकेगा उसका दाग॥

भूल उसे चल हँसो मस्त हो"-मैंने कहा-"धरो कुछ धीर।
तुमको हंसते देख कहीं फिर फ़ायर करे न डायर वीर॥"
कहा-"न मैं कुछ लिखने दूँगा मुझे चाहिये प्रेम कथा।"
मैंने-"कहा नवेली है वह रम्य वदन है चंद्र यथा॥"
अहा मग्न हो उछल पड़े वे मैंने कहा सुनो चुपचाप।
वड़ी वड़ी सी भोली आँखें केश पाश ज्यों काले साँप॥
भोली भाली आँखे देखो उसे नहीं तुम रुलवाना।
उसके मुँह से प्रेम भरी कुछ मीठी बतियाँ कहलाना॥
हाँ वह रोती नहीं कभी भी और नहीं कुछ कहती है।
शून्य दृष्टि से देखा करती खिन्न-मना सी रहती है॥
करके याद पुराने सुख को कभी चौंक सी पड़ती है।
भय से कभी काँप जाती है, कभी क्रोध में भरती है॥
कभी किसी की ओर देखती नहीं दिखाई देती है।
हँसती नहीं किन्तु चुपके से कभी कभी रो लेती है॥
ताजे हलदी के रँग से कुछ पीली उसकी सारी है।
लाल लाल से धब्बे हैं कुछ अथवा लाल किनारी है॥
उसका छोर लाल! सम्भव है हो वह खूनी रँग से लाल।
है सिंदूर विन्द से सज्जति अब भा कुछ कुछ उसका भाल॥
अबला है उसके पैरों में बनी महावर की लाली।
हाथों में मेंहदी की लाली वह दुखिया भोली भाली॥

उसी धारा की ओर शाम को जाती हुई दिखाती है।
प्रातःकाल सूर्योदय से पहले ही फिर जाती है॥
लोग उसे पागल कहते हैं देखो तुम न भूल जाना।
तुम भी उसे न पागल कहना मुझे क्लेश मत पहुँचाना॥
उसे लौटती समय देखना रम्य बदन पीला पीला।
साड़ी का वह लाल छोर भी रहता है बिल्कुल गीला॥
डायन भी कहते हैं उसको कोई कोई हत्यारे।
उसे देखना किन्तु न ऐसी ग़लती तुम करना प्यारे॥
बांई ओर हृदय में उसके कुछ धड़कन दिखलाती है।
वह प्रतिदिन क्रम क्रम से कुछ कुछ धीमी होती जाती है॥
किसी रोज़ सम्भव है उसकी धड़कन बिल्कुल मिट जावे।
उसकी भोली भाली आँखें हाय सदा को मुँद जावें॥
उसकी ऐसी दशा देखना आँसू चार बहा देना।
उसके दुख में दुखिया बनके तुम भी दुःख मना लेना॥

१५

मातृ मंदिर में

व्यथित है मेरा हृदय-प्रदेश, चलूँ किसको बहलाऊँ आज।
बता कर अपना दुख सुख उसे, हृदय का भार हटाऊँ आज॥
चलूँ माँ के पद-पंकज पकड़, नयन-जल से नहलाऊँ आज।
मातृ-मंदिर में मैंने कहा चलूँ दर्शन कर आऊँ आज॥
किन्तु यह हुआ अचानक ध्यान दीन हूँ छोटी हूँ अज्ञान।

मातृ-मंदिर का मारग मुझे तुम्ही बतला दो हे भगवान ॥
मार्ग के बाधक पहरेदार, सुना है हैं ऊँचे सोपान।
फिसलते हैं ये दुर्वल पैर, चढ़ा दो मुझको हे भगवान॥
अहा! वे जगमग जगमग जाग ज्योतियाँ दीख रही हैं वहाँ।
शीघ्रता करो वाद्यव्रज उठे भला मैं कैसे ठहरूँ यहाँ॥
सुनाई पड़ता है कल गान मिला दूँ मैं भी अपनी तान।
शीघ्रता करो मुझे ले चलो मातृ-मंदिर में हे भगवान॥
चलूँ मैं जल्दी से चढ़ चलूँ देख लूँ माँ की प्यारी मूर्ति।
अहा वह मीठी सी मुसकान जागती होगी न्यारी स्फूर्ति॥
उसे भी आती होगी याद उसे हां, आती होगी याद।
नहीं लो रूठूँगी मैं आज सुनाऊँगी उसको फरयाद॥
कलेजा मां का, मैं सन्तान, करेगी दोषों पर अभिमान।
मातृ वेदी पर घंटा बजा, चढ़ा दो मुझको हे भगवान॥
सुनूंगी माता की आवाज़, रहूँगी मरने को तय्यार।
कभी भी उस वेदी पर देव न होने दूंगी अत्याचार॥
न होने दूँगी अत्याचार, चलो मैं हो जाऊँ वलिदान।
मातृ-मंदिर में हुई पुकार, चढ़ा दो मुझको हे भगवान॥

१६

मुरझाया फूल

यह मुरझाया हुआ फूल है, इसका हृदय दुखाना मत।
स्वयं दिखाने वाली इसकी, पंखड़ियां विखराना मत॥

जीवन की अंतिम घड़ियों में, देखो उसे रुलाना मत।
गुजरो अगर पास से उसके उसे चोट पहुँचाना मत॥
अगर हो सके तो ठंढ़ी बूंदे टपका देना प्यारे।
जल न जाय संतप्त हृदय, शीतलता ला देना प्यारे॥

१७

मातृ मंदिर में—

देव ये कुंजे उजड़ी पड़ी और वह कोकिल उड़ ही गई।
हटाई हमने लाखों बार किन्तु वे घड़ियाँ मुड़ ही गई॥
विष्णु ने दिया दान ले लिया, शुक्लता गई अंधेरा मिला।
मातृ-मंदिर में सूने खड़े, युक्ति के बदले मरना मिला॥
आह की कठिन लूह चल रही नाश का घन गर्जन हो रहा।
क़ैद या बाण बरसने लगे पापियों से तर्जन हो रहा॥
अमर लोचन के धन के लिए चलो चल पड़े खुले है द्वार।
गजी का शुक्लाम्बर ले चले मातृ-मंदिर में हुई पुकार॥
जननि के दुख की घड़ियाँ कटे सजावें पूजा का साहित्य।
आरती उतरे आदर भरो करों में लें गभ का आदित्य॥
आज वे संदेशे सुन पड़े, कटें ये पैरों की जंजीर।
युक्ति की मतवाली माँ उठे, उठावें बेटी बेटे वीर॥
पाप पृथ्वी पर से उठ जाय, पापियों से छूटे सम्बन्ध।
प्यार प्रतिभा प्राणों की उठे त्याग भय शीतल मंद सुगंध॥

विजयिना माँ के वीर सुपुत्र पापसे असहयोग लें ठान ॥
गुँजा डाले स्वराज्य की तान और सब होजावें वलिदान।
ज़रा ये लेखनियाँ उठ पड़ें मातृ भू को गौरव से मढ़ें ॥
करोड़ों क्रांतिकारिणी मूर्ति पलों में निर्भयता से बढ़ें।
हमारी प्रतिभा साध्वी रहे देश के चरणों पर ही चढ़े।
अहिंसा के भावों में मस्त आज यह विश्व जीतना पढ़े ॥

१८

मत जाओ !

लोकमान्य ! मैं क्या सुनती हूँ सहसा स्वर्ग सिधार गये।
वज्रपात हा ! जीवन जागृति, साहस, धैर्य्यसिधार गये ॥
अंधकार ! सघनान्धकार ! यह निराधार संसार हुआ।
चीख पड़ी मतजाओ भगवन ! यह कैसा व्यवहार हुआ ॥
यों असहाय छोड़कर असमय कैसे जाते हो भगवान।
लौटो तुम्हें न जाने दूँगी दुखी देश के जीवन प्राण !
भारत मैया की नैया के चातुर खिवैया लौट चलो।
इस कुसमय में साथ नछोड़ो रुक जाओ ठहरो सुन लो ॥
आशा-बेलि स्वदेश भूमि की यों न हाय ! मुरझाने दो।
लौटो लौटो भारत के धन ! उसे ज़रा हरियाने दो ॥
मातृभूमि के लिए हज़ारों कष्टों को सहने वाले।
भारत माँ पर तन मन धन अर्पण कर मर मिटने वाले ॥

कहते थे—"मेरे बंधन से यदि हो जावे माँ स्वाधीन।
तो मैं हूँ तैयार यदपि हूँ वास्तव में मैं अपराधी न ॥"
सोचो मृत्यु नहीं बंधन है बंधन तो है कारागार।
आओ यहीं निवास करो हो कारागृह को हृदयागार ॥
जननि निछावर होगी तुम पर जनता बलिबलि जायेगी।
श्रद्धा और प्रीति से तुमको, नयनों पर बिठलायेगी ॥
लौटो आवो मंडाले में मंदिर हम बनवा देंगे।
वहाँ हथकड़ी और बेड़ियों से घंटा टँगवा देगे ॥
तुम बन जाना मुख्य पुजारी करते रहना नित टंकार।
हम सब मिल कर करें प्रार्थना हो स्वराज्यका मंत्रोच्चार ॥
तब स्वतंत्रता देवी देगी प्रमुदित हो प्यारा वरदान।
वह पहलीजयमाल गले में धारण करना तुम भगवान ॥
भारत का हो राजतिलक तुम तिलकयहीं के कहलाओ।
अमरपुरी वलि कर दोइस पर यहीं रहो हा! मतजाओ ॥

१९

राखी

भैया कृष्ण! भेजती हूँ मैं राखी अपनी यह लो आज।
कई वार जिसको भेजा है सजा सजा कर नूतन साज ॥
लो आओ भुज दण्ड उठाओ, इस राखी में बँधजाओ।
भरत-भू की रज भूमी को एक वार फिर दिखलाओ ॥

वीर चरित्र राजपूतों का पढ़ती हूँ मैं राजस्थान।
पढ़ते पढ़ते आँखों में छा जाता राखी का आख्यान॥
मैंने पढ़ा शत्रुओं को भी जब जब राखी भिजवाई।
रक्षा करने दौड़ पड़ा वह राखीबंद शत्रु-भाई॥
किन्तु देखना है यह मेरी राखो क्या दिखलाती है।
क्या निस्तेज कलाई ही पर बंध कर यह रह जाती है॥
देखो भैया भेज रही हूँ तुमको—तुमको राखी आज।
साखी राजस्थान बनाकर रख लेना राखा की लाज॥
हाथ काँपता हृदय धड़कता है मेरी भारी आवज़।
अब भी चौंकता है जलियाँवाला का वह गोलन्दाज॥
यम की सूरत उन पतितों की पाप भूल जाऊँ कैसे।
अंकित आज हृदय में हैं फिर मन को समझाऊँ कैसे॥
बहिने कई बिलखती हैं हा! उनकी सिसक न मिटपाई।
लाज गंवाई गाली पाई तिसपर धमकी भी खाई॥
डर है कहीं न मार्शलला का पड़ जाये फिर से घेरा।
ऐसे समय द्रौपदी जैसा कृष्ण सहारा है तेरा॥
बोलो सोच समझकर बोलो क्या राखी बँधवाओगे?
भीर पड़ेगी रक्षा करने क्या तुम दौड़े आओगे?
यदि हो तो यह लो इस मेरी राखी को स्वीकार करो।
आकर भैया बहिन "सुभद्रा" के कष्टों का भार हरो॥

२०

झाँसी की रानी

सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भृकुटि तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आयी फिर से नयी जवानी थी।
गुमी हुई आज़ादी की कीमत सब ने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सब ने मन में ठानी थी।
चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी॥
कानपूर के नाना की मुँहबाली बहिन छबीली थी,
लक्ष्मीबाई नाम पिता की वह सन्तान अकेली थी।
नाना के सँग पढ़ती थी वह नाना के संग खेली थी,
बरछी ढाल कृपाण कटारी उसकी यही सहेली थी।
वीर शिवाजी की गाथाएँ उसको याद ज़बानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसीवाली रानी थी॥
लक्ष्मी थी या दुर्गा थी वह स्वयं वीरता की अवतार,
देख मराठे पुलकित होते उसकी तलवारों के वार।
नकली युद्ध व्यूह की रचना और खेलना खूब शिकार,
सैन्य घेरना दुर्ग तोड़ना ये थे उसके प्रिय खिलवार।

महाराष्ट्र कुलदेवी उसको भी आराध्य भवानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसीवाली रानी थी॥
हुई वीरता की, वैभव के साथ सगाई झांसी में,
व्याह हुआ रानी बन आयी लक्ष्मीबाई झांसी में।
राजमहल में बजी बधाई खुशियां छाई झांसी में,
सुभट बुँदेलों की विरुदावलि सी वह आई झांसी में।
चित्रा ने अर्जुन को पाया शिव से मिली भवानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसीवाली रानी थी॥
उदित हुआ सौभाग्य मुदित महलों में उजियाली छाई,
किन्तु कालगति चुपके चुपके काली घटा घेर लाई।
तीर चलानेवाले कर में उसे चूड़ियां कब भाईं,
रानी विधवा हुई हाय विधि को भी दया नहीं आई।
निःसन्तान मरे राजाजी रानी शोक समानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसीवाली रानी थी॥
बुझा दीप झाँसी का तब डलहौज़ी मन में हरषाया,
राज्य हड़प करने का उसने यह अवसर अच्छा पाया।
फौरन फौजें भेज दुर्ग पर अपना झण्डा फहराया,

लावारिस का वारिस बनकर वृटिश राज्य झाँसी आया।
अश्रु पूर्ण रानी ने देखा झाँसी हुई बिरानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसीवाली रानी थी॥
अनुपम विनय नहा सुनता है, विकट शासकों की माया,
व्यापारी बन गया चाहता था यह जब भारत आया।
डलहौज़ी ने पैर पसारे अब तो पलट गयी काया,
राजाओं नव्वाबों को भी उसने पैरों ठुकराया।
रानी दासी बनी, बनी यह दासी अब महरानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी॥
छिनी राजधानी देहली की लखनऊ छीना बातों बात,
क़ैद पेशवा था बिठूर में हुआ नागपुर पर भी घात।
उदैपूर तंजोर सितारा करनाटक की कौन बिसात,
जब कि सिंध पञ्जाब ब्रह्म पर अभी हुआ था वज्रनिपात।
बंगाले मद्रास आदि की भी तो वही कहानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी॥
रानी रोईं रनवासों में बेगम गम से थी बेज़ार,
उनके गहने कपड़े बिकते थे कलकत्ते के बाज़ार।

सरे आम नीलाम छापते थे अंगरेजों के अखबार,
नागपूर के ज़ेवर ले लो लखनऊ के लो नौलखहार।
थी परदे की इज़्ज़त परदेशी के हाथ विकानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी॥
कुटियों में थी विषम वेदना महलों में आहत अपमान,
वीर सैनिकों के मन में था अपने पुरखों का अभिमान।
नाना धुन्दूपंत पेशवा जला रहा था सब सामान,
बहिन छबिली ने रणचंडी का कर दिया प्रकट आह्वान।
हुआ यज्ञ प्रारम्भ उन्हें तो सोई ज्योति जगानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी॥
महलों ने दी आग झोपड़ी ने ज्वाला सुलगाई थी,
यह स्वतंत्रता की चिनगारी अन्तरगत से आई थी।
झांसी चेती दिल्ली चेती लखनऊ लपटें छाई थी,
मेरठ कानपूर पटना ने भारी धूम मचाई थी।
जबलपूर कोल्हापुर में भी कुछ हलचल उकसानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी॥
इस स्वतंत्रता महायज्ञ में कई वीरवर आये काम,

नाना धुन्दूपंत ताँतिया चतुर अजीमुल्ला सरनाम।
अहमदशाह मौलवी, ठाकुर कुँअरसिंह सैनिक अभिराम,
भारत के इतिहास-गगन में अमर रहेंगे, जिनके नाम।
लेकिन आज जुर्म कहलाती उनकी जो कुर्बानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसीवाली रानी थी॥
इनकी गाथा छोड़ चले हम झाँसी के मैदानों में,
जहाँ खड़ी है लक्ष्मीबाई मर्द बनी मर्दानों में।
लेफ्टिनेन्ट नौकर आ पहुँचा आगे बढ़ा जवानों में,
रानी ने तलवार खींच ली हुआ द्वन्द असमानों में॥
जख़्मी होकर नौकर भागा उसे अजब हैरानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी॥
रानी बढ़ी कालपी आई कर सौ मील निरन्तर पार-
घोड़ा थककर गिरा भूमि पर गया स्वर्ग तत्काल सिधार।
यमुना तट पर अंगरेजों ने फिर खाई रानी से हार,
विजयी रानी आगे चल दी किया ग्वालियर पर अधिकार,
अंगरेजों के मित्र सिन्धिया ने छोड़ी रजधानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसीवाली रानी थी॥

विजय मिली पर अंगरेजों को फिर सेना घिर आयी थी।
अबके जनरल स्मिथ सम्मुख था उसने मुँह की खाई थी,
काना और मंदिरा सखियां रानी के संग आई थीं।
युद्ध क्षेत्र में उन दोनों ने भारी मार मचाई थी,
पर पीछे ह्यूरोज़ आ गया हाय, घिरी अब रानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी॥
तो भी रानी मार काट कर चलती बनी सैन्य के पार।
किन्तु सामने नाला आया, था यह संकट विषम अपार,
घोड़ा अड़ा नया घोड़ा था इतने में आ गये सवार।
रानी एक, शत्रु बहुतेरे होने लगे वार पर वार,
घायल होकर गिरी सिंहिनी उसे वीर गति पानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी॥
रानी गई सिधार, चिता अब उसकी दिव्य सवारी थी।
मिला तेग से तेग, तेग की वह सच्ची अधिकारी थी,
अभी उम्र कुल तेइस की थी, मनुज नहीं अवतारी थी।
हमको जीवित करने आई बन स्वतंत्रता-नारी थी,
दिखा गई पथ सिखा गई हमको जो सीख सिखानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसीवाली रानी थी॥

जाओ रानी याद रखेंगे ये कृतज्ञ भारतवासी।
यह तेरा बलिदान जगावेगा स्वतंत्रता अविनाशी,
होवें चुप इतिहास रचो सच्चाई को चाहे फाँसी।
हों मदमाती विजय मिटा दे गोलों से चाहे झाँसी,
तेरा स्मारक तू ही होगी तू खुद अमिट निशानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसीवाली रानी थी॥



महादेवी वर्मा

श्रीमती महादेवी वर्मा का जन्म २४ मार्च संवत् १९६४ में फरुखाबाद में हुआ। आप के पिता का नाम बा० गोविन्द प्रसाद वर्मा एम० ए० एल० एल० बी० और माता का नाम श्रीमती हेमरानी देवी है। बा० गोविन्द प्रसाद जी इन्दौर में रहते थे और वहीं वकालत करते थे। आप की गणना वहाँ के प्रसिद्ध वकीलों में थी। आप के विचार बहुत ऊँचे थे। खास कर लड़कियों की शिक्षा की ओर आपकी विशेष रुचि थी। आप के दो पुत्र और दो कन्यायें हुईं। उनमें से श्रीमती महादेवी जी आपकी छोटी पुत्री हैं। श्रीमती महादेवी वर्मा की प्रारंभिक शिक्षा इन्दौर के गर्ल्स स्कूल में हुई। आपने यहाँ ठछवें दर्जे तक पढ़ा। घर पर आपने पेन्टिंग, संगीत आदि की भी शिक्षा प्राप्त की। संवत् १९७३ में ११ वर्ष की उम्र में आप का विवाह हुआ। आप के ससुर पुराने ढर्रे के व्यक्ति थे और वे लड़कियों के लिए स्कूली शिक्षा के पक्षपाती नहीं थे। इस कारण से श्रीमती महादेवी वर्मा को कुछ समय से लिए पढ़ाई स्थगित कर देनी पड़ी।

अकस्मात आपके ससुर का परलोकवास हो गया। इसलिए पिता की रुचि के अनुसार आप संवत् १९७७ में प्रयाग में शिक्षा प्राप्त करने के लिए फिर आईं। आपने क्रास्थवेट गर्ल्स कालेज में, जो उस समय स्कूल था, छठवें दर्जे में नाम लिखाया। उसी साल आपने अँग्रेज़ी



श्रीमती महादेवी वर्मा

मिडिल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। संवत १६८१ में आपने एन्ट्रेंस परीक्षा पास की। इस परीक्षा में आप युक्तप्रांत में प्रथम आईं, छात्रवृत्ति और हिन्दी विषय में 'तमीज़' भी प्राप्त की। दो वर्ष बाद इंटर-मीजिएट और संवत् १६८५ में बी० ए० की परीक्षा संस्कृत और फ़िलासफ़ी लेकर पास की। इस साल क्रास्थवेट गर्ल्स कालेज से बी० ए० की परीक्षा में आठ लड़कियाँ शामिल हुई थीं, उनमें इनका प्रथम स्थान रहा। आजकल आप प्रयाग विश्वविद्यालय में एम०ए० में पढ़ रही हैं।

शुरू शुरू में आप प्रायः तुकबंदियाँ बनाया करतीं और उसे फाड़ कर फेंक दिया करती थीं। परन्तु धीरे धीरे आप में कविता लिखने की विशेष रुचि उत्पन्न हुई और अच्छी कविता लिखने लगीं। ज्यों ज्यों आप की शिक्षा बढ़ती गई त्यों त्यों आप की कविता में भी गम्भीरता और स्थायित्व आता गया। आपकी प्रारंभिक कवितायें प्रायः 'चाँद' नामक मासिक पत्र में छपा करती थीं। परन्तु फिर अन्य पत्रों—'माधुरी' 'मनोरमा' 'सुधा' आदि-में भी छपीं। आपने हिन्दी में एक नये ढंग की रचना का प्रादुर्भाव किया। जहाँ दो-चार छायावाद और रहस्यवाद के ऊँचे दर्जे के पुरुष कवि हिन्दी के वर्तमान युग में हैं वहाँ स्त्री-कवि श्रीमती महादेवी वर्मा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आप की कविताओं में प्रायः वियोग और अनुभूति का एक प्रकार का समिश्रण पाया जाता है, जो भावुक हृदयों में एकाएक स्थान कर लेता है। साथ ही आप की रचना मधुर और संगीतमय होती है। आप जो कविता एक बार लिख लेती हैं उसे ज्यों की त्यों रहने देती हैं। आप का

विचार है कि कविता हृदय की एक 'फीलिंग' है। 'पालिश' करने से वह बेजान हो जाती है। यही आपकी कविता का रहस्य है। आप समस्याओं पर कविता नहीं बनातीं बल्कि अपनी इच्छा के अनुसार। समय समय पर आपको कविताओं पर पुरस्कार और प्रशंसापत्र भी मिल चुके हैं। 'मेरा जीवन' नामक रचना पर आपको चाँदी का एक कप भी मिल चुका है। आप की कविताओं का एक संग्रह 'नीहार' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। श्रीमती महादेवी वर्मा से हिन्दी को अभी बड़ी बड़ी आशायें में हैं। आप की अवस्था इस वक्त २३ वर्ष की है। हम आप की कुछ चुनी चुनी रचनाएँ नीचे देते हैं:—

१

विसर्जन

निशा को धो देता राकेश, चाँदनी में जब अलकें खोल,
कली से कहता था मधुमास, बता दो मधु मदिरा का मोल;
झटक जाता था पागल वात, धूल में तुहिन कणों के हार,
सिखाने जीवन का संगीत, तभी तुम आये थे इस पार।
बिछाती थी सपनों का जाल, तुम्हारी वह करुणा की कोर,
गई वह अधरों की मुसकान, मुझे मधुमय पीड़ा में बोर;
भूलती थी मैं सीखे राग, बिछलते थे कर बारंबार,
तुम्हें तब आता था करुणेश, उन्हीं मेरी भूलों पर प्यार!

गए तब से कितने युग बीत, हुए कितने दीपक निर्वाण,
नहीं पर मैंने पाया सीख, तुम्हारा सा मनमोहन गान।
नहीं अब गाया जाता देव! थकी अँगुली हैं ढीले तार,
विश्ववीणा में अपनी आज, मिला लो यह अस्फुट झङ्कार!

२

अतिथि से—

बनबाला के गीतों सा निर्जन बिखरा है मधुमास,
इन कुञ्जों में खोज रहा है सूना कोना मन्द बतास।
नीरव नभ के नयनों पर हिलती हैं रजनी की अलकें,
जाने किसका पंथ देखतीं बिछकर फूलों की पलकें।
मधुर चाँदनी धो जाती है खाली कलियों के प्याले,
बिखरे से हैं तार आज मेरी वीणा के मतवाले।
पहली सी झङ्कार नहीं है और नहीं वह मादक राग,
अतिथि किन्तु सुनते जाओ टूटे तारों का करुण विहाग!

३

कौन?

ढुलकते आँसू सा सुकुमार बिखरते सपनों सा अज्ञात,
चुराकर ऊषा का सिन्दूर मुस्कुराया जब मेरा प्रात।
छिपाकर लाली में चुपचाप सुनहला प्याला लाया कौन?
हँस उठे छूकर टूटे तार प्राण में मँडराया उन्माद।

व्यथा मीठी ले प्यारी प्यास सो गया बेसुध अन्तर्नाद,
घूँट में थी साक़ी की साध सुना फिर फिर जाता है कौन ?

४

मेरा राज्य

रजनी ओढ़े जाती थी, झिलमिल तारों की जाली,
उसके बिखरे वैभव पर, जब रोती थी उजियाली;
शशि को छूने मचली सी, लहरों का कर कर चुम्बन,
बेसुध तम की छाया का, तटनी करती आलिङ्गन।
अपनी जब करुण कहानी, कह जाता है मलयानिल,
आँसू से भर जाता जब, सूखा रजनी का अञ्चल;
पल्लव के डाल हिंडोले, सौरभ सोता कलियों में;
छिप छिप किरणें आती जब, मधु से सीधी गलियों में,
आँखों में रात बिता जब, विधु ने पीला मुख फेरा,
आया फिर चित्र बनाने, प्राची में प्रात चितेरा।
कन कन में जब छाई थी, वह नवयौवन की लाली,
मैं निर्धन तब आई ले, सपनों से भर कर डाली।
जिन चरणों की नख-ज्योती—ने हीरक जाल लजाये,
उन पर मैं ने धुंधले से, आँसू दो चार चढ़ाये!
इन ललचाई पलकों पर, पहरा जब था व्रीड़ा का,
साम्राज्य मुझे दे डाला, उस चितवन ने पीड़ा का!!

उस सोने के सपने को, देखे कितने युग बीते !
आँखों के कोष हुए हैं, मोती बरसा कर रीते,
अपने इस सूनेपन की, मैं हूँ रानी मतवाली;
प्राणों का दीप जलाकर, करती।रहती दीवाली।
मेरी आहें सोती हैं, इन ओठों की ओटों में,
मेरा सर्वस्व छिपा है, इन दीवानी चोटों में॥
चिन्ता क्या है हे निर्मम ! बुझ जाये दीपक मेरा,
हो जायेगा तेरा ही, पीड़ा का राज्य अँधेरा।

५

चाह

माँगत है यह पागल प्यार,
अनोखा एक नया संसार !
कलियों के उच्छ्वास शून्य में ताने एक वितान,
तुहिन कणों पर मृदु कम्पन से सेज बिछा दें गान;
जहाँ सपने हों पहरेदार,
अनोखा एक नया संसार !
करते हों आलोक जहाँ बुझ बुझ कर कोमल प्राण,
जलने में विश्राम जहाँ मिनटे में हो निर्वाण;
वेदना मधु-मदिरा की धार,
अनोखा एक नया संसार !

मिल जावें उसपार क्षितिज के सोभा सीमा-हीन,
गर्वीले नक्षत्र धरा पर लौटें होकर दीन!
उदधि हो नभ का शयनागार,
अनोखा एक नया संसार!
जीवन की अनुभूति तुला पर अरमानो से तोल,
यह अबोध मन मूक व्यथा से ले पागलपन मोल;
करें दृग आँसू का व्यापार,
अनोखा एक नया संसार!

६

निर्वाण

घायल मन लेकर सो जाती, मेघों में तारों की प्यास।
यह जीवन का ज्वार शून्य का, करता है बढ़ कर उपहास॥
चल चपला के दीप जलाकर, किसे ढूँढता अन्धाकार?
अपने आँसू आज पिला दो, कहता किससे पारावार॥
झुक झुक झूम झूम कर लहरें, भरतीं बूँदों के मोती।
यह मेरे सपनों की छाया, झोकों में फिरती रोती॥
आज किसी के मसले तारों—की वह दूरागत झङ्कार।
मुझे बुलाती है सहमी सी, झन्झा के परदों के पार॥
इस असीम तप में मिल कर, मुझको पल भर सो जाने दो।
बुझ जाने दो देव आज, मेरा दीपक बुझ जाने दो!

७

मेरी साध

थकी पलकें सपनो पर डाल, व्यथा में सोता हो आकाश।
छलकता जाता हो चुपचाप, बादलों के उर से अवसाद॥
वेदना की वीणा पर देव, शून्य गाता हो नीरव राग।
मिला कर निश्वासों के तार, गूँथती हो जब तारे रात॥
उन्हीं तारक फूलों में देव! गूँथना मेरे पागल प्राण—
हठीले मेरे छोटे प्राण!

किसी जीवन की मीठी याद, लुटाता हो मतवाला प्रात।
कली अलसाई आँखे खोल, सुनाती हों सपने की बात॥
खोजते हों खोया उन्माद, मन्द मलयानिल के उच्छ्वास।
माँगती हो आँसू के बिन्दु, मूक फूलों की सोती प्यास॥
पिला देना धीरे से देव, उसे मेरे आँसू सुकुमार—
सजीले से आँसू के हार!

मचलते उद्गारों से खेल, उलझते हों किरणों के जाल।
किसी की छूकर ठंढ़ी साँस, सिहर जाती हों लहरें बाल॥
चकित सा सूने में संसार, गिन रहा हो प्राणों के दाग़।
सुनहली प्याली में दिनमान, किसी का पीता हो अनुराग॥
ढाल देना उसमें अनजान, देव मेरा चिर संचित राग!
अरे यह मेरा मादक राग।

मत्त हो स्वप्निल हाला ढाल, महानिद्रा में पारावार।
उसी की धड़कन में तूफ़ान, मिलाता हो अपनी झंकार॥
झकोरों से मोहक संदेश, कह रहा हो छाया का मौन।
सुप्त आहों का दीन विषाद, पूछता हो आता है कौन?
बहा देना आकर चुपचाप, तभी यह मेरा जीवन फूल—
सुभग मेरा मुरझाया फूल।

८

स्वप्न

इन हीरक से तारों को, कर चूर बनाया प्याला।
पीड़ा का सार मिला कर, प्राणों का आसव ढाला॥
मलयानिल के झोकों में, अपना उपहार लपेटे।
मैं सूने तट पर आई, बिखरे उद्गार समेटे॥
काले रजनी अञ्चल में, लिपटीं लहरें सोती थीं।
मधु मानस का बरसाती, वारिद माला रोती थी॥
नीरव तम की छाया में, छिप सौरभ की अलकों में।
गायक वह गान तुम्हारा, आ मँडराया पलकों में॥
हाला सी हालाहल सी, वह गई अचानक लहरी।
डूबा जग भूला तन मन, आँखे सिथिलाईं सिहरी॥
बेसुध से प्राण हुए जब, छूकर उन। झङ्कारों को।
उड़ते थे अकुलाते थे, चुम्बन करते तारों को॥

उस मतवाली वीणा से, जब मानस था मतवाला।
वे मूक हुईं झङ्कारें, वह चूर हो गया प्याला॥
हो गईं कहाँ अन्तर्हित, सपने लेकर वे रातें।
जिनका पथ अलोकित कर, बुझने जाती हैं आँखें॥

९

तब

शून्य से टकरा कर सुकुमार करेगी पीड़ा हाहाकार,
बिखर कर कन कन में हो व्याप्त मेघ बन छा लेगी संसार।
पिघलते होंगे यह नक्षत्र अनिल की जब छूकर निश्वास,
निशा के आँसू में प्रतिबिम्ब देख निज काँपेगा आकाश!
विश्व होगा पीड़ा का राग निराशा जब होगी वरदान,
साथ लेकर मुरझाई साध बिखर जायेंगे प्यासे प्राण।
उदधि नभ को कर लेगा प्यार मिलेंगे सीमा और अनन्त,
उपासक ही होगा आराध्य एक होंगे पतझार बसन्त।
बुझेगा जलकर आशादीप सुला देगा आकर उन्माद,
कहाँ कब देखा था वह देश? अतल में डूबेगी यह याद!
प्रतीक्षा में मतवाले नैन उड़ेंगे जब सौरभ के साथ,
हृदय होगा नीरव आह्वान मिलोगे क्या तब हे अज्ञात?

१०

कहाँ?

घोर घन की अवगुण्ठन डाल करुण सा क्या गाती है रात?

दूर छूटा वह परिचित कूल कह रहा है यह झञ्झावात;
लिए जाते तरिणी किस ओर अरे मेरे नाविक नादान!
हो गया विस्मृत मानवलोक हुए जाते हैं बेसुध प्राण,
किन्तु तेरा नीरव संगीत निरन्तर करता है अह्वान;
यही क्या है अनन्त की राह अरे मेरे नाविक नादान?

११

फिर एक वार—

मैं कम्पन हूँ तू करुण राग मैं आँसू हूँ तू है विषाद,
मैं मदिरा तू उसका .खुमार मैं छाया तू उसका अधार;
मेरे भारत मेरे विशाल मुझ को कह लेने दो उदार!
फिर एक वार बस एकवार!
जिनसे कहती बीती बहार 'मतवालो जीवन है असार'!
जिन झंकारों के मधुर गान ले गया छीन कोई अजान,
उन तारों पर बन कर विहाग मंडरा लेने दो हे उदार!
फिर एक वार बस एकवार!
कहता है जिनका व्यथित मौन 'हमसा निष्फल है आज कौन'?
निर्धन के धन सी हास रेख जिनकी जग ने पाई न देख,
उन सूखे ओठों के विषाद-में मिल जाने दो हे उदार!
फिर एक वार बस एकवार!
निज आँखो का नीरव अतीत कहता 'मिटना है मधुर जीत',
जिन पलकों के तारे अमोल आँसू से करते हैं किलोल,

उस चिन्तित चितवन में विहास बन जाने दो मुझको उदार !
फिर एक बार बस एकबार !
फूलों सी हो पल में मलीन तारों सी सूने में विलीन,
ढुलती बूँदों से ले विराग दीपक से जलने का सुहाग,
अन्तरतम की छाया समेट मैं तुझ में मिट जाऊँ उदार !
फिर एक बार बस एकबार !

१२

आँसू

यहीं है वह विस्मृत सङ्गीत खोगई है जिसकी झङ्कार,
यहीं सोते हैं वे उच्छ्वास जहाँ रोता बीता संसार ;
यहीं है प्राणों का इतिहास यही बिखरे वसन्त का शेष,
नहीं जो अब आयेगा लौट यही उसका अक्षय संदेश।

❀ ❀ ❀

समाहित है अनन्त अह्वान यही मेरे जीवन का सार,
अतिथि ! क्या ले जाओगे साथ मुग्ध मेरे आँसू दो चार ?

१३

मेरा जीवन

स्वर्ग का था नीरव उच्छ्वास देव वीणा का टूटा तार,
मृत्यु का क्षणभंगुर उपहार रत्न वह प्राणों का शृंगार ;

नई आशाओं का उपवन मधुर वह था मेरा जीवन!
क्षीरनिधि की थी सुप्त तरङ्ग सरलता का न्यारा निर्झर,
हमारा वह सोने का स्वप्न प्रेम की चमकीली आकर;
शुभ्र जो था निर्मेघ गगन सुभग मेरा संगी जीवन!
अलक्षित आ किसने चुपचाप सुना अपनी सम्मोहन तान,
दिखाकर माया का साम्राज्य बना डाला इसको अज्ञान?
मोह मदिरा का आस्वादन किया क्यों हे भोले जीवन!
तुम्हें ठुकरा जाता नैराश्य हँसा जाती है तुमको आश,
नचाता मायावी संसार लुभा जाता सपनों का हास;
मानते विष को संजीवन मुग्ध मेरे भूले जीवन!
न रहता भौंरों का अह्वान नहीं रहता फूलों का राज्य,
कोकिला होती अन्तर्ध्यान चला जाता प्यारा ऋतुराज;
असम्भव है चिर सम्मेलन न भूलो क्षणभंगुर जीवन!
विकसते मुरझाने को फूल उदय होता छिपने को चन्द,
शून्य होने को भरते मेघ दीप जलता होने को मन्द;
यहाँ किसका अनन्त यौवन अरे अस्थिर छोटे जीवन!
छलकती जाती है दिन-रैन लबालब तेरी प्याली मीत,
ज्योति होती जाती है क्षीण मौन होता जाता संगीत;
करो नयनो का उन्मीलन क्षणिक हे मतवाले जीवन!
शून्य से बन जाओ गम्भीर त्याग की हो जाओ झङ्कार,
इसी छोटे प्याले में आज डुबा डालो सारा संसार;

लजा जायें यह मुग्ध सुमन बनो ऐसे छोटे जीवन !
सखे ! यह है माया का देश क्षणिक है मेरा तेरा संग,
यहाँ मिलता काँटो में बन्धु ! सजीला सा फूलों का रंग ;
तुम्हें करना विच्छेद सहन न भूलो हे प्यारे जीवन !

१४

स्मारक

झूमते से सौरभ के साथ लिए मिटते सपनों का हार,
मधुर जो सोने का संगीत जा रहा है जीवन के पार ;
तुम्ही अपने प्राणों में मौन बाँध लेते उसकी झङ्कार ।
काल की लहरों में अविराम बुलबुले होते अन्तर्धान,
हाय उनका छोटा ऐश्वर्य्य डूबता लेकर प्यासे प्राण ;
समाहित हो जाती वह याद हृदय में तेरे हे पाषाण !
पिघलती आँखों के संदेश आँसुओं के वे पारावार,
भग्न आशाओं के अवशेष जली अभिलाषाओं के क्षार ;
मिला कर उच्छ्वासों की धूलि रँगाई है तूने तस्वीर !
गूंथ बिखरे सूखे अनुराग बीन करके प्राणों के दान,
मिले रज में सपनों को ढूँढ खोज कर वे भूले आह्वान ;
अनोखे से माली निर्जीव बनाई है आँसू की माल !
मिटा जिनको जाता है काल अमिट करते हो उनकी याद,
डुबा देता जिसको तूफ़ान अमर कर देते हो वह साध ;

मूक जो हो जाती है चाह तुम्हीं उसका देते संदेश।
राख में सोने का साम्राज्य शून्य में रखते हो संगीत,
धूल से लिखते हो इतिहास विन्दु में भरते हो वारीश;
तुम्हीं में रहता मूक वसन्त अरे सूखे फूलों के हास!

१५

जो तुम आजाते एकबार

कितनी करुणा कितने सँदेश, पथ में बिछ जाते वन पराग,
जाता प्राणों का तार तार, अनुराग भरा उन्माद राग;
आँसू लेते वे पद पखार,
हँस उठते पल में आर्द्र नैन, धुल जाता ओठों से विषाद,
छा जाता जीवन में वसन्त; लुट जाता चिर संचित विराग;
आँखें देतीं सर्वस्व वार!



कुसुम-माला

आज कल खड़ीबोली का युग है। समस्या-पूर्तियों का भी समय करीब-करीब जाता हुआ दीख रहा है। स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार हो रहा है। उनमें नवीन-नवीन विचार उत्पन्न हो रहे हैं। कविता के क्षेत्र में परिवर्तन हुआ, ब्रजभाषा का स्थान खड़ीबोली ने ले लिया। जो ब्रजभाषा के कवि थे वे भी खड़ीबोली में रचना करने लगे। स्त्रियों पर भी इसका प्रभाव पड़ा। जो ब्रजभाषा में लिखने-वालियाँ थीं वे भी खड़ीबोली में लिखने लगीं। देश, जाति, समाज के प्रभाव से वे बच न सकीं। कहाँ एक समय था जब स्त्रियाँ समस्या पूर्तियाँ भी कठिनाई से कर पातीं थीं, उन्हें कविता प्रकाशित कराते लज्जा आती थी, वहाँ आज सैकड़ों स्त्री-कवियत्रियाँ काव्य-जगत में अपना यश फैला रही हैं। उनकी कविता खड़ीबोली के वर्तमान पुरुष कवियों से किसी कदर यदि श्रेष्ठ नहीं हैं तो घट कर भी नहीं हैं। इस स्तंभ में हम उन स्त्रियों की कविता की एक-एक बानगी देते हैं जो सुन्दर लिखती हैं, और भविष्य में जिनसे विशेष आशा है। जिन स्त्रियों की रचना नमूने के रूप में दी जाती हैं वे वर्तमान समय में हिन्दी-पत्र-पत्रिकाओं में लिखती हैं। पाठकों को देखना चाहिए कि

अब स्त्रियाँ काव्य जगत में कितनी उन्नति रही हैं और वे किस दर्जे की काव्य-रचना कर रही हैं। नीचे दिये गए स्फुट रचनाओं में अनेक छंद बड़े ऊँचे और खड़ीबोली की उत्कृष्ट रचनायें हैं।

१

मंजु कविताई वर परम विचित्र जाकी,
करिके बड़ाई कवि कोविदहु वारे हैं।
नूतन अनूप बहु भूषण भरे हैं सब,
दूषण न जामैं कोऊ पावत निकारे हैं॥
व्यंग भाव चोखे सुभ नायका ललाम भेद,
अलंकार भेद 'कुशला' ने निरधारे हैं।
और जेते कविता में चाहिए कवित गुण,
'रसिकमित्र' पत्र में सुदेखे हम न्यारे हैं॥

—कुशला

२

राम सिया सँग खेलैं होरी, भर गुलाल सों झोरी।
सजकर आई जनक किशोरी, बहु बंधुन की जोरी।
मीठे बोल सियावर बोलत, सब सखियन की ओरी।
हँसे हँसावैं सब करजोरी, राम सिया सँग खेलैं होरी।
उड़त गुलाल अबीर अली री, अंबर अरुण भयोरी॥
रँग की भरी छुटैं पिचकारी, केसर कीच मचोरी।

नैना भरि भरि सब निरखोरी, राम सिया सँग खेलैं होरी ॥
लोग नगर के सब ही आये, चहुँदिशि भीर भयो री।
तुलछराय प्रभु कह करजोरी, तन मन धन आपरो री।
जनम जनम को लाभ लहोरी, राम सिया सँग खेलैं होरी ॥

—तुलछराय

३

बस रहि मेरे प्रान मुरलिया, बस रहि मेरे प्रान।
या मुरली की मधुर मधुर धुनि, मोहत सब के कान ॥
मुख सो छीन लई सखियन मिलि, अमृत पीयो जान।
वृन्दावन में रास रच्यो है, सखिया राख्यो मान ॥
धुनि सुनि कान भई मतवाली, अन्तर लग गयो ध्यान।
'वीरॉं' कहे तुम बहुरि बजाओ, नँद के लाल सुजान ॥

—वीराँ

४

स्त्रियों का पतन

हा हन्त नारियों ने निज धर्म को भुलाया।
पाई न पूर्ण शिक्षा अभिमान उर में छाया ॥
पत्नी का इष्ट पति है पति-भक्ति से सुगति है।
अब हाय यह कुमति है सेवक उन्हें बनाया ॥
मेलों में व्यर्थ जातीं झूठे गुरू बनातीं।

कुलकानि हैं गँवातीं कैसा सितम ढहाया ॥
सुत माँगती हैं कोई कोई वशीकरण की।
धन के लिए किसी ने निज धर्म्म को गँवाया ॥
ले नारियों से भिक्षा एकान्त में ले शिक्षा।
होती नहीं परीक्षा गुरु-मंत्र क्या सिखाया ॥
लम्बी जटा बढ़ाये हैं भस्म भी रमाए।
साधू के नाम को इस पाखण्ड ने लजाया ॥
बगुला भगत बने हैं अघ-पङ्क में सने हैं।
ऐसे असुर जनों ने 'मीरा' का दिल दुखाया ॥

—फूलकुमारी मेहरोत्रा, कानपुर

५

चेतावनी

छोटी सी ही अभी कली हूँ, शैशव अब तक गया नहीं।
यौवन का सुविकाश अभी तो, आया है कुछ नया नहीं ॥
जो रसिकों को रोचक होता, अभी रुचिर वह रंग नहीं।
लीला की लहरी का भी तो, अभी सुललित उमंग नहीं।
मधुप अभी मेरे मानस में, मधु का भी माधुर्य नहीं।
सरलपने की ही प्रतिमा हूँ, आया है चातुर्य नहीं ॥
मधुप मुग्ध हो मत मँडराओ, अतः अभी ही से मुझ पर।
लोलुपता का दोष नहीं तो, सज्जन रक्खेंगे तुझ पर ॥

—जान्हवी देवी दीक्षित प्रतापगढ़

६

साधु पुरुष

जो हैं जीवन मुक्त महा विज्ञानी धर्म प्रेम आगार।
सत्य शील समता संयम के जो हैं एक मात्र अवतार॥
अहंकार को जीत जिन्होंने काम क्रोध को डाला मार।
ऐसे ज्ञानी साधु पुरुष ही हर सकते हैं भू का भार॥
नयनों से तप तेज टपकता करुणा का हो रहा प्रवाह।
जिनके दर्शन से मिट जाती है सारे विषयों की चाह॥
जिन्हें प्रशंसा निन्दा सम है करें सत्य का सदा विचार।
ऐसे ज्ञानी साधु पुरुष ही हर सकते हैं भू का भार॥
विषय विरागी पूरे त्यागी दुख सुख में जो एक समान।
शान्त भाव ले सदा करें जो सर्वेश्वर का सम्यक ध्यान॥
जाना है तप बल से जिनने सब धर्मों का सच्चा सार।
ऐसे ज्ञानी साधु पुरुष ही हर सकते हैं भू का भार॥
तर्क-तृषा को सार रहित जो जान त्याग करते तत्काल।
जो निज कानों से सुन सकते हैं जग के दुखियों का हाल॥
सदाचार सम्पन्न सुजनता शील दया के जो भंडार।
ऐसे ज्ञानी साधु पुरुष ही हर सकते हैं भू का भार॥
मन का दमन किया है जिसने वही बली है सच्चा वीर।
तथा इन्द्रियों को विषयों से निरत किया है जिसने धीर॥

वही वीरवर एक मात्र इस धर्म धुरी को सत्ता धार।
ऐसे ज्ञानी साधु पुरुष ही हर सकते हैं भू का भार॥
परम उदाराशय अति पावन प्रेम भरे जो भारी हैं।
कृपा दृष्टि से जिनके सारे विश्व समूह सुखारी हैं॥
विश्व बंधुता के सुखदायक भावों का जो करें विचार।
ऐसे ज्ञानी साधु पुरुष ही हर सकते हैं भू का भार॥
सत्य प्रेम मम शिक्षा जिनकी नहीं द्वेष का है संचार।
सपने में भी घोर शत्रु का करें न किंचित अहित विचार॥
उल्टे प्रेम धनी बन उस पर करें प्रेम का निज विस्तार।
ऐसे ज्ञानी साधु पुरुष ही हर सकते हैं भू का भार॥
प्रेमालोक विलोक जिन्हीं का द्वेष-निशाचर जाता भाग।
जिनके पास सिंह भी मृग को करता है शिशुवत अनुराग॥
ऐसे जो समर्थ सत्कर्मी करते हैं नित पर उपकार।
ऐसे ज्ञानी साधु पुरुष ही हर सकते हैं भू का भार॥

—रामप्यारी 'चंद्रिका' अजमेर

७

मान-मनौअल

नीरस कुलिष कठोर घोर हो तदपि द्रवित कर छोड़ूँगी।
मन-वनमाली अन्वेपण को वन उपवन गिरि फिर आई॥
मानस मणि मालाधर के हित मानस सागर फिर आई।
सुख के सार सनातन तुम बिन पलकन पलकें जोड़ूँगी॥

कुटुकारी अँधियारी ओढ़े दुबक गगन में बैठे हो।
चारु चंद्रिका की चुनरी के अवगुंठन में पैठे हो॥
चल न सकेगा साज सखे! यह जब मैं कला मरोड़ूँगी।
निरखो नाथ! तुम्हारे कारण हृत्कमलासन फैलाया॥
छिपा भाव की धूप सुवासित नीरव स्वागत पद गाया।
नयन-नीर से पद पंकज का पंक धुलाकर छोड़ूँगी॥
आओ नाथ! पधारो ताली दे दे तुम्हें नचाऊँगी।
करो विहार तुम्हारे हित मैं अन्तस्तली सजाऊँगी॥
मानो मेरे प्राण नहीं तो मान मटुकिया फोड़ूँगी।
शीतल-श्वास समीर चपेटें खाकर निष्ठुर मानोगे॥
आत्म विसुध चरणों में तड़पूँ तब ही अपनो जानोगे।
अपने हिय की व्याकुलता से मोह नींद को तोड़ूँगी॥

—सुशीला देवी स्नातिका, लाहौर

८

माँ का मन

सरलता का जो सुन्दर श्रोत, क्रोध से जहाँ न ओत प्रोत।
तैरता जहाँ प्रणय-का पोत, दम्भ का जहाँ नहीं खद्योत।
ले कभी सकता अवलम्बन, वही है मञ्जुल-माँ का मन॥
जहाँ है नव-लीला-लहरी, छोह की छवि-छाया छहरी।
कामनाओं की गति-गहरी, वासना-खगी जहाँ विहरी।

प्राकृतिक-पावन-प्रेम-पराग, स्नेह-सौरभमय जिसमें त्याग।
मधुर मधु सा जिसमें अनुराग, न जिसमें कहीं दोष का दाग।
अलौकिक जो है सौम्य-सुमन, वही है मञ्जुल माँ का मन॥
न जिसमें कभी शाप का ताप, शुभाशीशों का जहाँ कलाप।
कदापि न जहाँ अहितमय पाप, सतत हितकारी मधुरालाप।
जहाँ कोमल-करुणा का वास, नहीं जिस से कदापि कुछ त्रास।
शान्ति का जिसमें सुखदाभास, सदयता का है विगत विकास।
जहाँ प्रीति-प्रतीति-पावन, वही है मञ्जुल-माँ का मन॥
निकलते जिससे शुचि उपदेश, छुद्र-छल का न जहाँ लवलेश।
जीव का जो है प्रथम-प्रदेश, जहाँ ही से निर्गुण अखिलेश।
सगुण हो धरते मानव-तन, वही है मञ्जुल-माँ का मन॥
जहाँ है संतत सेवा-भाव, जहाँ है अचल अलौकिक-चाव।
रचे जो नित हित के प्रस्ताव, न जिस में द्वेष-द्रोह-दुराव।
करे जो मीठे संबोधन, वही है मञ्जुल माँ का मन॥
जगत में जिसके सदृश न अन्य, न जिस में उठैं विचार जघन्य।
प्रकृति यह हुई जिसी से अन्य, धन्य है वार बार जो धन्य।
जगत में कहीं न जिससा धन, वही है मञ्जुल माँ का मन॥
किये मम-हित जप तप वृत ध्यान, मनाये देवी देव महान।
भजन-पूजा आदान-प्रदान, यंत्र मंत्रादि अनेक विधान।
किये जिसने सारे साधन, वही है मञ्जुल माँ का मन॥
जहाँ है निश्चल क्षमा अपार, जहाँ ममता का पारावार।

जहाँ है शुभ वात्सल्यागार, न जिस में किंचित कभी विकार।
निछावर जिस पर तन-मन-धन, वही है मञ्जुल माँ का मन।

—शांति देवी शुक्ल, प्रयाग

९

उपालम्भ

तेरे ही कारण बस मेरे संग सनेही छूटे।
तू ही से बस प्रिय जीवन धन गये हमारे लूटे॥
तू ने ही बस बीज विमनता का मम गृह में बोया।
बस मयंक, तुमने ही मेरा सौख्य—साज सब खोया॥
आकर तुमने प्रथम कोक कुल कानन सुमन खिलाये।
किन्तु त्वरित विश्वास तोड़कर मिले हृदय बिलगाये॥
अयि! मयंक अब भी तुम तिरछे तिरछे ही बस जाते।
कुटिल चाल चल वक्र बदन 'कर' से विष ही बरसाते॥
आते हो न पास क्यों मेरे क्यों मुझ से भय खाते।
जाते हो बस दूर दूर ही मानो कुछ शरमाते॥
जो हो किन्तु नहीं अब आया प्रतीकार पाने की।
गये हुए मेरे सुख-धन की नहीं लौट। आने की॥
विमुख बने हो रचि प्रपंच मम रंच ध्यान नहिं करते।
यदि कहती हूँ कुछ सविनय तो आप मौनता धरते॥
यद्यपि ज्ञान मुझे है सब विधि तुम्हें नहीं परवाह।

अयि ! मयंक तुम और रंग में रँगे नहीं कुछ चाह ॥
—केशवदेवी अग्रवाल, प्रयाग

१०

माँ की गोद

सरसता का है जिसमें श्रोत प्रेम का जिसमें पारावार ।
चपल चित को जिसमें ही नित्त शान्तिमय मिलता है आधार ॥
कठिनता तथा क्रूरता कोप, दृष्टि में जहाँ न आता रंच ।
सत्य शुचि नेह जहाँ है सार, न जिसमें किंचित कभो प्रपंच ॥
मधुरता का है जहाँ विलास विछा है करुणा वसन सुरम्य ।
दुखित चित तप्त जहाँ पर नित्य, प्राप्त करते आनंद अगम्य ॥
विमन मन पाता जहाँ नितान्त अलौकिक पुण्य भरा आमोद ।
सरल सुख सुधा समाकुल एक वही है प्यारी मां की गोद ॥
पयोधर का पी पी पीयूष हुआ है शैशव जहाँ व्यतीत ।
जहाँ से प्रथम विलोका लोक, प्रकृति की शोभा सुषमातीत ॥
मधुर मुख का है जहाँ प्रकाश प्रीति का जो पवित्र पर्यङ्क ।
मंजुममता मंदिर जो एक वही जननी का प्यारा अंक ॥
कमल कर की थपकी से जहाँ, पली थी पहले भौतिक देह ।
सुधा सा मधुर शान्त अभिराम, जहां पर मिला नित नव नेह ॥
नेत्र ने प्रथम लखा था पत्र आश, आभायुत इच्छा-इन्दु ।
कान में पड़े जहाँ मृदु मंजु, लोरियों के मीठे रस-विन्दु ॥

लहरता जहाँ दया का सिंधु, भरा है जहाँ सलिलयुत भाव।
उमंगों की है जहां तरंग, अनोखा जहां नव्य नित चाव॥
सुखद है जहाँ दृष्टि की वृष्टि, जहां है पावन पुण्य प्रमोद।
प्रणय का बहता मंद समीर, जहाँ है वह है मां की गोद॥
सरल मुख में लाकर मुसुकान, जहां खेले थे शैशव खेल।
न जिसमें चिंतायें थी रंच, न था कुछ झंझट झूंठ झमेल॥
व्यथा वाधा पा कर भी चित्त, नहीं पाता है प्रखर प्रमोद।
स्वर्ग सुख देने वाली एक, वही है केवल माँ की गोद॥
उतरते हैं जिसके ही हेतु, विश्व-बन में होकर साकार।
जगत जीवन दुख जिसके हेतु, सहन करते हैं सर्वाधार॥
त्रिजग में जिस से उत्तम और, नहीं है कोई कहीं विनोद।
सहज में देती है वह एक हमें, केवल वह मां की गोद॥
कमर पर लपट लपट कर जहां, न दे सकता कुछ दुख लवलेश।
विरमती वहाँ प्रतीत पुनीत, राग रुचि रीति रहित सब क्लेश॥
निरखता है वात्सल्य विशेष, जहाँ पर कर आमोद प्रमोद।
धन्य जग जीवन जननी धन्य, जयति जय जय वर मां की गोद॥

—चुन्नी देवी विनोदनी, प्रयाग

११

सान्त्वना

बहुत दिनों तक कर चुकने पर स्नेह सना सुन्दर साधन।
प्रयत प्रेम की पर्ण कुटी में कर चुकने पर आराधन॥

आकर अकस्मात् जीवन धन ने अपनाकर पकड़ा हाथ।
स्नेह सुधा से सींच हृदय को मुझे ले चले अपने साथ॥
मौन रहा सङ्कोची मन यों "किन्तु परन्तु" न कुछ बोला।
वन्दन अभिनन्दन के हित भी द्वार न रसना का खोला॥
सिवा देखने के वह प्रतिमा और न मैं कुछ कर पाई।
साथ लिये लज्जा को अपने मैं उनके मन्दिर आई॥
वहाँ देख कर दृश्य निराले मैं अपने को भूल गई।
प्रीति प्रतीति पुनीत देखकर मानस-कलिका फूल गई॥
साध यही बस रही कि पूजन सविधि न उनका कर पाई।
है सन्तोष कि उनके पद पर सुमन एक हाँ! धर आई॥

—मुन्नी देवी भार्गवी, प्रयाग

१२

स्वामी

हाथ जोड़ विनती करती मैं, जीवन धन करुणानिधि स्वामी;
सुधा सलिल इस दीन मीन के जीवतेश सुखमानिधि स्वामी।
कल्पवृक्ष इस जीर्ण कुटी के, शोक ताप भव वाधक स्वामी;
पावन प्रेम सलिल सागर तुम, ऋद्धि सिद्धि शुभ साधक स्वामी।
कठिन कर्म की क्षीण ज्योति में, छोड़ो कभी न मुझ को स्वामी;
लोक लाज अपवाद निरख कर, मन में वृथा न झिझको स्वामी।
व्याह कर्म की सुध कर चित में, निज व्रत से मत खसको स्वामी;
निज मन सदा अचल रख कर, फिर अटल रहो मत भटको स्वामी।

स्वच्छ पवित्र प्रेम-मन्दिर में, सन्तत सुखी विचरना स्वामी ;
अबुध पुजारिन जान इसे, अपराध न चित में धरना स्वामी।
बुद्धिहीन की प्रेम अस्तुती, प्रेम भाव से सुनना स्वामी ;
मूल तत्व सब भाव समझ कर, फिर निज मन में गुनना स्वामी।
विकल हृदय की सुप्त कली को, कर उपचार खिलाना स्वामी ;
शोक ताप सन्तापित मन को, आश्रय-दान दिलाना स्वामी।
प्रेम भिखारिन की आशा पर, वज्र न कभी चलाना स्वामी ;
निज वियोग की तीक्ष्ण अग्नि में, हाय ! न कभी जलाना स्वामी।
प्रेम पूर्ण सम्भाषण ही में, स्वर्ग-राज्य दिखलाना स्वामी ;
मूर्ख सहचरी की भूलों पर, कभी न तुम मचलाना स्वामी।
काम ताप में तपी हुई को, ब्रह्म ज्ञान सिखलाना स्वामी ;
व्यर्थ विचार तर्कनाओं को, कभी न मन बिचलाना स्वामी।
जीवन जटिल समस्याओं को, कभी कभी सुलझाना स्वामी,
विषय वासना सूत्र लगा कर, पर न कभी उलझाना स्वामी।
कठिन कठोर विषम वचनों से, कभी न मुझे रुलाना स्वामी ;
यह दासी चरणों की रज है, इसे न कभी भुलाना स्वामी।

—श्याम देवी, आगरा

१३

कर्तव्य

कर्तव्य देव ! तव यों महिमा बखानी।
जाती किसी विधि कभी हम से न जानी ॥

है चाल ढाल अति ही सुविचित्र तेरी।
भूली हुई भटकती मतिमंद मेरी॥
अत्यन्त क्लिष्ट तुमको भजना रिझाना।
है योग्य भी न तुम ने भजना खिझाना॥
तू रंच रंच त्रुटि से बस रूठ जाता।
तेरा नितान्त लगता सब झूठ नाता॥
है चित्त मित्र! रहता तुम में हमारा।
लेती रहें हम त्वदीय सदा सहारा॥
आज्ञानुसार चलती हम नित्य तेरी।
तो भी न चाह परवाह तुम्हें न मेरी॥
सेवा सदैव करके हम हार बैठी।
तव चित्त में न हम किन्तु कदापि पैठी॥
पाया परन्तु हमने न त्वदीय मर्म।
जाना गया न तव रंच प्रपंच कर्म॥
लीला नितान्त तव लोल लखी अनोखी।
देखी विचित्र गति रीति त्वदीय चोखी॥
तू ने कहा कुछ कभी करणीय कार्य।
बोला पुनः कि यह है न कदापि धार्य॥
अक्षम्य है नित तुम्हें मम रंच दोष।
हैं धन्य भाग्य यदि आप न हों सरोष॥

सेवा समस्त कर कौन सका तुम्हारी।
जानी गई न कुछ भी तव नीति न्यारी॥

—पार्वती देवी शुक्ल, प्रयाग

१४

उनके प्रति

विरह विधुरा के हो तुम प्राण, तुम्हीं हो मञ्जुलता की खान।
दीन-दुखियों के हो तुम त्राण, दुष्ट जन का हरते अभिमान॥
पुष्प की सुरभित स्निग्ध सुगन्ध, तुम्हीं हो कलियों की मृदु हास।
तुम्ही मधुकर बन होकर अन्ध, कराते हो अपना उपहास॥
मनोहर उपवन में हो मौन, विहँसते हो तुम प्रातःकाल।
गले में निर्मल मंजुल दिव्य, चमकती है मुक्ता की माल॥
नदी की नव उज्वल जल-धार, तुम्हीं हो लोल लहर के बीच।
गरजते बादल बन साकार, तप्त भूतल को देते सींच॥
तुम्ही करते हो हास्य विनोद, तुम्ही करते सबका उपहास।
तुम्ही ले करके सबको गोद, खेलाते गाते देते आस॥
हमारी नैया है मँझधार, तुम्हीं हो इसके खेवनहार।
उबारो इसको पार उतार, तुम्हीं पर है सब दारमदार॥

—विमला देवी शुक्ल, प्रयाग

१५

उससे

आह! बजाकर तार ताल से हे मेरे व्यापक छवि मान!
इस अनन्त पथ पर भी आकर छेड़ दिया क्यों मादक गान॥

कुचले हुये कलेजे पर बढ़ता जाता आँसू का भार।
उभर उभर उठता है अन्तर में जीवन का भीषण ज्वार॥
विश्व-मोहिनी मदिरा बहती है उमंग की लहरों में।
हृदय खिंचा जाता है पागल बन तेरी छवि गहरी में॥

—रामप्यारी श्रीवास्तव, बनारस राज्य

१६

प्रश्न

सान्ध्य गगन की ललित लालिमा, विहग वृन्द का कलरव नाद।
शीत मन्द शुचि मलय प्रभंजन, किसकी अहो दिलाते याद॥
बाल सूर्य्य की किरण राशियाँ, उषा सुन्दरी का वर वेष।
चपल सरित का अविरल भाषण, देते क्या अतीत सन्देश॥
नीरव अस्फुट गीत निशा का, सुप्त विश्व की मुद्रा मौन।
मृदु मुसकाना चंद्र देव का, कहता क्या है होकर मौन॥
व्यथित हृदयतंत्री झंकृत कर, कौन अहो गाता है गान।
किस अतीत की याद दिलाकर, बेसुध कर देता अनजान॥

—पुरुषार्थवती आर्य्य, श्रीनगर

१७

उद्गार

नारियों से नेह होता सुखद स्वगेह होता,
ध्येय होता अपना समाज के सुधार का।

व्यर्थ के ढकोसलों को देते जो ढकेल कहीं,
मिला नहीं देखने को रूप में बिगार का ॥
व्यर्थ धन धाम होता देश भी मुदाम होता,
दुनिया में नाम होता जीवन के सार का ।
बुद्धि की प्रतिष्ठा होती न्याय-नीति-निष्ठा होती,
पड़ता न भोगने को भोग बुरी हार का ॥
सीखो मान करना समान अधिकार साथ,
आदर उचित देना सीखो सीख गुन की ।
देता जन्म जग में जो मनुज समाज का यों,
करता है सृष्टि वही अबला-सुमन की ॥
कान देता सुनने को देखने को आँख देता,
आनन समान देता बुद्धि मुनि गन की ।
सरल सनेह होता विमल विवेक होता,
समता का ध्येय ममता भो मातृ-मन की ॥

—लीलावती देवी, लखनऊ

१८

निश्वास

जाती है तू अनिल साथ तू अरी आह से भरी उसास ।
लेती जा तू यह दो आंसू मेरे भी प्रियतम के पास ॥
जाकर उनकी उपल मूर्ति को तनिक इन्हीं से देना सींच ।

धीमी धीमी थपकी देकर फिर उनका मन लेना खींच ॥
मेरे चितानल का चाहे तनिक ताप बरसा देना।
नीरस मानस में मम दुख का करुणा-रस सरसा देना ॥
किन्तु न उन्हें जलाना जाकर संतापों के तापों से।
चाहे कंपित कर देना तन मन उनके परितापों से ॥
वाह्य दशा अवलोक तनिक मानस में भी उनके जाना।
जो कुछ भाव वहाँ लहराते हों उनसे कुछ ले आना ॥
बैठ अकेली काटा करती रो रो कर दिन रातों को।
यह कह, सुनना पैठ हृदय में उनके मन की बातों को ॥
फिर तू उनकी ठंडी सांसों से शीतल होकर आ कर।
शीतल कर मम मन में रखना उनका पछतावा लाकर ॥

—सहोद्रा देवी मिश्र, फरुखाबाद

१९

लालसा-हीन

बनाया है संचित कर साध, अनोखा सपने का संसार।
मिटा मत देना कहीं अगाध, इधर मत ला ला जीवन-ज्वार ॥
हमारा पथ है सूना पड़ा, वनों में अमृत कनों का काम।
नहीं है कर लो दिल को कड़ा, कलेजे का मत लेना नाम ॥
विसुध हूँ जाने दो निज राह, न कर पाऊँगी अपना अंत।
कौन करता उसका निर्वाह, गूँजते जिससे आज दिगन्त ॥

बहुत दुखिया हूँ हे भगवान, हमें मत दो अब जीवन-दान।
स्वप्नमय ही रहने दो प्राण, यही है मेरी प्रिय निर्वाण॥

—कुमारी कमला जी, काशी

२०

विजयादशमी

आई है यह आज आर्य्य तिथि विजयादशमी।
किन्तु हो रही राम! आर्य भावों की भस्मी॥
लंक-विजय का यदपि सुभग संदेश सुनाती।
वीर वर्ग के हृदय उदय उत्साह कराती॥
राघव ने इस दिवस दुष्ट दानव दल जीता।
मुनी जनों का पंथ किया विघ्नों से रीता॥
जननि जाति की सत्य धर्म्म की रक्षा की थी।
गो द्विज के हित प्रबल प्रचण्ड प्रतिज्ञा ली थी॥
केवट शवरी आदि अछूतों को अपनाया।
बन के वानर ऋक्ष जाति को मित्र बनाया॥
आर्य्य-सभ्यता विजित विदेशों में फैलाई।
भ्रातृ-प्रेम पितु भक्ति जगज्जन को सिखलाई॥
आर्य्य देवियाँ आज अरक्षित दिखलाती हैं।
पग पग पर वे रोज प्रचुर पीड़ा पाती हैं॥
शस्य हो रहा नष्ट सुरभि जीवन खोती हैं।
अमित आर्य्य संतान काल-कवलित होती हैं॥

हम अछूतपन आज स्वधर्मी को देते हैं।
मनुजोचित अधिकार छीन उनसे लेते हैं॥
राजनीति की नटी मोहिनी नाच नचाती।
हिन्दू मुस्लिम भेद भाव का रंग जमाती॥
है अब लीला राम हमारे लिए तमाशा।
इसीलिए है बनी आज उद्धार निराशा॥
नाचें कूदें खूब ढोल अरु ढफ्फ बजाते।
हैं यह सारे स्वांग हमें बस भीरु बनाते॥
घिरी सिंधु के पार सोय स्वातन्त्रय हमारी।
देश-द्रोह दशकंध वधे बिन छुटना भारी॥
आओ प्यारे राम शीघ्र दुख-द्वन्द नसाओ।
पराधीनता मिटा हिन्द स्वच्छन्द बनाओ॥

—अम्बा देवी, सरस्वती इन्दौर

२१

करुणा-कर

सो कर कबहुँ फिरहिं सिर मेरे।
जेहि कर की शीतल छाया में, पावहिं सुख अति दीन घनेरे॥
जेहि कर सों शिव को धनु तोरयो, जेहि कर सों सिय पाणि धरे रे।
जेहि कर-कमल उठाय गीध कहँ, प्रेम सहित तन रज पोंछे रे॥
जेहि कर मारुतनन्दन जीवन, जो कर वालि-तनय सिर फेरे।
जेहि कर शर सों तजि शरीर निज, करहिं असुर सुरपति-पुर डेरे।

जेहि कर कूबरि सीधो कीन्हों, जेहि कर गोप बचाय लिये रे।
जेहि कर जगत विचित्र बनायो, जेहि कर प्रभु सुर काज किये रे॥
सोइ कर श्याम धरहिं 'श्यामा' सिर तबहुँ कि भव सन्ताप हिये रे।
जेहि कर बिषधर कालिहि नाथ्यो, जेहि कर अम्बर फेर दिये रे॥

—श्यामबाला देवी, कानपुर

२२

भ्रमर-गीत

प्रश्न

भ्रमर! तू क्यों होता प्रेमान्ध?
जग में प्रेमी दुख पाते हैं, नहीं ज्ञात मकरंद?
इससे कहती हूँ मत आना, कभी हमारे फंद।
माना, कमल परम कोमल है, उज्ज्वल है ज्यों चन्द,
पर आखिर वह पंकज ही है, तू रसिकों का इन्द्र।
नाच नाच कर उसके ऊपर, क्यों गाता नित छंद?
नहीं जानता, संध्या होते, होगा खिलना बंद?
रह तू मुझ से दूर सदा ही, सुन ले ऐ मतिमंद॥

उत्तर

भ्रमर है नहीं किसी के फंद।
कोमल कमल परम उज्वल है, नहीं भ्रमर है अन्ध।
उसकी ही खुशबू भाती है, उसकी ही दुर्गन्ध॥

शशि का डर कुछ रहा नहीं है, निर्भय है मकरंद।
हाँ, वह नित गावेगा उस पर प्रेम सने कुछ छंद॥
विपदायें आती हैं आवें—वे भी हैं स्वच्छन्द।
अगर उसे रस के लेने में, होगा अधिक विलंब॥
तो उसको परवाह नहीं है, हो जाने दो वन्द।
मधुप कमल की परिक्रमा में लेगा अति आनन्द॥
भ्रमरा इसमें न्याय निरखता—हो चकोर का चंद।
भोले कमल! सत्य कहना तुम क्या वह है मतिमंद?

—सरला देवी, भिंड, ग्वालियर

२३

कली से—

कली, तेरी यह सुन्दर काँति, दीखती कोमलता का रूप।
भ्रांति की है प्रतिमा साकार, प्रवञ्चकता की केलि अनूप॥
किन्तु प्रेमी की अविरल टेक, मिलन आशा का सुन्दर राग।
त्यागमय फिर नैसर्गिक गान, राग में राग-हीन अनुराग॥
हृदय की विह्वलता में लीन, निराशा के तम में आवृत्त।
प्रणय में वीतराग संगीत, गीत गाता हो कर उद्भ्रान्त॥
देख तेरा पट हृदय-विदीर्ण, दया के भावों में संलग्न।
प्रणय-पथ में होकर आरूढ़, निछावर हो जाता हो मौन॥
शीत में अग्नि-शिखा को देख, तुम्हारे नेह भंग की बात।
जान, करता है हाहाकार, कृष्ण उसका हो जाता गात॥

किन्तु आशा की किंचित क्षीण, रश्मि का पाकर भी आभास।
चूमता है चरणों की रेणु, मधुप करता मधु में विश्वास॥
मान उसको रमणी का मान, 'मान' पर खो देता निज ताप।
पोंछता है नयनों का नीर, सुनाता है अपना संताप॥
प्रणय में प्रेम-नेम का भाव, भाव ही है जीवन का सार।
भाव में भाव-हीनता देख, मधुप भावुक करता गुंजार॥
तुम्हारी निष्ठुरता पर साँस, छोड़ता है ज्वाला का स्रोत।
इसीसे तो तव निष्ठुर गात, अग्नि से होता ओतप्रोत॥
रूप का वह सारा अभिमान, तरुण-यौवन का उन्मद वेष।
सरसता सौरभ का सुविकास, नहीं रहता कुछ भी अवशेष॥
प्रिया का यह मुरझाना देख, देख उसके जीवन का अन्त।
वहाता है नयनों का नीर, नीर में गाकर राग अनन्त॥
कभी पुष्पों के जाकर पास, कभी लतिका के सुन्दर देश।
प्रेम का गाता है वह गान, प्रणय का ही देता सन्देश॥
प्रेम जीवन का है उत्सर्ग, प्रेम ही है जग का सुविधान।
प्रेम है अखिल विश्व का तत्व, प्रेम ही में मिलते भगवान॥
प्रेम-रस का कर सुन्दर पान, कली का छुट जाता अभिमान।
लताएँ हो जातीं नवनीत, हाय! नारी का 'चञ्चल-मान'॥
नहीं करता है वह दृगपात, नहीं करता कलियों से प्रेम।
प्रिया की निष्ठुरता कर याद, निभाता है प्रेमी का नेम॥
लताओं की कलियों के पास, और रोदन करता है नित्य।

सुनाता है करके गुञ्जार, 'रूप का ही है रूप अनित्य ॥'
सींचता है वह चिर-इतिहास, याचता है नहिं सौरभ-दान।
अन्य रमणी से करना प्रेम, प्रेम का करना है अपमान ॥
मधुप प्रेमी का सत्य-स्नेह, निठुर कलियों का निष्ठुर मान।
देख रोएगा यह संसार, 'मान पर हो जाना बलिदान' ॥

—महादेवी शर्मा, लाहौर

२४

अन्योक्ति

एरे मलिन्द मन! तू किस रंग में रँगा है।
संसार घोर बन में, दुख दैत्य के भवन में,
मकरंद-मोद ढूँढ़े, हा मोह ने ठगा है।
सुख शांति को स्वजन में, ज्यों फूल को गगन में,
पाने की हर समय तू, उद्योग में लगा है।
ये मालती चमेली, आपत्ति की सहेली,
सर्वस्व दे उन्हें तू, नव नेह में पगा है।
जो कल कली खिली थी, आमोद से मिली थी,
वे अब नहीं दिखातीं, फिर भी न तू जगा है।
जिस फूल पर निछावर, करता है प्राण भी वर,
हा मूढ़ वह सदा ही, देता तुझे दग़ा है।
बहु वेदना सही है, जाती न जो कही है,
मिथ्या सुरस का लोभी, अब भी नहीं भगा है।

कुंजन निकुंज आवे, प्रभु प्रेम गीत गावे,
'बाला' हरी चरन बिन, कोई नहीं सगा है।

—सत्यबाला देवी

२५

आशा

पीड़ा का मूक रुदन बनकर दुष्टा का रक्त बहाएगा।
निर्धन प्राणों का आह पुंज भूतल पर क्रान्ति मचाएगा॥
अत्याचारों का प्रबल वेग अबलाओं के आँसू कराल।
आरत भारत पर एक बार विद्युत सा बल चमकाएगा॥
देशानुराग का पागलपन रग रग में फड़का कर फड़कन।
बलिवेदी पर बलि दे जीवन भारत स्वाधीन बनाएगा॥

—रामेश्वरी देवी गोयल बी० ए०

२६

नवयुवकों के प्रति

अपमानित हो ठोकर खाते सदियों से सोये पड़े हुए।
प्राचीन सभ्यता सदाचार वैभव सब खोये पड़े हुए॥
इस पराधीन अरु मृत-प्राय जर्जर समाज की साँस तुम्हीं।
दुखिया माँ की अभिलाष तुम्ही इन तीस कोटि की आस तुम्हीं॥
हो जाओ बलिदान देश पर कायरता का नाम न लो।
परताप शिवाजी के वंशज मत पीछे हटना बढ़े चलो॥

नवयुवक मिश्र टर्की के तो आदर्श तुम्हारे कल के हैं।
श्री बोस जवाहिर से नेता भी आज तुम्हारे दल के हैं॥
चरखा चलवा दो घर घर में अब मैंचेस्टर से काम न लो।
खद्दर से ढक दो भारत को साटन मखमल का नाम न लो॥
कटिबद्ध समर में डट जाओ लख बाधाओं को नहीं टलो।
कर दो स्वतन्त्र फिर भारत को साटन मखमल का नाम न लो॥

—'चकोरी' उन्नाव

२७

कृष्णाष्टमी

हो रहा था वर्षा का राज्य, जगत था निद्रा के आधीन।
जागते थे बन्दी वसुदेव, देवकी हो चिंता में लीन॥
अँधेरे थे दोनों के हृदय, अँधेरा था वह कारागार।
अष्टमी तिथि भादों की रात, विचरता अंधकार साकार॥
बरसता था रिमझिम कर नीर, नयन भी बरसाते थे नीर।
सोचते हुए दुखद परिणाम, हृदय हो जाता व्यथित अधीर॥
गगन में क्षण भर को चंचला, चमक जाती थी तम को रोक।
हृदय में पल भर को आनन्द, दिखाता था आशा आलोक॥
किन्तु यह कैसी अद्भुत ज्योति, जगमगा उठा वही स्थान।
प्रकट थे वज्रपाणि भगवान, भक्त का स्वीकृत कर आह्वान॥
हो रहे थे दम्पत्ति निस्तब्ध, युगल कर जोड़ रहे सानंद।

देखते परमानन्द स्वरूप, नेत्र हो गये स्वयं ही बन्द ॥
पधारे एक कंस के हेतु, लिया वन्दी-गृह में अवतार।
आज भारत में अगणित कंस, कर रहे भारी अत्याचार ॥
सुना दो श्रीमुख से फिर आज, कर्ममय गीता का वह ज्ञान।
अर्थ का हम कर रहे अनर्थ, धर्म के तत्वों से अनजान ॥
हृदय में साहस का संचार, करे श्रीकृष्ण तुम्हारी मूर्ति।
तुम्हारा जन्म दिवस यह आज, जगादे जीवन की स्फूर्ति ॥
दया कर सुन लो यही पुकार, वचन देकर मत भूलो नाथ।
तुम्हारी भारत लीला-भूमि, दिखा कर लीला करो सनाथ ॥

—राजकुमारी श्रीवास्तव, जबलपुर

२८

पद्मिनी

देवि ! तुम्हारे गुण गौरव की कीर्ति ध्वजा फहराती है।
उसे देख कर प्रमदा जन भी फूली नहीं समाती हैं ॥
तुमने उस प्रकाश की उज्वल, सुन्दर झलक दिखाई है।
सती-धर्म का पथ दिखला कर, जीवन-ज्योति जगाई है ॥
पूर्व समय में औरों ने भी, कर-कौशल दिखलाया था।
रण-चण्डी सम म्लेच्छ दलों के, छक्के खूब छुड़ाया था ॥
परम अग्रणी बन कर तुम ने, देश जाति उत्थान किया।
अग्नि-समर्पण किया सखी सँग, जीते जी सम्मान किया ॥

शत्रु यवन को लज्जित कर के, अपना यश फैलाया था।
अबला सब कुछ कर सकती है, सत्य तत्व बतलाया था॥
उसी भूमि की ललनायें हा! धर्म-मार्ग को भूल रहीं।
विषय-वासनाओं में लग कर, सुख में निज को भूल रहीं॥
नारी तुम सी क्या भारत में, दर्शन देने आवेंगी।
रमणी दल की डूबी नौका, फिर तट पर पहुँचावेंगी॥
किस अनन्त के पथ पर निर्भय, अम्बे! विचरण करती हो।
स्वर्गदेश-बालाओं में क्या, शक्ति-सुधा को भरती हो॥
तव-कल्पित-प्रतिमा का मैं भी, सादर-स्वागत करती हूँ।
धूप दीप नैवेद्य अदि से, पूजन पुलकित करती हूँ॥
भारत के रमणी मण्डल में, सुन्दर भाव जगा देना।
वीर भाव के सुमधुर रस में, मानस प्रवर पगा देना॥

—कुमारी पद्मावती देवी, टिहरी, गढ़वाल

२९

प्रार्थना

प्रभु आप दीन दयाल करुणा-सिन्धु जग के ईश हैं।
पद-पद्म पै अतएव तव हम सब नवाती शीश हैं॥
अब राग-राक्षस अघ-अघासुर को दयामय मारिये।
दुःख दैन्य पारावार से हे नाथ! पार उतारिये॥

—आशा देवी चौहान, देहरादून

३०

गंगा

पूजि विरंचि के पावन पाँवड़े चीरि के छीरधि को उमहा है।
शंकर शीश कलाधर चूमि विभूति भभूति की भूरि लहा है॥
आनि भगीरथ सोई यहाँ अघ ओघ भयानक काल दहा है।
मोहन गंग कि धार किधौं वसुधा में सुधारस जात बहा है॥

—कमला देवी मिश्र, लखनऊ

३१

मेरा शृंगार

शौक़ मुझको हो कभी यदि हाथ ज़ेवर का प्रभो।
तो भरे उपकार-कंगन से मेरे कर हों विभो!
शीश की वेनो अगर भगवन, मुझे दरकार हो।
शीश तक करदूं निछावर देश का उपकार हो॥
नाथ, क्यों उर के लिए अब ज़ेवरों की चाह हो।
है वहां तू, जोश का तोड़ा भरा उत्साह हो॥
ऐसे गहनों से सखी शृंगार करिये आप भी।
झूठे गहनों से न होंगे दूर मन के ताप भी॥

—प्रेमप्यारी देवी

३२

समाज पर हिन्दू-विधवा

द्रवित हुआ है हे समाज तू, सुन विधवाओं का क्रन्दन।

पर ढीला मत करना अपने, नियमों का कठोर बन्धन ॥
देख, सँभल ! तू मत गिरने दे, भारत के ऊँचे आदर्श ।
जहाँ नहीं आदर्श वहाँ कब—हो सकता सच्चा उत्कर्ष ?
जहाँ नहीं उत्कर्ष वहाँ क्या, मानव-जीवन का उपयोग ?
यों तो श्वापद भी करते हैं, साधारण जीवन का भोग ॥
है जीवन सुख-भोग न वसुधा—तल जीवन के सुख का धाम ।
समर-भूमि है जग कर्म्मों की, मानव का जीवन-संग्राम ॥
होता है प्रत्येक जाति के, जीवन का निश्चित उद्देश ।
तदनुसार धारण करती है, वह अपना व्यवहारिक वेष ॥
उसी लक्ष्य को आगे रख कर, बनते हैं जो रीति-रिवाज ।
पालन करता है श्रद्धा से, उन नियमों का निखिल समाज ॥
यथा समय स्थिति का विचार कर, हो सकते हैं परिवर्तन ।
किन्तु उसी सीमा तक होवें, जहाँ न अन्तिम लक्ष्य-पतन ॥
गिर जाना अपने लक्ष्यों से, है समाज का मर जाना ।
मर जाना निज लक्ष्य प्राप्ति में, है अनन्त जीवन पाना ॥
ज़रा ठिठक कर इसे सोचना, हे अबलाओं के हमदर्द ।
कहीं न पागल कर दें तुमको, विधवाओं की आहें सर्द ?
निरपराध विधवा के आँसू, में हिमगिरि का गल जाना ।
नहीं कठिन है जितना, साध्वी—का स्वधर्म से ढल जाना ॥
इस जीवन को जिसने समझा, हो अपने जीवन का सार ।
जिसकी आँखें देख न पातीं, हों इस जीवन के उस पार ॥

दम्पति जीवन को समझा हो, जिसने तन का भोग विलास।
खोकर इन्द्रिय के सुख सारे, टूट गई हो जिसकी आस॥
जिसे न हो इस चञ्चल मन की, दुष्प्रवृत्तियों पर अधिकार।
अनुभव किया न जिसने संयम, के बल का आनन्द अपार॥
विषय-वासना को ही समझा, जिसने जीवन का सुख-मूल।
समझ न पाई सूक्ष्म चरित का—गौरव जिसकी बुद्धि-स्थूल॥
जिसने कभी न देखा गहरे, अमित प्रेम का पावन रूप।
जिसका कच्चा हृदय न सह सकता वियोग की तीखी धूप॥
जिसका प्रियतम है केवल, वासना-तृप्ति का साधन मात्र।
चिर वियोग में जिसे चाहिये, सदा नवीन प्रणय का पात्र॥
वह क्या जाने विधवाओं के, जीवन का महान गौरव।
जाकर पूछो हिन्दू रमणी से, इसका सच्चा वैभव॥
कैसे भूला जा सकता है, प्रेम किया जो पहली बार।
युगल आत्मा का बन्धन है, प्रेम न बनियों का व्यापार॥
दुख भी सुख है, रुदन हास है, अश्रु विन्दु मुक्ता का हार।
लाख मिलन बलिदान विरह पर, जहाँ हृदय का निर्मल प्यार॥
जिसके कारण पुरुष न भोगा—करते दुसह विरह का क्लेश।
उस विस्मृति का ललनाओं के, सरल हृदय में नहीं प्रवेश?
जो नारी के स्फटिक हृदय पर, पड़ता प्रथम प्रणय का दाग।
मिटा न सकते उसको धोकर, कुटिल काल के कोटि तड़ाग॥
क्षण-भंगुर काया का रमणी, चाहे सौंपे बारम्बार।

एक बार केवल देती है, किन्तु हृदय का वह उपहार ॥
दुख से, सुख से, रोकर गाकर, मर कर, जी कर, किसी प्रकार।
कर सकती है हिन्दू विधवा, अपना निर्मल जीवन पार ॥
उसकी इस तापस-यात्रा में, कर समाज तू लाख सुधार।
चला न अनुचित आयोजन का, उसके हिय पर कठिन कुठार ॥
क्यों उठती है तेरी उंगली, उन दुर्बल बहिनों की ओर।
हुईं पतित जो विधवा होकर, करतीं पापाचार कठोर ॥
मुझे बता कब उन्हें हुआ था, अपनी धर्म-नीति का ज्ञान।
कब जाना था हाय! उन्होंने, नारी का कर्तव्य महान ॥
विधवा हो जाने से पहिले, था उनका कैसा आचार।
सधवा होकर के प्रियतम से, करती थीं कैसा व्यवहार ॥
किस आयू में उन अबला का, करवाया था तूने व्याह।
उनकी शिक्षा-रहन सहन की, तूने कितनी की परवाह ॥
बता किया था उन दुखियाओं, का तूने कितना सन्मान।
रक्खा उनकी पवित्रता का, तूने कितना मन में ध्यान?
रक्खा क्या उनके प्रति, अपनी, मर्य्यादा की तूने आन?
छेड़-छाड़ करने वालों पर, क्या शासन का किया विधान?
क्या इन सबका उत्तरदाता, था न सदा तू पुरुष समाज।
तू प्रधान होकर समाज में, करता आया हम पर राज ॥
पातिव्रत का पाठ पढ़ाया, तुमने किसी समय क्या जान?
करते हो क्यों विधवाओं के, पुनर्व्याह का आज विधान?

करना स्वयं-कर्तव का पालन, बदला करते हो नित नीति।
कहते हो चञ्चल नारी को, पर उसकी यह कभी न रीति॥
पुर्नव्याह की घृणित बात सुन, विधवा को आती है लाज।
घूर घूर कर खो दी सारी, लज्जा तुमने पुरुष-समाज!
कभी न जिसके विषय-वासना, सागर की मिल पाई थाह।
करता जाता आजीवन जो नर—सदा व्याह पर व्याह॥
जिसको लाश चिता पर करती, जाती पुनर्व्याह की चाह।
वह क्या समझे उचित रीति से, विधवा की करुणामय आह!!
दिन दिन गिरते ही जाओगे, ढीला कर समाज-बन्धन।
सीखो और सिखाओ जग को, करना विधिवत् आत्म-दमन॥
हमको पातिव्रत रखने दो, तुम भी पत्नी-व्रत सीखो।
विषय-वासना में निशि-दिन, हे बन्धु न रहना रत सीखो॥
हमको समता दो श्रद्धा के सहित, हृदय से करके प्यार।
हमें न समता दो तुम देकर—अपना सा अनुचित अधिकार॥
स्वयं छोड़ दो जो कुछ हम पर, करते हो तुम अत्याचार।
हमें सिखाओ मत बदले में, करना वैसा ही व्यवहार॥
तुम्हें मुबारक रहे बन्धुवर! करना चाहो जितने व्याह।
हमें न रौरव का दुख सह कर—भी है पुनर्व्याह की चाह॥
हाय बन्धु! विधवा भगिनी की, रक्षा से करते इनकार।
ले सकते हो क्या पति बन कर ही मेरी रक्षा का भार॥

—कृष्णकुमारी बघेल, रींवा

३२

आवाहन

यौवन-निकुञ्ज के पिक मेरे, चितवन के चोर चले आना।
हे अभिलाषा के उषःकाल, निशि का तम-तोम हटा जाना॥
जीवन-सरिता के केवट हे! तुम प्रेम-तरी लेते आना।
हे नेह-गगन के रवि मेरे, नव नेह छटा छिटका जाना॥
कलियों के कुटिल कटाक्षों में मत अलि मेरे बिलमा जाना।
सुख-सुमनों के मधुकर मेरे, मधु मुझको ज़रा पिला जाना॥

—पुखराजिनी बाला 'भली'

३३

आवाहन

तेरे हेतु नाथ मन-मंदिर सजा के नाथ,
प्रेम का पवित्र-दीप स्नेह से जलाया है।
पथ पर तेरे द्वार पांवडे बिछाये फिर,
धोने को चरण नैन-नीर सरसाया है॥
जीवन के बाग़ से चुने हैं पुष्प पूजा-हेतु,
बैठने को देव! हृदयासन बिछाया है।
भक्ति-भाव-भाजन में चारु चाव-चन्दन है,
प्यारे-पद-वंदन में बासर बिताया है॥
मेरे मन-मंदिर के द्वार द्वारकेश खुले,
आओ हृदयासन पै सुख से विराजो नाथ!

पाने को तुम्हारे प्राण आकुल हुए हैं अति,
सुख से समाकुल सनेह साज साजो नाथ !
आतुर हुए हैं देखने को मंजु मूर्ति नैन,
प्यारे प्रेम-बैन-बारि उर उपराजो नाथ !
गुन-गन गाती गिरा सुन अब जाओ उसे,
नीके 'नलिनी' के नेम-नेह से निवाजो नाथ !

—राजराजेश्वरी देवी 'नलिनी'

३४

स्तुति

जय प्रभु सकल क्लेश दुःखहारी।
जय अनन्त लोकेश मुरारी॥
जय श्रीकान्त लोक सुखकारी।
जयति सुरेश जयति असुरारी॥
जय विश्वेश विश्व हितकारी।
विश्व-प्राण विभु विश्व-विहारी॥
जय सुख रूप सर्व सुखदाता।
जय जग ज्योति जयति जग त्राता॥
'ललिता' है प्रभु शरण तुम्हारी।
करो कृपा निज ओर निहारी॥

—ललिता पाठक एम० ए०
(सुपुत्री स्वर्गीय पं० श्रीधर पाठक)

३५

प्रश्नोत्तर

सखि ! तू क्या बनना चाहेगी रमा रुक्मणी या सीता ?
अथवा सावित्री बनकर चाहेगी यम को भी जीता ?
या पति पूजा का दिखलाएगी पथ बन कर गान्धारी ?
या गलियों में खेल करेगी बन करके राधा प्यारी ?
या बन कर उत्तरा अरी तू वीर बधू, कहलाएगी ?
या सुलोचना बन कर अपने तन में आग लगाएगी ?
बता बता जीवन का तूने क्या उद्देश्य बनाया है ?
जग में क्या कर दिखलाने का तुझमें भाव समाया है ?
"अङ्कित है उर में सखि ! सब सीता सावित्री गान्धारी।
इस युग में पर नहीं बनूँगी मैं बीते युग की नारी ॥
अब तो इच्छा है निकलूँ घर से लेकर नंगी तलवार।
देख जिसे इस दबे देश में हो कुछ साहस का संचार ॥

—चंचल कुमारी देवी

३६

कवि

कौन ईश की भक्ति-सुधा का, कविता-स्त्रोत बहावेगा ?
कवि के बिना स्वधर्म प्रेम को, कौन खोल दिखलावेगा ?
कौन देश के मधुर प्रेम को, नर-उर में बैठावेगा ?
कौन बिना कवि के स्वजाति का, सच्चा प्रेम बतावेगा ?

कौन पिता के गुरु-स्नेह को, पुत्रों को समझावेगा ?
कौन जननि का हृदय खोलकर, मातृ-स्नेह दिखलावेगा ?
कौन सहोदर भ्राताओं का, उत्तम प्रेम सुनावेगा ?
कौन परम प्रिय मित्रों का प्रिय पावन प्रेम बतावेगा ?
कौन प्रकृति का बिना सुकवि के, सुन्दर दृश्य दिखावेगा ?
कौन पुराने वर वीरों का, कीर्ति-सुधा बरसावेगा ?
कौन पतिव्रत नारी का पति, प्रेम प्रगाढ़ सुनावेगा ?
कौन सती सीता की हमको, मन में याद दिलावेगा ?
कौन उठाकर युग युग बीती, बातें हमें सुनावेगा ?
कौन मरे दिल में भी फिर, वीरत्व-स्त्रोत बहावेगा ?
कौन जगत को माँज-साफ कर, सच्चा रूप दिखावेगा ?
कौन जगत की नश्वरता का, पूरा पाठ पढ़ावेगा ?
कौन दुर्ग बन नगर आदि को, बहिनों, रुचिर बनावेगा ।
कौन कृपा-सागर की महिमा, हम सबको बतलावेगा ॥
केवल कविगण ही ऐसे हैं, जिनकी कविता से हमको ।
मिलती एक अनोखी शिक्षा, धन है ऐसी कविता को ॥

—चंद्रावली भाटिया, कानपुर

३७

तेरी भूल

तू समझे है, बीत रहा है उनका जीवन सुखमय शांत ।
एक बार ही आकर लख ले हैं वे कितने दुखी अशांत ॥

तू समझे है, उन्हें न आता है बिलकुल ही तेरा ख्याल।
तू ही बतला दे मुझको समझावें कैसे दिल का हाल॥
अच्छा, तूने क्या न किसी को किया कभी तन-मन से प्यार?
तब तू अपने इसी हृदय से ले यह बातें स्वयं विचार॥
अगर नहीं, तो सुन ले मुझसे हाल बता दूँ मैं उनका।
समाचार अति दुखद सुना दूँ उनके तन-मन-जीवन का॥
भोजन में रुचि रह न गई कुछ छूट गया सारा आराम।
वे तो पा एकांत सदा ही रटते रहते तेरा नाम॥
उनके नयनों में तेरी ही फिरती रहती है तस्वीर।
भीतर आग लगी रहती है बाहर से वे हैं गम्भीर॥
चाहे अगर बनाना उनके जीवन को तू सुख का सार।
एक बार, हाँ, एक बार ही कह दे उनको करती प्यार॥

—सरोजिनी देवी

३८

उनके प्रति

'उनके' ही चरणों में रहकर 'उनकी' ही कहलाऊँगी।
'उनके' प्रति जो प्रेम-भाव है, उसको मैं दरसाऊँगी॥
'उनके' पूजन की भी विधि मैं अपने आप बनाऊँगी।
अपनी कल हृत्तंत्री के मैं तारों को झनकाऊँगी॥
अपने ही मन-मानस से मैं प्रेम-सलिल भर लाऊँगी।
गंगा-यमुना-नीर बिना ही अर्घ्य अमोल सजाऊँगी॥

हृदय-कुंज के सुन्दर सुरभित भाव-कुसुम चुन लाऊँगी।
बड़े प्रेम से 'उन्हें' चढ़ाकर अपना प्रेम निभाऊँगी॥
द्रव्य-भेंट के बदले तो मैं स्वयं भेंट चढ़ जाऊँगी।
इसी तरह की पूजा करके 'उनका' मान बढ़ाऊँगी॥
अपने निर्मल मानस का मैं 'उनको' हंस बनाऊँगी।
भाँति-भाँति के कौतुक करके 'उनका' चित्त चुराऊँगी॥
उनके ही दरवाज़े अब मैं भीख माँगने जाऊँगी।
सम्मुख जाकर उच्च स्वर से प्रेम-पुकार लगाऊँगी॥
प्रेम-अश्रु-मुक्ताओं का मैं सुन्दर हार बनाऊँगी।
भक्ति-भाव से, सरल स्नेह से 'उनको' ही पहनाऊँगी॥

—तारादेवी पांडेय, अल्मोड़ा

३९

स्वागत

अभी हुआ था राज-तिलक बन गये अभी तुम सन्यासी।
फेंक राजसी ठाठ हुये स्वेच्छा से बन्दीगृह वासी॥
सो न सके गद्दों पर सुन कर भारत माँ का हाहाकार।
रह न सके सुख से महलों में सुन कर उसकी करुण पुकार॥
आँखें रखते हुये सके तुम देख न उसकी बरबादी।
छिनी देख कर रह न सके उसकी सदियों की आज़ादी॥
उसके लिये अतः तुमने जीवन का सारा सुख छोड़ा।
सौंप दिया तन, मन, धन—तन, मन, धन से अपना मुख मोड़ा॥

महलों का आनन्द प्राण से भी प्यारी पत्नी का प्यार।
वृद्ध पिता माता की सेवा सरसिज दल सा शिशु सुकुमार॥
उसकी बलि-वेदी की मादकता पर अपना सब कुछ वार।
हिंसा की भीषण ज्वाला का किया अहिंसा से प्रतिकार॥
सत्याग्रह का शस्त्र हाथ में ले कर निकल पड़े तुम वीर।
सहम गये अत्याचारी गण देख तुम्हारी छवि गम्भीर॥
ठुकरा कर निज राजमुकुट बन गये विश्व-आदर्श फ़क़ीर।
बन्धन में रख सकी न तुमको परवशता की दृढ़ जंजीर॥
तुम्हें देख हथकड़ियों की दृढ़ कड़ियाँ भी कड़ कड़ टूटीं।
तुम्हें देख पाशविक शक्ति की मदमाती आँखें फूटीं॥
तुम्हें देख नौकरशाही का भी शाही आतङ्क मिटा।
तुम्हें देख भारत माँ के अंचल का पङ्क-कलङ्क मिटा॥
चमक उठा फिर तुम्हें प्राप्त कर देव! तुम्हारा हिन्दुस्तान।
रे निष्ठुर! मनमाना ले तू अब जितना चाहे बलिदान॥
हृदय तुम्हारा स्वागत कर हो गया तृप्त संतुष्ट महान।
शत शत जिह्वाओं से गाता देव! तुम्हारा स्वागत-गान॥
क्यों न पलक-पाँवड़े बिछावें हम सब तव स्वागत में आज?
पिछड़े कैसे रहें प्राप्त कर पूज्य जवाहर सा सरताज?
श्रद्धा के प्रिय पुष्प प्रेम के अश्रु, भक्ति चर्चित चन्दन।
ले कर आई हैं करने को देव! तुम्हारा अभिनन्दन॥

—विद्यावती देवी 'कोकिला' प्रयाग

४०

प्रेमाधिकार

देकर दर्शन चाहे प्रियवर, तुम हमको कृतकृत्य करो।
अथवा रहकर दूर-दूर ही नित्य हृदय को व्यथित करो॥
इच्छा हो, तो जी भरकर तुम नित मेरा अपमान करो।
अथवा होकर सदय, प्रेममय प्रकट मधुर मुसकान करो॥
दुख देने में सुखी रहो यदि, तो तुम नित नव दुख देना।
किन्तु न स्वत्व हमारा तुम यह हमसे कभी छीन लेना॥
होगा म्लान नहीं मुख मेरा, चाहे जो व्यवहार रहे।
रक्खूँगी मैं मन-मंदिर में, पूजा का अधिकार रहे॥

—लीलावती 'सत्य', अल्मोड़ा



परिशिष्ट

कठिन शब्दों का अर्थ

मीराबाई

मनुआँ=मन । सुण=सुन । कूँ=को । भीजै=सराबोर । आवड़े=आते हो । जीवण=जीवन । गमायो=बिताया । भूरतां=उपवास । नैण=आँख । ऊबी=ऊब गई । चित चोरी=हृदय को चुराने वाले । छूँ=हूँ । भव=संसार । सोग=शोक । निवार=दूर करो । तलब=इच्छा । अष्ट करम=आठ काम । आवागमन=मरना और उत्पन्न होना । म्हाँरो=हमारा । थाँने=उनको । देख्यो=देखने से । कुलरा=कुटुम्ब । हरामी=दुष्ट । मद-मातो=मतवाला । दस्त=हाथ । आँकुस=अंकुश । भारत=महाभारत की लड़ाई । म्हाँने=मुझे । थाँरे=तुम्हारे । घणो=घना । उमावो=उत्साह । वाटड़ियाँ=मार्ग, रास्ता । आँखड़ियाँ=आखें । फाँसड़ियाँ=फंदा । दास-ड़ियाँ=दासी । साँसड़ियाँ=साँस । खेवटियाँ=खेने वाला । अधर=ओठ । राजित=शोभा देतो है । कटितल=कमर में । नूपुर=बिछुआ । रसाल=सुन्दर । बछल=वत्सल । छोई=मट्ठा । अमर अँचाय=अमर करने वाला अमृत । बिरछ=वृक्ष । सुरत=स्मरण । फांसुरी=फंदा । जेतइ=जितना । तेतइ=उतना । करवट काशी=काशी में एक देवस्थान । चहर=शतरंज । भगवा=लँगोटी लगाना । छो=हैं । वगसण=गुणी । नेहड़ी=प्रेम । विसवास=विश्वास । सँमुद=समुद्र । सपेद=सफ़ेद । पाना=पान । लांघन=

उपवास। करक=पीड़ा। दाधी=गली हुई। छीजिया=नष्ट हो गया। साँम्हले=सँभाले। खिन=क्षण में। विथा=व्यथा। वारिज=कमल। लकुट=लकड़ी। दूखन=दुखने लगा। ऐन=घर। त्रिविध-ज्वाला-हरन=तीन तरह के तापों को नष्ट करने वाला। उद्धरन=उद्धार करने वाला। गौतम-घरन=अहिल्या। चंग=खंजड़ी। करतारी=हाथ की ताली। 'ण' का प्रयोग मीराबाई ने अधिक किया है। राजपूताने 'न' को 'ण' बोला जाता है।

ताज

दस्त=हाथ। गुनन=गुणों को। निदाग=बिना दाग। ताणी=तुम्हारी। सेत=सफ़ेद। सरोजन=कमलों की। परयंक=शय्या। सुदीपक=प्रकाशयुक्त दीपक।

खगनिया

बिआहे=व्याह में। गहै=पकड़े। माँ=में। तें=से। क्यार=की। पुहुप=पुष्पों। बीहड़=भयंकर। जंगी=लड़ाई वाली। रकत=खून। स्वावत=सोते हैं। वाते=उससे। ऊजर=उज्वल। दुइनौ=दोनों।

शेख

कजरारे=कजरारी आंखें। कोरनि=किनारे। जिउ=जी। वारिये=समाप्त होना। गरिहाइनु=गाली देने वाले। चाहिली=बुलबुल। सावन किये है नैन=आँसू गिरते हैं। आली=सखी। विधु=चन्द्रमा। दीपति=दीप्ति। चँदोआ=शामयाना। लीक=निशानी। जुगुति=युक्ति। तिमिर=अँधेरा। हँकार=हुँकार। ऊक=राख, नष्ट। अवली=झुंड। मधुकर=भौंरा। छाक=

धोका देना। चंचरीकन=भौंरे। चौंप=झुंड। वसाति=वश। मीसी=मुरझाना। दिगम्बर=नंगे।

छत्रकुँवरि बाई

दिसि=ओर। मधुरी=मीठी। विरियाँ=समय। लाह=लाभ। अपनपौ=अपनापन। उरन=छिपना। छकछाप=पूरी तरह से। साभिल=शामिल। अबारी=देर।

प्रवीणराय

सीतल=शीतल। घनसार=सुगंधित चीज़ें। अमल=स्वच्छ। आछे=अच्छी तरह। प्रतिपारि=पूरा करूँगी। कोक=चकवा। कलधौत=उज्वल। हेम=सोना। उरग=सांप। इंदु=चंद्रमा। कुरकुट=मुर्ग़ा। सारँग=मोर। खरी=खड़ी। छीनी=कमज़ोर। नकारा=नगारा। परदार=दूसरे की स्त्री। वपु=शरीर। रत्नाकर=समुद्र। हिरनाक्ष दैयत=हिरणाक्ष राक्षस। छुड़ाई के=छुड़ाकर। वरिबंड=राजा। सगोत=सगोत्र में। वसाति=वश। विसासिनी=विश्वास देने वाली। कपोलन=गालों। कातर=दुखी। सैन=इशारा।

दयाबाई

जस=यश। लीले=निगलती है। डरयो=छिपा। नासा=नाक। सञ्च=सच्चा। हलकाओ=दुख देते हो। अटपटो=कठिन। मतो=राय, बुद्धि। निकसत=निकलता है। विकार=बुराई। मनिका=माला। धमकि=जल्दी से। सुरति=स्मरण। नटिनी=नट की स्त्री। तम=अँधेरा।

घट=हृदय में। जग-विवर्त=संसार के खोह में। निराकार=बिना आकार का। अज=अजन्मा। अविनास=नाश न होनेवाला।

कविरानी

अरधंग=आधे अंग में रहनेवाली स्त्री। सिरजा=रचा हुआ। फरमाय हैं=कहेंगे। अवसि=अवश्य।

रसिक बिहारी

रतनारी=तीन रंगवाली। आँखड़ियाँ=आँखें। पाँखड़ियाँ=पंखडियाँ। मांखड़ियाँ=मक्खियाँ। झालो=प्रेम मत्त। मरी छौं=मरती हूँ। नणद=ननद। हरिया=हरे भरे। तरवर=पेड़। सरवर=तालाब। आभा=चमक। जलधर=बादल। रली=मधुर। उलहत=उमगित होता है। बाल=स्त्री। रति=कामदेव की स्त्री। विधना=ब्रह्मा, विधाता। सौंहे=कसम, सौगन्ध। उफनात=दिखाई देती है। अनंग=कामदेव। रसमसे=रस में सने हुए। कालै=कल। चाँचर=खेल। आइयौ=आई हैं। भाइयौ=अच्छी लगती हैं।

ब्रजदासी

सनकादि=सौनक आदि मुनि। नार्द=नारद। सूत=एक संत का नाम। सोनक=सुनने वाले। छिति=पृथ्वी। सपेखे=समझ ले। जगमौर=ईश्वर। बड्डे=बड़े। निहकाम=निष्काम।

साईं

दुहुन=दोनों। पौरिया=दरवान। तरह दिये=बैर न करने से, चुप रह जाने से। बस=चाहे। पंक=कोचड़। नरद=जड़। विघाय=दया-युक्त

होकर। अनाड़ी=मूर्ख। बिनवै=प्रार्थना। जमी=ज़मीन। सुमुद=समुद्र। तातो=नाराज, गर्म। सियरे=शांत, शीतल। महत=महत्व। मछ=मछली। आक=मदार। सरवर=तालाब। खाविन्द=स्वामी। खालक=दुनिया का मालिक। खिलकत=दुनिया। फ़ना=नाश होने वाली। बाँग=पुकाराना।

प्रतापकुँवरि बाई

दुन्दर=दुख। भे=हुए। जाण=नगर का नाम। उछाह=उत्साह। अनत=अधिक। तुरंग=घोड़ा। पधराई=स्थान दिया। असन=भोजन। बसन=कपड़ा। भीतिन=दीवालों। नौबत=बाजा बजना। बिंजन=व्यंजन। कौवेर=कुवेर। निरत=लगे हुए। दोय=दो। विद्रुम=हीरा, मोती। चमर=चँवर। सोपान=सीढ़ी। गुणातीत=अधिक गुण। कायापुर=शरीर के पुर में। डंडोत=नमस्कार। ओछी=नीच। बीसर=भुलाना। तणी=तनी हुई। सुरत=स्मरण। अनहद=भक्ति के रँग में लीन होना।

सहजोबाई

भुगतन्त=भुगतना है। आय=तेज। थोथे=खोखले। तिमिर=अँधेरा। निस्चै=निश्चय। धारणा=इच्छा। कोटों=करोड़ों। मध्ये=बीच में। जठर=वृद्धावस्था। भिष्टल=विष्टा, मैला। धिरग=धिक्कार। नखसिख=नख से शिर तक। सुलछन=अच्छा लक्षण। हथधक=पशोपेश में। अजपा=हृदय में स्मरण करना। सूं=सू। अष्टादस=अठारह पुराण-चार वेद। पट=छः शास्त्र। सिलगता=जलता है। साजन=सज्जन।

मध=बीच में। सैन=इशारा। सिप=शिक्षा। आपा=अपनापन। कूं=को। धूत धूत=ठग ठग कर। निहचै=निश्चय। मधि=में।

सुन्दर कुँवरिबाई

सहचरि=दासी। निहीरन=जलाहना। चंदानन=चन्द्रमुख। विहारो=आनंद करो। उतै=उधर। तलप=माला। दुचिन्त=बेचैन। वारी=निछावर। अलक=बाल। त्रिभंगताई=त्रिभंगी। मैन सर पानी=कामदेव के बाणों से घायल। गिरिबान=गरेबान। चुहुल=खेल। फाबै=सुन्दर जान पड़ती है। मृगया=शिकार। महर=स्त्री। लोने=सुन्दर। कचकच=छोटे छोटे। अघ=पाप। उफनात=प्रगट होते हैं। अक्त=पुण्य। नेवाज=रक्षा करनेवाले। उपचार=दवा। अयान=अज्ञान। बरसान=बरसाना। बिलसत=शोभा देना। किंकिरि=सेविका। किन=ज्यों। उदेग=उद्वेग, दुःख। सुदाम=बिजली। छत्रेत=छत्र, मुकुट। साँवत=सामंत। गूह=समूह। धरधरी=जल्दबाजी। अलका=इन्द्रपुरी। रज=धूलि।

बिरंजी कुँवरि

द्वीखित=नाम है। जुक्त=युक्त। सोभिजे=शोभित होता है। कमलनाभि=ब्रह्मा। पूनव=पूर्णिमा। वर्त=व्रत। छूछा=कुछ नहीं। होगू=होना चाहिए।

रत्न कुँवरि बीबी

घनेरे=अच्छी तरह। पुरवत=पूरा करते हैं। अजामील=अजामिल। थाप्यो=स्थापित किया। अग=समस्त। सौंज=सामान। करिवर=सिंह।

वसह=बैल। अमित=अधिक। कटकहि=झुंड। छुरियन=घड़ी से। छपन=छप्पन। अँकवार=भेंटना। झुरावत=सूखते हैं। पयोनिधि=समुद्र।

प्रतापवाला

वारी=निछावर होना। थारा=तुम्हारे। मुखड़ारी=मुख पर। कोटिक=करोड़ों। काम=कामदेव। लजान=लज्जित होता है। दाड़िम=अनार। भक्त-बछल=भक्तवत्सल।

वाघेली विष्णु प्रतापकुँवरि

फेर=फिर। छलकै=छल करने के लिए। कूं=को। हुलस=प्रसन्न होकर। विहवल=विह्वल, प्रसन्न। मुदाम=प्रसन्न। गर्वीली=गर्ववाली। सुभग=सुन्दर। दया-दीठि=दया-दृष्टि। चख-पूतरी=आँख की पुतली।

रत्नकुँवरि बाई

ढिग=पास। साम=शाम। म्हाँरा=मुझ को। नैकूं=ज़रा सा। आगारो=घर। थारी=तुम्हारी। छूँ=हूँ। दिलदाड़ी=प्रेम की। बिछुड़ण=अलग होने की बात। चरणारी=पैरों के। महर=कृपा।

चन्द्रकला बाई

स्पंदन=रथ। रानी=झुंड। सायुध=हथियार। आसिन=तलवारें। धुरवा=बादल। सुकेशी=एक नायिका नाम है। रुमालची=रुमाल लेनेवाली। तिलोत्तमा=एक नायिका का नाम है। रति=कामदेव की स्त्री। रती=ज़रा सा। लाल=एक हीरा। सुरप=इन्द्र। थित=स्थित। कदन=सुखाने

वाली। द्विकल=दूज का चाँद। बच=बचन। आपति=दुःख। दीठि=दृष्टि।

जुगलप्रिया

अलि=भौंरा। पिक=कोयल। कीर=तोता। सौं=सौगन्ध। ढाढ़िन=मंगल गाने वाली। मनसा=हृदय की। करन=पूरा करने वाला। अनपाथिनी=पवित्र, न पाने वाली। लूम=दुम। कैंधौं=या तो। स्याँती=स्वाती। क्षपित=सुन्दर। दुरी=छिपी। मधुरी=मल की। वपु=शरीर। नतरु=नहीं तो। अनुचरनी=पीछे चलने वाली। सुरसरि=गंगा। रति=प्रेम। भाजै=भाग जाते हैं। छारा=राख। गिरिवर=गोबर्द्धन। माध्वमत=माधवाचार्य्य का मत। फबी=शोभा देती हैं। क्रीडन=खेलना। तरुवन=ऐंडी।

रामप्रिया

गही री=पकड़ लिया। ग्राह=मगर। राजिव लोचनम्=कमल के समान आंख वाले। त्रैताप-खंडन=तीनों ताप के नष्ट करने वाले। अविनाशी=जिनका नाश न हो। मोत्तदा=मोत्त देने वाले। अरिगंजनम्=दुश्मन को मारने वाले। विदारक=नष्ट करने वाले। कृपाकरम्=कृपा करने वाले। दिनमणि=सूर्य्य। अरविन्द=कमल। धमार=एक राग। पंचवाण=कामदेव। इल्तिजा=प्रार्थना।

गिरिराज कुँवरि

ड़िठोना=कज्जल का टीका। कुटुम=कुटुम्ब। योप=मुझे। सगरी=सारी। निन्दरा=निंदा।

रघुवंश कुमारी

तोय=पानी। हेम=सोना। राती=प्रेमिका। केलि=खेल। सुरधाम=स्वर्ग। करक=दुख। बिरिया=समय। समुद=समुद्र। रद=दांत। मोहनऊ=कृष्ण जी। बयरिया=हवायें। प्रत्यच्छहिं=प्रत्यक्ष ही। सामुहे=सामने। दुकूल=कपड़ा। परजन=प्रजा में। एकमति=एक राय होकर।

राजरानी देवी

विषम=कठिन। प्रभंजन=वायु। ज्योत्सानल=चाँदनी की आग। प्रखर=तेज़। ताप=गर्मी। झलकावली=बालों का समूह। तमाल=एक वृक्ष। पतन=गिरना। कलुषित=पापी। नृशंसों=नीचों। हरिद्रा=हल्दी। रंजित=लगी हुई। ग्रंथि=गांठ। कान्तार=पर्वत। किंकिणी=कमर की करधन। भ्रू=भौं।

सरस्वती देवी

कति=कितनी। तोय=जल। धरनी=घरवाली। एकन्त=एकान्त। जुगलयाम=शाम-सुबह। लीक=मर्य्यादा। ऊर्द्ध=ऊपर। बिसात=औकात। हस्त-क्रिया=सीना-पिरोना। सूचीकारी=सुई का काम।

बुन्देलाबाला

उद्दालक=उत्तेजना देने वाले। अरिगण घालक=दुश्मनों को मारने वाले। कारिख=कलंक, काला। अद्धी=टका। अमिय कीट=मीठा में लगने वाले कीड़े। अमरेश=इन्द्र। वेदान्ती=विना दांत वाला। मंसूर=एक भक्त जो फांसी पर चढ़ा था। दुहिता=पुत्री।

रमादेवी

सुधाकर=चंद्रमा। भ्रू वंकता=टेढ़ी भौंह। नीरज=कमल। पसाड़ी=छोटे दूकानदार। याचना=मांगना। तिलंगन=पेन्शन पाने वाले सिपाही को गाँव वाले तिलंगा कहते हैं। बिटेवन=लड़कियों। गुर=गुड़। लुआरे=आग की धार। पिपीलिका=चींटी।

राजदेवी

कुसुमावलि=फूलों का झुंड। बिकसाय=फूल रहे। वितान=तम्बू। दूतिका=दूती, भँवरी। तामस=क्रोध।

कीरति कुमारी

पयान=जाना। भै=हुआ। रांभती=चिल्लाती हैं। पारावार=समुद्र। रदन=दांत। निवस=निवास करते हैं। इश्क=प्रेम। कारागार=जेलखाना। उघरैया=खोलने वाले। पलैया=पालन करने वाले। पीडकवल=कुवलया पीड़ राक्षस जिसको कृष्ण जी ने मारा था।

तोरन देवी शुक्ल 'लली'

अलौकिक=सुन्दर। कुसुमित=फूले हुए। विमोहित=मोहित करने वाली। प्रसार=फैलाया। स्वर्ण-शिखा=सोने की चोटी। साकार=आकार वाले। विकसित=खिली। प्रसविनी=पैदा करने वाली। भव्य=सुन्दर। अशेष=अधिक।

प्रियंवदा देवी

पीक=पान के बीड़ा का रस। भोगवाद=सांसारिक कार्य्य। अहम्=मैं, खुद। दुस्तर=कठिन। दिगन्त=दिशायें।

सुभद्राकुमारी चौहान

ऋतुराज=वसन्त। तड़ित=बिजली। पूनो=पूर्णिमा। अनुगामी=पीछे चलने वाला। मानिनि=मान करने वाली। अलियाँ=भौंरा। कालिन्दी=यमुना।

महादेवी वर्मा

निशा=रात। राकेश=चन्द्रमा। अलकें=बाल। मधुमास=वसंत। वात=हवा। तुहिन=ओस। निर्वाण=मोक्ष। उन्माद=मतवालापन। मलयानिल=मलय वायु। सौरभ=सुगंधि। चितेरा=चित्रकार। हीरक=हीरों का। निर्मम=बिना प्रेम वाला। उच्छ्वास=साँस लेना। क्षितिज=आसमान। अनुभूति=अनुभव। मूक=गूंगा। दूरागत=दूर से आई हुई। स्वप्निल=स्वप्न की। आसव=सार। अन्तर्हित=नष्ट हो गई। अवगुंठन=घूँघट। झंझावात=झंझा की वायु। अक्षय=न नष्ट होने वाला। क्षीर-निधि=दूध का समुद्र। सुप्त=सोता हुआ। संजीवन=संजीवनी बूटी। पारावार=समुद्र। वारीश=समुद्र। पखार=धोना। आर्द्र=द्रवित।



कथा-प्रसंग



नारद

नारद जी पूर्वजन्म में बेदवादी ऋषियों की दासी के पुत्र थे। माँ ने इन्हें ऋषियों की सेवा के लिये रख दिया था। ये मन लगाकर श्रद्धा-पूर्वक उनकी सेवा करते थे। उन मुनियों का जो जूठन बचता था उसी को खाकर अपना पेट भरते थे, इसके प्रभाव से उनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया। ऋषियों ने उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें उपदेश दिया जिससे उनके मन में दृढ़ भक्ति पैदा हो गई। ऋषियों के चले जाने पर कुछ दिन बाद उनकी माता सर्प काट लेने के कारण मर गई। तब ये उत्तर दिशा में जाकर तपस्या करने लगे। लेकिन अनुपयुक्त शरीर होने के कारण ध्यान जमता नहीं था। एक दिन काल पाकर उन्होंने अपना शरीर छोड़ दिया और जब ब्रह्माजी जगत् की रचना करने लगे तब मरीच, अंगिरा आदि ऋषियों के साथ उत्पन्न हुए। तब से वे वीणा लिये सर्वत्र हरिगुण गाते विचरा करते हैं, उनकी गति कहीं भी नहीं रुकती।

अहिल्या

एक बार ब्रह्माजी ने अपनी इच्छा से एक परम मनोहर कन्या उत्पन्न की। जिसकी सुन्दरता देखकर सभी मोहित होते थे। ब्रह्माजी उसे

गौतम जी को धरोहर की भाँति सौंप कर चले गये। कुछ दिन बाद ब्रह्माजी ने उनसे वह कन्या माँगी तब उन्होंने ज्यों की त्यों उन्हें सौंप दी। ब्रह्माजी ने गौतम की जितेन्द्रियता देख कर उस कन्या का विवाह उन्हीं के साथ कर दिया। यह बात इन्द्र को बहुत बुरी लगी। एक दिन जब कि गौतमजी बाहर गये थे। इन्द्र गौतम का बनावटी रूप धारण करके आया और उसने धोखा देकर अहिल्या के साथ कुव्यवहार किया। उसी समय गौतम ऋषि आ पहुँचे। अहिल्या ने घबड़ा कर इन्द्र से उसका नाम पूछा, उसने नाम बता दिया। अहिल्या इसे छिपाकर देर से द्वार खोलने आई। ऋषि ने देर से आने का कारण पूछा, अहिल्या ने उसे छिपाया। तब ऋषि ने अपने तपोबल से सारा हाल जानकर इन्द्र को शाप दिया और अहिल्या को भी शाप दिया कि तु शिला हो जा। जब रामजी दर्शन देंगे, तब तेरा उद्धार होगा। वह शिला रूपिणी अहिल्या रामजी के चरणस्पर्श से पवित्र होकर स्त्री-रूप होकर फिर गौतमजी के पास चली गई।

सहस्राबाहु

एक दिन हयहय वंशी राजा सहस्राबाहु शिकार खेलते खेलते जमदग्निमुनि के आश्रम में पहुँचा। कामधेनु के प्रभाव से मुनि ने सेना सहित सहस्राबाहु का यथोचित सत्कार किया। मुनि में अपने से अधिक सामर्थ्य देखकर सहस्राबाहु उनसे कुढ़ा, उसकी आज्ञा से उसके नौकर बलपूर्वक बछवे सहित उस धेनु को माहिष्मती नगरी में उठा

ले गये। जब मुनिजी के पुत्र परशुरामजी को यह समाचार मालूम हुआ तब उन्होंने अपना फरसा लेकर सहस्त्राबाहु पर चढ़ाई की। सहस्त्राबाहु ने उनके मारने के लिये १७ अक्षौहिणी सेना भेजी, उसे परशुरामजी ने काट डाला। इस पर जब सहस्त्राबाहु लड़ने आया तब उसे भी मार डाला।

गणिका

सतयुग का परशुराम वैश्य श्वासरोग से मर गया, तब उसकी स्त्री अपना कुल-धर्म छोड़कर स्वजनों से दूर जाकर वेश्यावृत्ति करने लगी। एक दिन एक बहेलिया एक सुग्गे का बच्चा बेचने आया। उसने सुग्गा खरीद कर पुत्राभाव में उसे पुत्रवत् स्नेह से पाला और उसे रामनाम पढ़ाया। रामनाम पढ़ाते पढ़ाते दोनों एक ही समय में मर गये; रामनाम के उच्चारण के प्रभाव से दोनों की मुक्ति हो गई।

गज

सतयुग में क्षीरसागर के त्रिकूट नामक पर्वत में वरुण देव का ऋतुमत नामक बागीचा था; एक दिन उस बागीचे के सरोवर में एक मदमस्त गजयूथपति हथिनियों सहित नहा रहा था। उसी समय एक बलवान् मकर (ग्राह जो पूर्व जन्म में हूहू नाम का गन्धर्व था) ने उसका पैर पकड़ लिया। गजराज तथा उसके साथियों ने भरसक उससे छुड़ाने के लिये चेष्टा की परन्तु कोई भी उसे जल से बाहर न

निकाल सका। जब गजराज अपने जीवन से हताश हो गया तब वह भगवान् का ध्यान करके उनकी स्तुति करने लगा। उसका आर्त्तनाद सुनकर भगवान् गरुड़ को छोड़कर गजेन्द्र की सहायता के निमित्त आये। भगवान् ने गजेन्द्र की सूँड़ पकड़ कर ग्राह सहित जल से बाहर खींचकर चक्र से ग्राह का मुख फाड़कर उसे छुड़ाया और गजेन्द्र को अपना पार्षद बनाकर अपने साथ ले गये।

अजामिल

कन्नौज में अजामिल नाम का एक ब्राह्मण था। इसने अपनी विवाहिता पत्नी को त्यागकर दासी से प्रीति की थी। वह जुआ, चोरी, ठगी आदि अनेक प्रकार के निन्दित कर्म करता था। एक दिन जब वह बाहर गया था उसके घर पर कुछ साधु आये, उसकी गर्भवती स्त्री ने साधुओं का बड़ा आदर-सत्कार किया। जाते समय साधुओं ने उसे आशीर्वाद दिया कि तेरे पुत्र होगा। तू उसका नाम "नारायन" रखना। अजामिल अपने दस पुत्रों में सबसे छोटे "नारायन" को सबसे ज्यादा प्यार करता था। बिना छोटे पुत्र के उसे चैन नहीं पड़ती थी। अन्त में मरते समय जब उसे यमराज के दूत भय दिखाने लगे, तब उसने अपने प्रिय पुत्र "नारायन" को पुकारा। नाम लेते ही भगवान् के दूतों ने आकर उसे यमदूतों के पंजे से छुड़ाया, भगवान् ने उसे सुन्दर गति दी।

प्रह्लाद

जब प्रह्लाद अपनी माता कयाधु के गर्भ में थे, उस समय एक दिन नारदजी ने आकर उनकी माँ को ज्ञानोपदेश किया। माँ को तो ज्ञान नहीं हुआ, पर गर्भ के बालक को ज्ञान हो गया। प्रह्लाद रामजी के बड़े भारी भक्त हुए, इनके लिये भगवान् को नृसिंह अवतार धारण करना पड़ा जिसकी कथा लोक प्रसिद्ध है।

शवरी

यह जाति की भीलनी थी, मतङ्ग ऋषि की सेवा किया करती थी; जब ऋषि परमधाम को जाने लगे तो इसने भी साथ ले जाने का हठ किया। परन्तु ऋषि ने कहा कि तू अभी यहीं रह, तुझे त्रेता में भगवान् के दर्शन मिलेंगे। गृध्र को परमधाम देकर भगवान् शवरी के आश्रम में गये, भगवान् ने उसके बेर खाये और उसे नवधा भक्ति का उपदेश दिया। शवरी रामजी को सुग्रीव की मित्रता का संकेत करके उनके चरण कमलों का ध्यान धर कर योगाग्नि में देह जलाकर परमधाम को गई।

जवन

जवन नाम का एक पापी म्लेच्छ था, वह अपनी वृद्धावस्था में एक दिन शौच के उपरान्त आबदस्त ले रहा था कि उसे एक शूकर ने जोर

से ढकेल दिया। इस पर वह चिल्ला उठा कि मुझे 'हराम ने मारा, हराम ने मारा' वृद्धावस्था की कमज़ोरी के कारण वह इस आघात से मर गया। मरते समय हराम उच्चारण करने से भगवान् ने उसे अपना भक्त समझ कर (क्योंकि उसने हराम के साथ राम राम उच्चारण किया था) मुक्ति दी।

ध्रुव

स्वायंभू मनु के पुत्र राजा उत्तानपाद के सुनीति और सुरुचि नाम की दो स्त्रियाँ थीं। ध्रुव बड़ी रानी सुनीति के और उत्तम छोटी रानी सुरुचि के पुत्र थे। राजा छोटी रानी से विशेष प्रेम रखते थे। एक समय राजा उत्तम को गोद में बैठा कर प्यार कर रहे थे। उस समय ध्रुव खेलते खेलते आ पहुँचे और राजा की गोद में चढ़ने लगे। परन्तु राजा ने कुछ आदर या प्यार नहीं किया। गोदी में चढ़ते देख कर विमाता ने डाह वश ध्रुव से कहा—"तुम राजा के पुत्र तो हो परन्तु मेरे गर्भ से न उत्पन्न होने के कारण राजा के आसन पर चढ़ने योग्य नहीं हो। अगर तुम राज्यासन पर चढ़ना चाहते हो तो मेरे गर्भ से उत्पन्न होने के लिए परमात्मा की आराधना करो।" यह सुनकर ध्रुव को बड़ी ग्लानि हुई। वे माता से तप करने की आज्ञा लेकर घर से निकले; और तप करके अचल लोक के स्वामी हुए।

श्वान

श्रीरामजी ने अयोध्या के एक कुत्ते की नालिश पर एक संन्यासी को दंड दिया था। यह कथा बहुत प्रसिद्ध है। केशवदासकृत श्रीरामचन्द्रिका में इसकी कथा सविस्तर वर्णित है।

उद्धव

उद्धव श्रीकृष्णजी के मित्र थे। इन्हें श्रीकृष्णजी ने ब्रज की विरह विधुरा गोपियों को समझाने के लिए भेजा पर इन्होंने गोपियों को यह उपदेश दिया था कि तुम निर्गुण परमात्मा की उपासना करो।

कुबरी

कंस की दासी कुबरी भगवान् की बड़ी भक्त थी। जिस समय कृष्णजी कंस को मारने गये थे उस समय कुबरी ने उनके मस्तक पर चन्दन लगाकर अपना जन्म सफल किया। उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर श्रीकृष्णजी ने उसकी पीठ पर पैर रख कर उसका कूबड़ बैठा दिया जिससे वह परम सुन्दरी हो गई। उसकी भक्ति और विनय के वश होकर भगवान् ने जाकर उसका घर पवित्र किया और उससे प्रेम करके उसे कृतार्थ किया।

बाल्मीकि

बाल्मीकि ऋषि पहले व्याध थे, मनुष्यों को लूट मारकर अपना कुटुम्ब पालते थे। एक बार उन्हें कई ऋषि मिले, बाल्मीकि ने उन्हें भी लूटना चाहा, तब उन्होंने कहा—"तू यह पाप कर्म करके अपना कुटुम्ब पालता है, तेरा कुटुम्ब खाने का ही साथी है या तू जो पाप करता है उसका भी साथी है?" यह सुन बाल्मीकि ने कुटुम्बियों से पूछा, तो उन लोगों ने कहा, "हम तो केवल खाने के साथी हैं पाप के नहीं।" तब बाल्मीकिजी को ज्ञान उत्पन्न हुआ। कुटुम्बियों को छोड़ कर ऋषियों के पास जाकर उन्होंने धर्म-विषय सुना और भगवान् का उल्टा नाम 'मरा मरा' जपते जपते वे ब्रह्मर्षि हो गये; उन्हें घर बैठे ही भगवान् का दर्शन हुआ।

दधीच

दधीच नाम के एक ऋषि होगए हैं। एक बार वृत्तासुर नामक राक्षस के उपद्रव से सारे देवता व्याकुल होकर अपनी रक्षा के लिए ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा जी ने कहा कि यदि दधीच ऋषि की हड्डी से वज्र बनाया जाय तब वह राक्षस मारा जा सकता है। देवताओं ने जाकर दधीच से हड्डी देने की प्रार्थना की। दधीच ने अपनी हड्डी दे दी। फिर उससे वज्र बना और वृत्तासुर मारा गया। इस तरह दधीच ने अपनी हड्डी दान देकर देवताओं की रक्षा की।

भीम

पाँचो पाँडवों को जब दुर्योधन ने अज्ञातवास दे दिया था तब ये लोग राजा विराट के यहाँ नौकरी करते थे। भीम उस समय रसोईबनाने का काम करते थे। अर्जुन नाच सिखाने और बाजा बजाने का। मतलब यह है कि समय पड़ने पर भीम ऐसे बलवान व्यक्ति को भी रसोई बना कर जीवन बिताना पड़ा।

गीध

जब रावण सीता जी को चुरा कर ले चला तब रास्ते में उसे जटायु नामक गीध मिल गया। वह राम का बड़ा भक्त था। उसने रावण से लड़ाई करके सीता को छीन लेने का प्रयत्न किया। परन्तु रावण ने अपनी तलवार से उसका पंख काट दिया। गीध निरुपाय होकर गिर पड़ा। श्री रामचंद्रजी सीताजी को ढूंढ़ते हुए जब उधर से निकले तब उन्होंने गीध को अधमरा पड़ा हुआ देखा। गीध ने सीता का समाचार बतलाया और राम जी ने उसे स्वर्ग दिया।

हनूमान

हनूमानजी का नाम प्रसिद्ध है। रामचंद्रजी के सेवक थे। सीता के पता लगाने में बहुत प्रयत्न किया। रामचंद्रजी ने इन्हें अपना सेवक बना लिया।

गोवर्द्धन

एक बार इन्द्र ने वर्षा करके बृज को बहा देने का विचार किया। श्रीकृष्ण जी ने गोवर्द्धन को उठा कर सारे बृजनिवासियों की रक्षा की। इन्द्र का गर्व चूर हो गया।

वामन

बलि नाम का एक राजा था। वह अपने को बड़ा दानी समझता था। विष्णु उसके दान की परीक्षा लेने के लिए वामन का रूप बना कर उसके यहां दान मांगने गए। दान में उन्होंने साढ़े तीन बालिश्त ज़मीन माँगी। बलि ने संकल्प पढ़ कर ज़मीन दे दी। भगवान ने तीन बालिश्त में ज़मीन, आसमान और पाताल नाप लिया और आधे बालिश्त में बलि का शरीर। बलि को पहले पता न चला कि ईश्वर हमारी परीक्षा ले रहा है। उसका सम्पूर्ण गर्व चूर हो गया।

